महावीर ग्रंथमाला—१७ वा पुष्प

महाकवि दौलतराम कासलीवाल
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

लेखक
डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
एम ए., पी-एच. डी., शास्त्री

भूमिका
डा० हीरालाल माहेश्वरी
एम ए, एल्-एल्. बी, डी. फिल्, डी. लिट्
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रकाशक
सोहनलाल सोगाणी
मंत्री
प्रबन्धकारिणी कमेटी
दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीरजी,
महावीर भवन, जयपुर-३

प्रथम संस्करण

वीर निर्वाण संवत् २४९९

जून – १९७३

प्रतियां – १०००

मूल्य : दस रुपए

मुद्रक :
मनोज प्रिन्टर्स,
गोदीकों का रास्ता, किशनपोल बाजार,
जयपुर—३०२००३
(राजस्थान)

विषय-सूची

प्रकाशकीय

" महाकवि दौलतराम कासलीवाल—व्यक्तित्व एवं कृतित्व " पुस्तक को पाठकों के हाथों में देते हुए हमे अत्यधिक प्रसन्नता है। श्री महावीर ग्रंथमाला का यह १७ वां प्रकाशन है। इनमें राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची के पांच भाग, प्रशस्ति संग्रह, प्रद्युम्नचरित, जिरणदत्त चरित राजस्थान के जैन सन्त-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, Jaina Grantha Bhandars in Rajasthan, हिन्दी पद संग्रह जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकों के नाम उल्लेखनीय है। "राजस्थान के जैन सन्त', पुस्तक पं० गोपालदास बरैय्या पुरस्कार द्वारा पुरस्कृत होना हमारे प्रकाशनों के स्तर की ओर एक संकेत है। क्षेत्र द्वारा संचालित साहित्य शोध विभाग का मुख्य उद्देश्य प्राचीन एवं अलभ्य साहित्य का संरक्षण, महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन तथा राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों का सूचीकरण करना रहा है। इस उद्देश्य में उसे कहां तक सफलता मिली है इसके बारे में तो विद्वान ही कुछ कह सकते हैं। लेकिन क्षेत्र द्वारा प्रकाशित साहित्य के आधार पर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में जैनधर्म एवं साहित्य के प्रति विद्वानों में जो रुचि पैदा हुई है वह इसकी प्रगति का शुभ सूचक है। इसके अतिरिक्त साहित्य शोध विभाग में जितनी अधिक संख्या में विद्वान एवं शोध छात्र अपने शोध कार्य के लिये आने लगे हैं वह भी जैन साहित्य के प्रति विद्वानों की अभिरुचि में वृद्धि का एक कदम है ऐसा हमारा विश्वास है।

जयपुर नगर गत २४५ वर्षो से जैन विद्वानों का केन्द्र रहा है। हिन्दी साहित्य की इन्होंने जो महत्वपूर्ण सेवा की थी वह देश के विद्वानों से छिपी नहीं है। इन विद्वानों मे दौलतराम जी, टोडरमल जी, बखतराम जी, जयचन्द जी, पारसदास जी, सदासुख जी, गुमानीराम, चंपाराम भांवसा आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन विद्वानों में से पं० टोडरमल जी के बारे में तो समाज अवश्य जानता है लेकिन अन्य विद्वानों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी बहुत कम लोगों को है। दौलतराम कासलीवाल जयपुर नगर के ऐसे ही प्रथम महाकवि थे जिनके ग्रन्थों का हम स्वाध्याय तो करते रहते हैं लेकिन उनके व्यक्तित्व के बारे में अधिक नहीं जानते। इन्होंने हिन्दी भाषा में १८ ग्रन्थों की रचना करके साहित्य की महान सेवा की थी। प्रस्तुत पुस्तक में उनके विस्तृत जीवन परिचय के अतिरिक्त डा० कासलीवाल जी ने तत्कालीन जयपुर के विद्वानों एवं

राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में भी अच्छी जानकारी दी है। पुस्तक में उनकी दो महत्वपूर्ण कृतियों —जीवन्धर चरित एवं विवेक विलास को पूर्ण रूप से तथा अन्य कुछ कृतियों के पाठांश दिये गये हैं। हमारा विश्वास है कि हिन्दी साहित्य पर काम करने वाले विद्वानों केलिये यह पुस्तकउपयोगी एवं महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी के जैन कवियों को प्रकाश में लाने की हमारी योजना का एक शुभारम्भ है।

हिन्दी जैन कवियों पर विस्तृत परिचयात्मक पुस्तकों के अतिरिक्त *भगवान महावीर के जीवन से सम्बन्धित हिन्दी कृतियों के सम्पादन का कार्य* भी चल रहा हैं। इनके प्रकाशन का कार्य भी शीघ्र ही प्रारम्भ होने वाला है।

पुस्तक की भूमिका लिखने में राजस्थानी भाषा एवं साहित्य के अधिकारी विद्वान् डा० हीरालाल जी माहेश्वरी ने जो कष्ट उठाया है इसके लिये हम उनके पूर्ण आभारी हैं।

१–६–७३

सोहनलाल सोगाणी
मंत्री

भूमिका

शोध मनन और महानता की दृष्टि से हिन्दी भाषा और साहित्य के अनेकविध अध्ययन में बहुत सी जिज्ञासाओं, पूर्वापर सम्बन्ध सूत्रों के ओझल रह जाने के कारण उत्पन्न उलझनों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्याएं भिन्न-भिन्न रूपों में हिन्दी के विद्वानों और शोधकों के सम्मुख यदाकदा आती रहती हैं। जहां तक जनसाधारण का प्रश्न है, वह तो 'खड़ी बोली' को, जो राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकृत है, हिन्दी मानता है किन्तु हिन्दी से थोड़ा-बहुत भी प्रेम रखने वाले यह जानते है कि हिन्दी की इयत्ता खड़ी बोली तक ही नहीं है। विद्वानों ने पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, विहारी तथा पहाड़ी और इनकी बोलियों को हिन्दी के अन्तर्गत समझा है। कतिपय विद्वानों ने पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी की बोलियों को हिन्दी के अन्तर्गत लेने का सुझाव दिया है। इस प्रकार, मोटे रूप से हिन्दी के अर्थ के सम्बन्ध मे ये तीन मत प्रचलित हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से मैथिली, ब्रज, राजस्थानी, अवधी और खड़ी बोली पृथक्-पृथक् भाषाएं हैं, पर साहित्यिक दृष्टि से विद्वान इनमें लिखे गए साहित्य को हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत समझते हैं, और यह तो स्वीकृत तथ्य है ही कि परिमाण और गुण की दृष्टि से इन पाचो मे लिखा गया साहित्य बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी मे बहुत बड़े परिमाण में एक प्रकार के मिश्रित साहित्य का भी निर्माण हुआ है। यह उस मिश्रित भाषा मे रचा गया है जो प्रमुखतः दो भाषाओं के संवलन और एकीकरण से बनी है, यथा— राजस्थानी और ब्रज (जिसे पिंगल कहते हैं), राजस्थानी और खड़ी बोली (जिसके उदाहरण झूलणा, नीसाणी और अरिल्ल छन्दों में रचित प्रचुर रचनाएं हैं), ब्रज और खड़ी बोली। पं० टोडरमल, पं० दौलतराम कासलीवाल आदि अनेक लेखकों की गद्य रचनाएं इसी प्रकार की है। मिश्रित भाषा का आधारभूत व्याकरणिक ढाचा तो प्रायः एक भाषा का ही रहता है परन्तु दूसरी भाषा स्पष्टतः अन्योन्याश्रित रूप से समीकृत हुई रहती है। कहना न होगा कि "पिंगल" के अतिरिक्त अन्य ऐसी किसी भी 'मिश्रित भाषा' और उसके साहित्य का अध्ययन हिन्दी में नहीं हुआ है। मैं कहना चाहता हूं कि मिश्रित भाषा का ऐसा समवाय और समवायिक मिश्रित भाषाओं का प्रचार-प्रसार हिन्दी भाषा के इतिहास की महनीय घटना है, यह उसकी समन्वया-

त्मक प्रवृत्ति और सरलीकरण का उद्घोष है। शोधार्थियों को इस ओर प्रेरित होना चाहिए।

इसलिए जब हिन्दी संज्ञा के अन्तर्गत उसका भाषिक या साहित्यिक अध्ययन किया जाता है (विशेषतः लगभग संवत् १६२५ तक) तो अध्येता के लिए यह बताना परमावश्यक हो जाता है कि वह इसके अन्तर्गत किस भाषा का (राजस्थानी, व्रज, अवधी या मिश्रित आदि का) अध्ययन प्रस्तुत कर रहा है। यदि कोई अध्येता हिन्दी नाम के अन्तर्गत उसके आभोग में आने वाली किसी भाषा-विशेष का उल्लेख न करके, सामान्य रूप से एक भाषा या उसके साहित्य का ही अध्ययन प्रस्तुत करता है, तो वह हिन्दी नाम की सार्थकता कदापि सिद्ध नहीं करता। यह केवल अध्येता का अपना और सुविधावादी दृष्टिकोण ही है। दुर्भाग्य से हिन्दी में आजकल ऐसे अध्ययन ही अधिक हो रहे हैं, जो अनेक भ्रान्तियों को जन्म देते हैं।

उपर्युक्त कथन से यह सिद्ध है कि हिन्दी का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और उसकी–अर्थात् उसकी विभिन्न बोलियों को प्रयोग में लाने वालों की संख्या देश की लगभग एक तिहाई जनसंख्या के बराबर है। इतने बड़े प्रदेश में हिन्दी की विभिन्न बोलियों में रचे गए साहित्य का अभी तक आकलन और संचयन भी भली प्रकार नहीं हो सका है, और जब कोई भी साहित्यिक महत्व की कृति या अच्छा कवि जब कभी प्रकाश में आता है तो हिन्दी साहित्य की परम्परा में या तो वह एक नई कड़ी जोड़ता है अथवा क्षीण ही सही, किसी नई परम्परा की सूचना देता है। अनेक कारणों से बड़े क्षेत्र विशेष में लोक-भावना के अनुसार, कतिपय नवीन साहित्यिक परम्पराएँ आरम्भ हो जाती हैं। इसके विशिष्ट कारण पारम्परिक, भौगोलिक, राजनैतिक और सामाजिक होते हैं। यद्यपि सांस्कृतिक स्रोत प्रायः सबका समान ही रहता है तथापि इन कारणों से लोक में विभिन्न परम्परा या परम्पराओं का विकास और प्रसार हो जाता है। जैसे भाषा विशेष की अपनी प्रकृति होती है वैसे ही इन साहित्यिक परम्पराओं की भी अपनी विशेषताएँ होती हैं, जिन्हें भाषा विशेष की साहित्यिक जातीय परम्पराएँ कह सकते हैं। उदाहरणार्थ, व्रज भाषा की प्रकृति की मुख्य बातें ये कही जा सकती हैं—मुक्तक, सवैया, मनहरण, और दोहा छन्द, शृंगार प्रेम तथा राधा-गोपी-कृष्ण विषयक रचनाओं का बाहुल्य, हृदय की कोमल मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति आदि। राजस्थानी की प्रकृति की मुख्य बातें हैं— मुक्तक रचनाओं के साथ-साथ प्रभूततः प्रबन्धात्मक ऐतिहासिक और वीर रसात्मक रचनाओं का निर्माण, शुद्ध लौकिक प्रेमकाव्य, ओज गुण प्रधान, कोमल शक्तियों के साथ-साथ परुष और कठोर

कृतियों का चित्रण, राम और कृष्ण के वीर और उद्धारक रूपों का विशेषतः चयन, डिंगल गीत दोहा और नीसाणी आदि छन्दों का प्रभूत प्रयोग आदि। ब्रजी में जहां राधा कृष्ण और गोपी कृष्ण से सम्बन्धित अनेक लीलाओं और चरित्र का वर्णन मिलता है, वहां राजस्थानी में रुक्मिणि-कृष्ण प्रबन्ध अथवा रामचरित विषयक प्रबन्ध काव्यों का बाहुल्य है। यद्यपि भगवान के सभी अवतार सभी जगह मान्य है तथापि उल्लिखित कारणों से राजस्थानी में जहां भगवान के उद्धारक और वीर रूप को विशेष रूप से लिया गया है, वहां ब्रजी में विशेषतः कृष्ण के बाल अथवा राधा कृष्ण या गोपी कृष्ण रूप को। यह तो एक छोटा सा उदाहरण है जो यह सिद्ध करता है कि व्यापक रूप से हिन्दी साहित्य के सम्यक् और सांगोपांग अध्ययन में प्रत्येक क्षेत्र में लिखे गये प्रत्येक प्रकार के हिन्दी साहित्य का आलोड़न-विलोड़न और वहां प्रचलित विशेष परम्पराओं को समझने की एक महती आवश्यकता है। इस संदर्भ में एक और बात की ओर संकेत करना भी आवश्यक है। ऐसी अनेक समृद्ध साहित्यिक परम्पराएं और काव्य ग्रन्थ हैं, जिनका इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में समुचित मूल्यांकन नहीं हुआ है। कइयों का तो नामोल्लेख मात्र भी नहीं है। विद्वानों के पुनः विचारार्थ इन परम्पराओं की ओर ध्यान दिलाया जा सकता है—जैन साहित्य परम्परा, संत काव्य परम्परा, राम और कृष्ण काव्य परम्परा, ऐतिहासिक और वीर रसात्मक काव्य परम्परा, विभिन्न जीवन्त सम्प्रदायों का साम्प्रदायिकता से मुक्त साहित्य और उसकी सतत प्रवहमान परम्परा। 'आदिकाल' के जाली या परवर्ती सिद्ध हुए काव्यों का यथाकालों में सन्निवेश, भक्ति काल में अनेकशः वीर काव्यों तथा लौकिक प्रेम काव्यों आदि का विवेचन, रीतिकाल में पूर्वकालों की परम्पराओं के अतिरिक्त, नवीन उद्भूत सम्प्रदायों के साम्प्रदायिकता मुक्त काव्यों, राष्ट्रीय काव्यों का समावेश आदि आदि। ये कुछ ऐसी बातें हैं जिनको हिन्दी साहित्य के इतिहास में सम्यक् स्थान मिलना चाहिए। अब यह बात अनेक विद्वानों द्वारा मान ली गई है कि जिन रचनाओं में साहित्यिक गुण हैं और जिनका प्रेरणा स्रोत धर्म है, साहित्यिक, इतिहास में विवेचनीय हैं।

ऊपर हिन्दी साहित्य के इतिहास में जैन साहित्य के सन्निवेश और मिश्रित भाषा का उल्लेख हो चुका है। कहना न होगा कि जैन साहित्य के अनेक कवि और कृतियाँ इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास में विवेचनीय हैं। भाषा की दृष्टि से भी जैन साहित्य का गौरवपूर्ण स्थान है। हिन्दी की अन्यान्य प्रमुख काव्यधाराओं की भाँति, जैन साहित्य धारा भी किसी न किसी रूप में सतत प्रवहमान रही है। आदिकाल से लेकर अद्य पर्यन्त जैन साहित्य की

अनेक कृतियां प्रकाश में आ चुकी हैं किन्तु फिर भी उनका किसी प्रकार का कोई उल्लेख साहित्येतिहास में एक धारा विशेष के रूप में अथवा भाषागत देन के रूप में विद्वानों द्वारा नहीं किया गया है।

डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल की प्रस्तुत कृति 'महाकवि दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व' एक ऐसा ही ग्रन्थ है जो पांच दृष्टियों से विशेष रूप से उल्लेखनीय है :—(१) दौलतराम का काव्य (२) उनका गद्य (३) पाठ-सम्पादन और व्याख्या की दृष्टि से (४) काव्य रूप, भाषा, कथानक रूढ़ियां और तत्कालीन समाज चित्रण (५) कवि द्वारा अपनी भाषा विषयक संकेत।

यह आश्चर्य की बात ही कही जानी चाहिए कि दौलतरामजी का आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा उल्लेख किए जाने के बाद भी, ये परवर्ती विद्वानों की दृष्टि से ओझल ही रहे। शुक्लजी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'गद्य का विकास' (पृ०४११) के संदर्भ में दौलतराम का नामोल्लेख और उनके गद्य में लिखे आदिपुराण की नमूने के रूप में कतिपय पंक्तियां उद्धृत की हैं। इस प्रकार एक हिन्दी गद्य लेखक के रूप में दौलतरामजी साहित्य संसार में थोड़े बहुत परिचित तो थे किन्तु इस रूप में भी उनकी किसी प्रकार की कोई चर्चा नहीं हुई।

प्रस्तुत पुस्तक के सुयोग्य संपादक और लेखक डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने इसमें न केवल कवि की तीन गद्य कृतियों—'पद्मपुराण भाषा', 'आदिपुराण', और 'हरिवंश पुराण' के कतिपय अंशों को मूल रूप में दिया है, अपितु उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाओं, 'जीवन्धर स्वामी चरित', 'विवेक विलास' पूर्ण रूप में तथा श्रीपाल चरित्त, परमात्म प्रकाश भाषा टीका एवं अध्यात्म बारहखड़ी का आंशिक रूप में समावेश किया है। इससे गद्य लेखक के रूप में भी दौलतरामजी प्रकट होते हैं। हिन्दी गद्य के अनुसन्धित्सुओं के लिए इसमें पर्याप्त सामग्री है। इनकी भाषा खड़ी बोली मिश्रित ब्रज भाषा है जिसमें यत्र-तत्र ढूंढाड़ी की झलक भी दिखाई देती है, किन्तु बहुत ही कम। और निश्चिय ही यह मिश्रित भाषा अध्ययन का नवीन बिन्दु उपस्थित करती है। ब्रज और खड़ी बोली मिश्रित ऐसी भाषा के उदाहरण केवल दौलतरामजी की रचनाओं में ही नहीं प्राप्त होते, इनसे किंचित् पूर्व हुए पं० टोडरमलजी के मोक्षमार्गप्रकाशक की भाषा भी ऐसी ही है। दोनों की भाषा में अंतर इतना है कि जहां टोडरमलजी के मोक्षमार्ग प्रकाशक की भाषा में ब्रजी अपेक्षाकृत प्रधान है, वहां दौलतरामजी की भाषा में ब्रज और खड़ी बोली दोनों का बराबर सा मिश्रण है। ढूंढाड़ी का हल्का पुट दोनों की ही भाषाओं में है, जो दोनों के इस क्षेत्र के निवासी होने

के कारण स्वाभाविक ही था । खड़ी बोली और ब्रज भाषाओं के विकास क्रम में इस प्रकार की भाषा का प्रचलन, उसकी मुख्य-मुख्य कृतियां और उसके समय विशेष के स्वरूप तथा मानक खड़ी बोली के विकास क्रम में उसका योगदान, अध्ययन के वे नए आयाम हैं, जिनकी ओर शोधार्थियों का ध्यान जाना चाहिए। यह जहां हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रसार का द्योतक है, वहां तदयुगीन एक सामान्य भाषा की आवश्यकता पूर्ति की ओर उल्लेखनीय कदम भी ।

दौलतरामजी का काव्य जैन धर्म से प्रभावित तो है किन्तु उनकी कृतियों में सुन्दर काव्यत्व के भी दर्शन होते हैं । जैन काव्यों की चरित परम्परा में उनके 'जीवन्धर स्वामी चरित', 'श्रेणिक चरित' और श्रीपाल चरित उल्लेखनीय हैं । यद्यपि ये अधिकांश में पद्यात्मक कृतियां हैं, तथापि अनेक स्थलों पर रूप, स्थिति और मनोभावनाओं के मोहक चित्र इनमें मिलते हैं । काव्य, अध्यात्म और रूप की दृष्टि से दौलतरामजी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाएं विवेक-विलास और अध्यात्म-बारहखड़ी हैं । ये दोनों कृतियां हिन्दी की दो विशिष्ट परम्पराओं-रूपक काव्य तथा कक्को काव्य या बावनी काव्य या बारह खड़ी काव्य परम्परा की न केवल महत्वपूर्ण कृतियां ही हैं, अपितु उनके प्रौढ़ रूप का दिग्दर्शन कराती हैं । विवेक विलास में ६२४ दोहे हैं, जो दोहा काव्य परम्परा में भी विशेषरूपेण उल्लेखनीय है । जैन कवियों द्वारा लिखित रूपक या प्रतीक काव्य की परम्परा पुरानी है । हिन्दी में पन्द्रहवीं शताब्दी उत्तरार्ध के आरंभ में राजशेखर सूरि रचित 'त्रिभुवन दीप प्रबन्ध' (अपर नाम प्रबोध चिन्तामणि या परमहंस प्रबन्ध) इस प्रकार की एक महत्वपूर्ण रचना है । इस परम्परा में जैन और जैनेतर सभी कवियों ने योगदान दिया है किन्तु सर्वाधिक कृतियां जैन कवियों की ही मिलती है । जैनेतर कवियों में इस कोटि की रचना अधिकांशत: विभिन्न सम्प्रदायों के कवियों ने अध्यात्म-दृष्टि से की हैं, जिनमें विष्णोई कवि सुरजनदासजी कृत 'ज्ञान महातम' और 'ज्ञान तिलक' तथा सेवादास रचित 'पिसण संघार,' प्रबन्धाभास बड़े रूपक काव्य हैं । ६२४ दोहों में रचित विवेक विलास इस परम्परा की सर्वाधिक बड़ी और महत्वपूर्ण रचना है । इसी प्रकार कक्को या बारहखड़ी काव्य भी बहुत लिखा गया है जिसमें जैनेतर कवियों का योगदान, रूपक काव्यों की तुलना में बहुत ज्यादा है । ऐसी काव्य परम्परा में प्रस्तुत कवि की अध्यात्म बारहखडी का महत्त्व-स्वयं स्पष्ट है ।

पाठ संपादन और व्याख्या के क्षेत्र में भी दौलतराम जी के परमात्म-प्रकाश भाषा टीका का विशेष महत्व है । इसमें उन्होंने परमात्म प्रकाश के पाठ के साथ प्रत्येक छन्द की विस्तार से टीका, जिसे व्याख्या कह सकते हैं, की है । इस कृति के पाठ-संपादन के लिए दौलतरामजी द्वारा प्रस्तुत किया गया पाठ

भी विचारणीय सिद्ध हो सकता है। इसके जो दो उदाहरण प्रकाशित 'टीका' में दिए गए हैं, उनको डा० ए० एन० उपाध्ये संपादित 'परमात्म प्रकाश' से मिलाने पर शब्दान्तों में कुछ अन्तर प्रतीत होता है। डा० उपाध्ये के संबंधित पाठ में जहां 'भासओ', 'दिव्व-काओ', 'दिव्व-जोओं, शब्द हैं, वहां इस टीका में उनके स्थान पर क्रमशः भासउ, दिव्वकाउ, तथा दिव्व जोउ शब्द हैं। शब्दान्त में 'ओ' और 'उ' के ये प्रयोग स्वर परिवर्तन के लेखन-प्रमाद के कारण भी हो सकते है और भाषा-प्रकृति भी। यदि इसकी विभिन्न प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन से यह सिद्ध हो कि इस भाषा टीका का पाठ एक, विभिन्न परम्परा या उप परम्परा का है, तो निस्सन्देह इसका महत्व बढ़ जाएगा। अर्थों का स्पष्टीकरण टीका में विस्तार से किया गया है जो इसके अध्येताओं को मूल मंतव्य को हृदयंगम कराने में सहायता देता है। संदेश रासक को समझने के लिए जैसे लक्ष्मी चन्द्र कृत टिप्पणक रूपा व्याख्या तथा दूसरी टीका जिसे अवचूरिका कहा गया है, का जो महत्व है, वैसा ही महत्व परमात्मप्रकाश को समझने के लिए दौलत राम कासलीवाल की इस भाषा टीका का है। यहां यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि अपभ्रंश काव्यों को समझने के लिए ऐसी टीकाओं का आज बड़ा महत्व है। अपभ्रंश की ही नही, हिन्दी की बहुत सी पुरानी कृतियों को भी यदि उनकी टीकाएं उपलब्ध होतीं, तो और भी अच्छी तरह समझा जाता। राठौड़ पृथ्वीराज की 'वेलि क्रिसन रुक्मणी' का भावार्थ उसकी ऐसी विभिन्न टीकाओं के कारण ही हमको प्रधानतः सुलभ हुआ है।

मध्ययुगीन काव्यों में अनेक कथानक रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है। जैन काव्यों में भी विभिन्न अवसरों पर कथा को वांछित मोड़ देने में इनका प्रयोग किया गया है। दौलतराम जी के उल्लिखित चरित काव्यों में उनका प्रभूत प्रयोग हुआ है। इस दृष्टि से यह एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है। तत्कालीन समाज और कतिपय स्थानों तथा व्यक्तियों के नामोल्लेख दौलतराम जी की रचनाओं में किए गए मिलते हैं। इससे उनके समय के समाज को विशेषतः जैन समाज को समझने का माध्यम तो मिलता ही है, साथ ही उस समय के अन्य जैन विद्वानों और कवियों का उल्लेख, जैन साहित्यिक परम्परा का द्योतन तथा उल्लिखित लोगों के विषय में अध्ययन करने की हमारी इच्छा को जाग्रत करता है।

एक उल्लेखनीय बात यह है कि दौलतराम जी ने अपनी भाषा को 'देश भाषा' की संज्ञा दी है। प्रायः सभी हिन्दू कवियों ने अपनी भाषा-द्योतन के लिए ऐसे या ऐसे ही अन्य प्रयोग किए हैं। 'देश भाषा' प्राकृत भाषा या भाषा के ऐसे उल्लेख, मुसलमान कवियों द्वारा लिखी गई की खड़ी बोली रचनाओं के

लिए प्रयुक्त हिन्दी, हिन्दवी आदि के संदर्भ में कुछ विचारणीय संकेत उपस्थित करते हैं। खड़ीबोली प्रसार के प्रसंग में ऐसे संकेतों द्वारा द्योतित भाषा और उसकी मूल प्रवृत्ति का अध्ययन, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से किया जाना नितान्त आवश्यक है। इससे हिन्दी की उल्लिखित सभी भाषाओं विशेषत: खड़ी बोली के सबन्ध में महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलेंगे।

डा० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल ने अपनी वृहद् प्रस्तावना में दौलतरामजी और उनकी कृतियों पर तो अनेकविध प्रकाश डाला ही है, तत्कालीन विद्वत्-मंडली और विभिन्न कवियों का भी संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित परिचय दिया है, जो मूल रूप में पठनीय है। दौलतराम जी का समय संवत् १७४९ से १८२९ तक अर्थात् अठारहवीं शताब्दी उत्तरार्ध और उन्नीसवीं का पूर्वार्द्ध था। इस प्रकार, डा० कासलीवाल जी की प्रस्तावना से उस समय के अन्य महत्वपूर्ण कवियों का परिचय भी प्राप्त हो जाता है। इस समय से सबन्धित जैन साहित्य पर शोध कार्य करने वालों के लिये एक आधार भूमि इस प्रस्तावना में मिलती है।

डा० कासलीवाल लगभग पिछले २५ वर्षों से किसी न किसी रूप में साहित्य सेवा करते रहे हैं। हिन्दी संसार उनकी विभिन्न कृतियों और लेखों के माध्यम से उनसे परिचित है। अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ उन्होंने साहित्य ससार को प्रदान की है। जिन तथ्यों, साहित्यिक मान्यताओं और परम्पराओं को उन्होंने साकार रूप दिया है, उनसे लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों ने अपने मत-मतान्तरों में संशोधन किए हैं। अनेक शोधार्थियों को उनकी रचनाओं से नवीन क्षेत्र, आधार भूमि, प्रेरणा और सम्बल मिला है। बिना किसी प्रकार का शोर-गुल किए वे एकान्त भाव से साहित्य साधना में लीन और 'असूर्यपश्य' रचनाओं को हमारे सम्मुख रख रहे हैं। स्वतः प्रेरणा के स्रोत और धुन के धनी डा० कासलीवाल जैसे साहित्य साधक और शोधक कम ही मिलेंगे। उनकी सभी कृतियों का साहित्य संसार में बहुत अच्छा स्वागत हुआ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनका यह ग्रन्थ यथारुचि, साहित्यिक और धर्मभाव-तुष्टि के अतिरिक्त मनन और शोध का आधार बनेगा तथा इसका उन अनेक दृष्टियों से अध्ययन किया जाएगा जिनका किंचित् संकेत-उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

ऐसी महत्वपूर्ण और सुन्दर कृति के प्रकाशन के लिए डॉ० कासलीवाल तथा श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी के मंत्री एवं प्रबन्ध कारिणी के समस्त सदस्य हिन्दी संसार की ओर से धन्यवाद के पात्र हैं।

डा० हीरालाल माहेश्वरी

आभार

१८वीं शताब्दी के महाकवि दौलतरामजी कासलीवाल के जीवन एवं साहित्य पर आधारित पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। महाकवि ने हिन्दी साहित्य की जो महान् सेवा की थी उसी पर इसमें प्रकाश डाला गया है। "दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व" पुस्तक प्रकाशन के लिये मैं श्री दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीरजी की प्रबन्धकारिणी कमेटी के सभी सदस्यों एवं विशेषत: उसके अध्यक्ष श्री मोहनलाल जी सा० काला एवं मंत्री श्री सोहनलाल जी सा० सोगाणी का आभारी हूँ। जैन साहित्य के संरक्षण एवं प्रकाशन की ओर आप दोनों की ही काफी रुचि है जो सर्वथा स्वागत योग्य है।

पुस्तक के प्रस्तुतीकरण में पं० अनूपचन्द जी न्यायतीर्थ का जो पूर्ण सहयोग मिला है इसके लिये मैं उनका पूर्ण आभारी हूँ। कवि के जीवन्धर चरित को खोज निकालने का श्रेय भी आपको है। मैं मेरे अन्य सहयोगी श्री प्रेमचन्द रांवका एम. ए. रिसर्च स्कालर का भी आभारी हूँ जिन्होंने कवि के ग्रन्थों की प्रेस कापी करने में पूर्ण सहयोग दिया है। जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदी शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री भंवरलाल जी बज का भी आभारी हूँ जिनके शास्त्र भण्डार के गुटके में हमें कवि का जन्मलगन प्राप्त हुआ है। इसी तरह पाण्डे लूणकरणजी के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री मिलापचन्द जी आगायत वालों का भी आभारी हूँ जिनके शास्त्र भण्डार की विवेक विलास की एक मात्र पांडुलिपि का पुस्तक मे उपयोग किया गया है। इसी तरह उदयपुर के दि० जैन अग्रवाल मंदिर के व्यवस्थापक डा० मोहनलाल जी जैन का भी मैं आभारी हूँ जिनके मंदिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत जीवन्धर स्वामि चरित की एक मात्र पाण्डुलिपि का हमने उपयोग किया है। प्रस्तुत पाण्डुलिपि कवि की मूल पाण्डुलिपि है। श्री बा० राजमलजी गोधा व्यवस्थापक मंदिर जी ठोलियान् का भी मैं आभारी हूँ जिनकी अध्यात्म बारहखड़ी की प्रति का इसमें उपयोग किया गया है। मै पं० भंवरलालजी पोल्याका जैनदर्शनाचार्य का भी उनके सुझावों के लिए आभारी हूँ।

मैं आदरणीय डा० हीरालाल जी माहेश्वरी का भी पूर्ण आभारी हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक पर महत्त्वपूर्ण भूमिका लिखने की महती कृपा की। डा० माहेश्वरीजी राजस्थानी भाषा के अधिकारी विद्वान् हैं और जैन विद्वानों द्वारा लिखी हुई हिन्दी एवं राजस्थानी कृतियों को साहित्य के इतिहास में उचित स्थान मिले इस ओर वे प्रयत्नशील हैं।

अन्त में मैं उन सभी विद्वानों का आभारी हूँ जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक पर अपनी महत्वपूर्ण सम्मति भेज कर इसके महत्व पर प्रकाश डाला है।

डा० कस्तूरचंद कासलीवाल

प्रस्तावना

हिन्दी के विकास में राजस्थानी जनता एवं यहां के कवियों का विशेष योगदान रहा है। १०वीं शताब्दि के पहले से ही अपभ्रंश और फिर राजस्थानी भाषा के माध्यम से हिन्दी की जितनी सेवा यहां के निवासियों एवं विद्वानों ने की थी; वह इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में अंकित रहेगी। अपभ्रंश भाषा के बहुचर्चित कवि धनपाल राजस्थानी विद्वान थे। जिनकी "भविसयत्त कहा" कथा साहित्य की बेजोड़ कृति है। इसी तरह 'धम्मपरिक्खा' के रचयिता हरिषेण' राजस्थानी महाकवि थे। जिन्होंने मेवाड़ देश को जन संकुल लिखा है। लघु कथाओं को धार्मिक पुट देकर जनप्रिय बनाने में इन कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसी तरह आचार्य हरिभद्रसूरि चित्तौड़ के थे; जिन्होंने प्राकृत एवं अपभ्रंश में कितनी ही कृतियों को प्रस्तुत करके हिन्दी के विकास का मार्ग प्रशस्त किया था। हिन्दी की जननी अपभ्रंश राजस्थान की अत्यधिक लोकप्रिय भाषा रही थी और यही कारण है कि इस भाषा की अधिकांश पाण्डुलिपियां राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों में आज भी सुरक्षित हैं। अबतक अपभ्रंश की छोटी बड़ी ५०० कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं। जिनमें अधिकांश राजस्थान के शास्त्र-भण्डारों में संग्रहीत हैं। जब जनता संस्कृत एवं प्राकृत से ऊब चुकी थी; तब उसने अपभ्रंश का सहारा लिया और उसी का आगे चलकर हिन्दी के रूप में विकास हुआ। संवत् १३५४ में रचित जिणदत्त चरित' इसका स्पष्ट उदाहरण है। यह काव्य अपभ्रंश एवं हिन्दी के बीच की कड़ी का काव्य है। अपभ्रंश ने धीरे-धीरे हिन्दी का स्थान किस प्रकार लिया, वह अपभ्रंश के उत्तरकालीन काव्यों से जाना जा सकता है। इसी तरह सधारु कवि रचित प्रद्युम्न चरित (सं० १४११) का नाम भी लिया जा सकता है। इन काव्यों में हिन्दी के ठेठ (तद्भव) शब्दों का प्रयोग भाषा विकास की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

हिन्दी का आदिकालिक इतिहास राजस्थान के कवियों का इतिहास है। वह यहा की जनता की भाषा का इतिहास है। रासो काल के नाम से जो काल निर्देश किया जाता है; वह सब राजस्थानी कवियों की ही रचनाओं के कारण है। रासो साहित्य यहां के आदिकालिक कवियों का प्रधान साहित्य है। यद्यपि जनप्रिय कवियों ने काव्य की अन्य शैलियों में भी खूब लिखा है; लेकिन

उसमें भी रासो साहित्य की ही प्रधानता है। शालिभद्र सूरि का "भरतेश्वर बाहुबलि रास" संभवतः इस काव्य विधा की प्रथम रचना है। इसके पश्चात् "स्थूलिभद्र रास" (संवत् १२०६),"चन्दनबाला रास" (१२५७ सन्) "रेवन्त गिरि रास", 'नेमिनाथ रास' जैसे पचासों रास संज्ञक काव्य लिखे गये; जिन्होंने जनता में पहुँच कर हिन्दी भाषा को लोकप्रिय बनाने में अपना पूरा योग दिया। प्रो० रामचन्द्र शुक्ल एवं डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी के आदिकाल का स्वरूप जिस रूप में स्वीकार किया है, उसे संवारने में जैन कवियों ने विशेष रुचि ली थी। एक ओर तो इन कवियों ने अपनी सशक्त लेखनी से देश के वीरों के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित की तथा दूसरी ओर राजस्थानी कवियों के प्रति वीर रसात्मक काव्य लिखने के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट की। लेकिन जैन कवि एक ही धारा से चिपके नहीं रहे। उन्होंने ऐसे काल में भी आध्यात्मिक, भक्ति परक, एवं नीति परक काव्य लिखकर अपनी जनप्रिय दृष्टि का उदाहरण प्रस्तुत किया। आदिकालिक कृतियों में मुनि रामसिंह का "दोहा पाहुड़" एक महत्वपूर्ण कृति है; जिसमें अध्यात्म, भक्ति एवं नीति के साथ ही तत्कालीन समाज की परम्पराओं पर भी आक्षेप किये गये हैं। डॉ० हीरालाल जैन के अनुसार यह सन् १००० की कृति है; जिसमें २२२ दोहे हैं। रामसिंह राजस्थानी कवि थे और अध्यात्म प्रचार एवं समाज सुधार में उनकी गहरी अभिरुचि थी। योगीन्दु कवि का 'योगसार' एवं 'परमात्म-प्रकाश' अध्यात्म साहित्य की अनुपम कृतियां हैं।

आदिकाल के पश्चात् मध्यकाल में राजस्थानी विद्वानों की हिन्दी सेवा का क्रम अधिक जोर से चला। इस काल के विद्वानों ने दो नाम दिये हैं पहला भक्तिकाल और दूसरा रीतिकाल। इस काल में राजस्थान में मीरां, दादूदयाल, ब्रह्म जिनदास, भट्टारक सकलकीर्ति, कुमुदचन्द्र, ज्ञानभूषण, दौलतराम जैसे कवि हुए; जिन्होंने हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में सर्वाधिक योग दिया। इन कवियों ने हिन्दी को जन भाषा नाम देकर तथा उसमें सैकड़ों कृतियां लिखकर उसे झोंपड़ियों तक पहुंचाने में अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया। हिन्दी में काव्य, चरित, रास, फागु, वेलि, चौपई, दोहा आदि के रूप में सैकड़ों हजारों कृतियों को लिखकर उसे लोकप्रिय बनाया। एक ओर मीरां जैसी सन्त कवयित्री कृष्ण की भक्ति में तल्लीन होकर भक्ति रस से ओत-प्रोत एवं गेय सुलभ पदों की रचना करने लगीं तो दूसरी ओर जैन कवियों द्वारा अध्यात्म, भक्ति एवं नीति परक रचनाएं लिखकर साहित्य की त्रिवेणी को पल्लवित किया। राधाकृष्ण के समान नेमि-राजुल के पदों का निर्माण हुआ,

और उनमें शृंगार एवं विरह की कहानी कही जाने लगी। फागु, रास एवं वेलि परक रचनाओं में खुलकर शृंगार रस का प्रयोग हुआ। भक्ति एवं रीतिकाल में राजस्थान के जैन कवियों ने एक विशाल साहित्य की सर्जना की की; लेकिन अभी उसके शतांश का भी मूल्यांकन नहीं हो सका है। अभी तो केवल बनारसीदास, भूधरदास जैसे कवियों का नामोल्लेख मात्र हुआ है और शेष सारा साहित्य समालोचकों, विद्वानों एवं गवेषकों की दृष्टि से अछूता पड़ा हुआ है।

मध्यकाल में हिन्दी पूर्णतः जन भाषा बन चुकी थी और संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भी सामान्य जन की समझ के बाहर हो चुकी थी। जैनाचार्य एवं विद्वान् जनता की मनोभावना को पहिचान चुके थे। इसलिए उन्होंने १६ वीं शताब्दी से ही संस्कृत प्राकृत ग्रन्थों की हिन्दी वचनिकाएं लिखना प्रारम्भ कर दिया; जिससे उनकी रचनाएं घर-घर पहुंचने लगीं। उनकी न केवल धार्मिक दृष्टि से; अपितु साहित्यिक दृष्टि से भी परख होने लगी। आगरा, कामां, उदयपुर एवं जयपुर में ऐसी ही सैलियां, जिन्हें आजकल के शब्दों में गोष्ठियों का नाम दिया जा सकता है, चलती थी। हिन्दी भाषा में वचनिकाएं लिखने वाले कवि जनप्रिय कवि बन गये और उनकी कृतियों का प्रचार-प्रसार घर-घर तक पहुंच गया।

ऐसे ही जनप्रिय कवियों में महाकवि दौलतराम का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। कविवर दौलतराम का जन्म उस समय हुआ था; जब कबीर दास, मीरां, सूरदास, तुलसीदास एवं बनारसीदास जैसे कवि लोकप्रिय हो चुके थे और उसके साथ ही हिन्दी भाषा की नींव भी सुदृढ़ होती जा रही थी। मीरां एवं सूरदास के पद, रामायण की चौपाइयां तथा बनारसीदास के नाटक समयसार के छन्द मन्दिरों में, घरों में एवं राजपथों पर चलते-चलते गाये जाने लगे थे और सामान्य जनता भी उनके प्रचार-प्रसार के लिए कृत संकल्प हो चुकी थी। प्राकृत एवं संस्कृत ग्रंथों की भाषा वचनिकाएं लिखी जाने लगी थी और सामान्य पाठक उन्हें चाव से पढ़ने लगा था। जैन कवियों का प्रमुख केन्द्र उत्तर प्रदेश से हटकर राजस्थान बन चुका था। ऐसे उपयुक्त वातावरण में कविवर दौलतराम का जन्म हुआ।

महाकवि दौलतराम का जन्म राजस्थान की एक बड़ी रियासत जयपुर के तहसील स्तर के ग्राम बसवा में हुआ। बसवा[1] राजस्थान के प्राचीन नगरों

---

१ बसवा जयपुर से १०३ किलोमीटर एवं देहली से २०५ किलोमीटर दूरी पर स्थित है।

में गिना जाता है। जो देहली से अहमदाबाद जाने वाली पश्चिमी रेल लाइन पर एक स्टेशन है। कवि ने अपनी कृतियों में वसवा का नामोल्लेख किया है किन्तु न उसे ग्राम लिखा और न नगर। वैसे राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों में वसवा में लिपिबद्ध किये हुए कितने ही ग्रंथ मिलते हैं इनमें "त्रिलोक चौवीसी पूजा" की प्रतिलिपि सं० १७०४ में वसवा में ही लिखी हुई उपलब्ध होती है। संवत् १७३३ में त्रिलोकसार की पाण्डुलिपि भी अपने आप में उल्लेखनीय है। स्वयं कवि ने "वसवै वास हमारी जानि" कहकर अपने प्रथम निवास स्थान का 'पुण्यास्रव कथाकोश' की अन्तिम पुष्पिकाओं में वर्णन किया है इनके घर के सामने ही जिन मन्दिर था। रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में वसवा को मध्यप्रदेश का नगर माना है, जो सही नहीं हैं।

दौलतराम का जन्म संवत् १७४६ की आषाढ़ बुदी १४ को हुआ[१]। इनका जन्म नाम बेगराज था। इनके पिता का नाम आनन्दराम एवं पितामह का नाम घासीराम था[२]। ये खण्डेलवाल जाति एवं कासलीवाल गोत्र के दि० जैन श्रावक थे[३]। कवि ने अपनी माता के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं किया। इनका बाल्यकाल कैसे बीता, कहाँ तक अध्ययन किया और ये किसके पास पढ़े इन सब के बारे में कवि मौन हैं किन्तु इनके पिता के उच्च पद पर कार्य करने के कारण इनकी भी शिक्षा अच्छी हुई होगी। और ऐसा लगता है कि इन्हें संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी इन तीनों ही भाषाओं की उत्तम शिक्षा मिली थी। धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन भी इन्हें कराया गया होगा। इनकी विद्वता एवं गहन अध्ययन के कारण ही वे आगरा की 'अध्यातम सैली' के लोकप्रिय सदस्य बन गये थे।

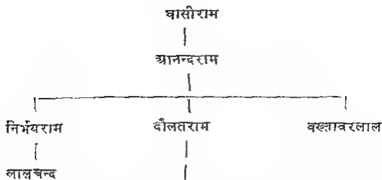
परिवार :— कवि के परिवार का विवरण निम्न प्रकार दिया जा सकता है।

---

१. देखिये राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची चतुर्थभाग—पृष्ठ संख्या २८३

२. दौलतराम आनन्दराम का घासीराम का दिवाण श्री महाराजकंवार माधोसिंह का। राजस्थान राज्य अभिलेखागार रजिस्टर कौमवार नं० २१ पृष्ठ संख्या ७४८

३. जाति बानियाँ श्रावक सोय, खण्डेलवाल जानहुं सब कोय।
अलि कहिए कासलीवाल आनन्दराम सुत वचन रसाल ॥ ६२ ॥
पुण्यास्रव कथाकोश



कवि के पिता आनन्दराम भी जयपुर महाराजा की सेवा में थे और जोधपुर के महाराजा अभैसिंह के पास जयपुर महाराजा की ओर से देहली में रहते थे।

इनका निधन संवत् १७९२ की आषाढ़ सुदी १४ को हुआ।[४] जब कवि की आयु ४३ वर्ष की थी। कवि के पिता की मृत्यु के पश्चात इनके वड़े पुत्र एवं कवि के बड़े भाई निर्भयराम को जयपुर महाराजा की ओर से मातमी का सिरोपाव देहली भेजा गया था। ऐसा राजस्थान राज्य अभिलेखागार में संग्रहीत रिकार्ड मे उल्लेख मिलता है। निर्भयराम भी अपने पिता के समान देहली में महाराजा की ओर से अभैसिंह के पास ही रहते थे। कवि के छोटे भाई बख्तावरलाल के बारे में विशेष उल्लेख नहीं मिलता।

कवि के ६ पुत्र थे। चार पुत्रों का उल्लेख तो स्वयं कवि ने अध्यात्म बारहखड़ी के इकारान्त वर्णन मे किया है जो निम्न प्रकार है :—

ई मे श्री जी की भक्ति प्रार्थना आइ कवि का कवीला को नाव आयो। आनन्द पिता दौलति इत्यादि पुत्र अजितदास इत्यादि चारि दौलति का पुत्र इति इकारावर स्तुति सम्पूर्ण"।

ऐसा लगता है कि उक्त चार पुत्र अध्यात्म बारहखड़ी की समाप्ति तक (संवत् १७९८ तक) हो गये थे। शेष दो पुत्र जोधराज एवं गुलाबदास बाद में हुए होंगे। जोधराज अपने पिता के समान ही साहित्यिक व्यक्ति थे। इन्होंने संवत् १८८४ में कामा में सुखविलास नामक विशाल संग्रह ग्रन्थ की रचना की थी। इस कृति में इन्होंने अपने आपका निम्न प्रकार परिचय दिया है :—

४. देखिये दस्तूर कोमवार राजस्थान अभिलेखागार बीकानेर S.No.1252

दौलत सुख कामा वसै, जोध कासलीवाल।
निज सुख कारन यह कियो, सुखविलास गुणमाल ॥

कवि के छठे पुत्र गुलावदास कार्अभिलेखागार के रिकार्ड मे दौलतराम का पुत्र एवं आनन्दराम का पौत्र के रूप में उल्लेख आया है। इन्हें संवत् १८२० व संवत् १८२४ में जयपुर महाराजा द्वारा सम्मानित किये जाने का उल्लेख भी मिलता है। इनके एक पुत्र सहजराम भी महाराजा जयपुर की सेवा में थे और संवत् १८२८ में इन्हें भी गावों का पूरा लगान जमा कराने के कारण सिरोपाव देकर सम्मानित किया गया था।

दौलतराम का प्रथम पुत्र अजीतदास था जो अपने पिता एवं पितामह के समान जयपुर महाराजाओं का अत्यधिक कृपापात्र था। तथा जिसे उसकी कार्यकुशलता के कारण समय समय पर सम्मानित किया गया था। अजीतदास का सर्वप्रथम उल्लेख संवत् १८०१ का मिलता है जब उन्हें वहात्र परगना की वसूली का कार्य कुशलता पूर्वक सम्पन्न करने के कारण सिरोपाव दिया गया

संवत् १८०४ में उन्हें राज्य सेवा में सिरोपाव से सम्मानित करके उदयपुर भेज दिया गया गया। इस समय स्वयं कवि दौलतराम भी वहीं थे। ऐसा मालूम पड़ता है कि इसके एक दो वर्ष बाद ही दौलतराम जयपुर आगये और उनके स्थान पर अजीतदास कार्य करने लगे। संवत् १८०८ में अपने ही गांव वसवा की वसूली का कार्य इन्हें दिया गया और इसके उपलक्ष में इन्हें फिर सिरोपाव दिया गया। इसके पश्चात् पुनः संवत् १८१२ में वहात्र परगना एवं संवत् १८१८ में कागोड़ परगने की वसूली का कार्य करने के कारण इन्हें सम्मानित किया गया। संवत् १८२१ में कविवर दौलतराम की पौत्री एवं अजीतदास की पुत्री का विवाह हुआ जिसमें महाराजा जयपुर की ओर से ३००) की सहायता दी गई? संवत् १८२४ में दौलतराम के आग्रह से इन्हें मरहठा सरदार रघुनाथराव के पास भेजा गया तब इन्हें हाथी वगैरह पारितोषिक में दिया गया। इस प्रकार अजीतदास, जोधराज एवं गुलावदास के अतिरिक्त शेष तीन पुत्रों के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती!

युवा होने पर महाकवि दौलतराम को एक बार कार्यवश आगरा जाना पड़ा! वसवा से आगरा १०० मील से कुछ अधिक दूर है। आगरा उस समय

उत्तर भारत का प्रमुख नगर था। मुगल शासकों की राजधानी होने के कारण वह व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था। लेकिन इन सबके अतिरिक्त वह सांस्कृतिक नगर भी था। और अध्यात्मिक सैली का केन्द्र भी। महाकवि बनारसीदास का स्वर्गवास हुए ७० वर्ष से भी अधिक हो गये थे लेकिन उनके द्वारा स्थापित अध्यात्म शैली पूर्ववत चल रही थी। इस सैली में कविवर भूधरदास का व्यक्तित्व उभर रहा था। दौलतराम जब आगरा पहुंचे तो वे इस सैली के सहज ही में नियमित सदस्य बन गये और जब तक आगरा रहे, तब तक वे आध्यात्मिक सैली में बराबर जाते रहे। अपनी प्रथम कृति "पुण्यास्रव कथाकोश" में उन्होंने आध्यात्म सैली एवं उनके सदस्यों का विस्तृत वर्णन दिया है। कुछ समय पश्चात् वे इस सैली के प्रमुख सदस्य बन गये। उनकी विद्वता एवं काव्य प्रतिभा के सभी प्रशंसक हो गये। वे स्वयं शास्त्र पढ़ने लगे और श्रोताओं को उन्होंने अपनी व्याख्यान शैली से मुग्ध कर लिया। जब उन्होंने महापुराण का स्वाध्याय समाप्त किया तो श्रोताओं ने उन्हें स्वतन्त्र काव्य लिखने की प्रेरणा दी और सर्व प्रथम उन्होंने आगरा रहते हुए ही संवत् १७७७ में 'पुण्यास्रव कथाकोश' की रचना समाप्त की।

कवि आगरा में कितने वर्षों तक रहे-इसका उन्होंने कहीं भी उल्लेख नहीं किया। लेकिन ऐसा लगता है कि जयपुर स्थापना के पूर्व ही वे बसवा लौट आये और यहां कुछ समय अपने परिवार के साथ रहने के पश्चात वे जयपुर आगये। यह समय कोई सं० १७८५-८६ के लगभग का होगा।

जयपुर नगर का विकास तेजी से हो रहा था। बाहर से आने वाले विद्वानों, साहित्यकारों, कवियों एवं अन्य विद्या में पारंगत विद्वानों को ससम्मान जयपुर में बसाया जा रहा था। ऐसे ही समय में इन्हें भी जयपुर के तत्कालीन महाराजा सवाई जयसिंह ने अपनी सेवा में बुला लिया और सर्वप्रथम संवत् १७८७ आषाढ़ बुदी ८ के शुभ दिन इन्हें जोधपुर के महाराजा अभैसिंह की सेवा में मथुरा भेजा गया। मथुरा जाने के पूर्व इनका सम्मान करने हेतु ४१।) रुपये का सिरोपाव दिया गया[1]। कवि की सूझ बूझ, प्रतिभा एवं कार्य कुशलता के कारण इन्हे संवत् १७९३ की पोषबुदी दशमी के दिन

१. संवत् १७८७ मिती अषाढ वदी ८ मुकाम मथुरा जो मुसारन अलह नै अभैसिंह कनै भेज्यो तीने अजरण महरबानगी सिरोपाव कीमती साविक ४१।) थान ३-राजस्थान राज्य अभिगार रजिस्टर कोमवार पृष्ठ सख्या 748।

महाराजा कुमार माधोसिंह की सेवा में उनके दीवान के रूप में उदयपुर भेज दिया गया और सम्मान सूचक सिरोपाव दिया। उदयपुर जाने के पश्चात कवि को अपनी कार्य कुशलता दिखाने का अच्छा अवसर मिल गया। इनकीसेवाओं से प्रसन्न होकर महाराजा जयपुर ने संवत १७९४ एवं १८०० में उदयपुर में ही सिरोपाव भेजकर इनकी सेवाओं का मूल्यांकन किया। संवत् १८०३ में जब कवि उदयपुर दरबार में जयपुर महाराजा की ओर से वकील थे तो दरबार के खर्च के लिये इन्हें १५०) भेजे गये। त्रेपन क्रियाकोश में इन्होंने अपने आपको "आनन्द सुत जयसुत कौ मंत्री जय को अनुचर" लिखकर एवं जीवधर स्वामी चरित में "दौलतराम उकील पुत्र आनन्द को होई" लिखकर अपना परिचय दिया है !

आगरा के समान उदयपुर में भी ये तत्कालीन समाज समाज में सम्मानित व्यक्ति माने जाने लगे थे। नगर की धानमंडी के दि० जैन अग्रवाल मन्दिर में ये प्रतिदिन जाते थे। इन्होंने आगरा के समान उदयपुर में भी एक आध्यात्मिक सैली स्थापित की और स्वयं ही शास्त्र प्रवचन करने लगे। यहां आने के कुछ ही वर्षों के पश्चात् इन्होंने 'त्रेपन क्रियाकोश' की रचना की। यह ग्रंथ कवि की स्वतन्त्र कृति है, जिसमें श्रावकों के आचार-धर्म का विस्तृत वर्णन किया गया है। 'त्रेपन क्रियाकोश' के पश्चात् वे 'अध्यात्म बारहखड़ी' की रचना में लग गये। यह कवि की सबसे बड़ी पद्यात्मक कृति है। भक्ति एवं अध्यात्म की इस अनूठी कृति को लिखने में कितना समय लगा होगा। इन्होंने संवत् १७९८ में इसे विशाल कृति को समाप्त करके अपनी साहित्यक प्रतिभा के चार चांद लगा दिये। इस कृति के निर्माण से कवि की यशोगाथा और भी फैल गयी और अब उनकी चर्चा चारों ओर होने लगी। बारहखड़ी संज्ञक रचनाओं में इसका महत्वपूर्ण स्थान है और कवि के विशाल ज्ञान का परिचायक है। उदयपुर उनके लिये वरदान सिद्ध हुआ और साहित्यिक क्षेत्र में उन्होंने यहां रहते हुए महान् सेवायें की। सं० १८०५ में उन्होंने "जीवधर चरित" नामक प्रबन्ध काव्य को समाप्त किया, जिसके निर्माण का आग्रह वहीं के कुछ श्रवकों ने किया था। इसके पश्चात ये और भी साहित्यिक सेवा में लग गये। "जीवन्धर चरित" हिन्दी का प्रबन्ध काव्य है: जिसमें कवि ने अपनी काव्य प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। कवि का उदयपुर में बहुत सम्मान था। शासक एवं शासित दोनों ही वर्गों में ये लोकप्रिय थे। वक्तृत्व शक्ति के धनी थे तथा तथा लेखन शक्ति इन्हें जन्म से ही प्राप्त थी। इसीलिये उदयपुर प्रवास में ये वहां सर्वप्रिय बन गये। स्वयं उदयपुर महाराणा की इन पर विशेष कृपा

थी। तत्कालीन महाराणा जगतसिंह की विशेष कृपा का इन्होंने निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

रहे राण के पास, रांण अति किरपा करई।
जानै नांकौ तांहि, भेद भाव जु नहिं धरई ।।

इसके पश्चात् कवि कितने वर्षों तक उदयपुर और रहे, इसकी उनकी रचना के आधार पर कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती; लेकिन संवत् १८०७ तक वे जयपुर आगये होंगे—ऐसा जान पड़ता है। क्योंकि इसी वर्ष महाराजा सवाई माधोसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठे थे और इन्हीं महाराजा के कवि मन्त्री रह चुके थे।

जयपुर आने के पश्चात् वे पुनः जयपुर महाराजा की सेवा में रहने लगे। राज्य सेवा के अतिरिक्त उन्होंने अपना शेष जीवन साहित्य सेवा में समर्पित कर दिया। इसी समय यहां पं० टोडरमल का व्यक्तित्व उभर रहा था। वे महान् क्रान्तिकारी समाज-सुधारक थे, साथ ही में सिद्धान्त ग्रन्थों के महान् ज्ञाता थे। उनकी वाणी में जादू था तथा उन्होंने अपने पाडित्य से सारे जयपुर को प्रभावित कर लिया था। कविवर दौलतराम का सर्व प्रथम परिचय जब उनसे हुआ तो ऐसा मालूम होने लगा जैसे गंगा-यमुना का संगम हो गया हो। दौलतराम शासन में थे। महाराजा के अधिक निकट थे। इसलिए उन्होंने अपने आपको सक्रिय समाज सेवा से दूर रखकर साहित्य निर्माण की ओर अधिक लगाया। अब तक उन्होंने "पुण्यास्रव कथाकोश" को छोड़कर शेष रचनाएं प्रमुखतः पद्य में ही निर्मित की थी। लेकिन टोडरमल के प्रभाव के कारण वे भी गद्य की ओर झुके और संवत् १८१६ से लेकर १८२९ तक ८ महान् एवं विशालकाय ग्रन्थों की रचना कर डाली। वास्तव में इतने थोड़े से समय में इतना विशाल साहित्य का निर्माण कर उन्होंने तत्कालीन समाज के बड़े-बड़े पंडितों को आश्चर्य चकित कर दिया।

इनमें श्रीपाल चरित्र एवं विवेक-विलास को छोड़कर शेष सभी ग्रन्थ हिन्दी गद्य में लिखे गये। इनमें पद्मपुराण, आदिपुराण, हरिवंश पुराण जैसे ग्रन्थ भी शामिल हैं। वास्तव में इन रचनाओं के माध्यम से उन्होंने जनता के स्वाध्याय का क्रम ही बदल दिया और फिर तो सारे देश में उन्हीं के ग्रन्थों का स्वाध्याय होने लगा।

दौलतराम एवं टोडरमल का साथ अधिक समय नहीं रह सका। टोडरमल का स्वर्गवास स० १८२६ के पूर्व ही हो गया, इसलिए उनकी अपूर्ण

कृति को भी इन्हें ही पूर्ण करना पड़ा। कवि टोडरमल की विद्वत्ता से अत्यधिक प्रभावित थे। इसलिए जब 'पुरुषार्थसिद्ध युपाय' को पूरा करने का प्रश्न आया, तो रतनचन्द दीवान ने अत्यधिक विनय के साथ दौलतराम से प्रार्थना की—

तासु रतन दीवान ने कही प्रीत धर एह ।
करिये टीका पूरण उर धा धरम सनेह ।।
तब टीका पूरण करी भाषा रूप निधान ।

"पुरुषार्थसिद्ध युपाय भाषा" का रचना काल सं० १८२७ है।[1] इसी वर्ष या इसके कुछ समय पहिले इन्होंने "विवेक विलास" जैसे आध्यात्मिक ग्रन्थ को समाप्त किया और फिर "हरिवंश पुराण" जैसी विशाल गद्य कृति को संवत् १८२९ में समाप्त किया।[2] यह कवि की अन्तिम कृति थी।

इसी वर्ष भादवा सुदी २ को उनका स्वर्गवास हो गया। राजस्थान राज्य अभिलेखागार में संग्रहीत रिकार्ड के अनुसार फागुन सुदी ११ को कवि के बड़े पुत्र अजीतदास की मातमी होने पर राज्य की ओर से सिरोपाव प्रदान किया गया।[3]

दौलतराम नाम वाले अन्य विद्वान—

दौलतराम के नाम से अब तक जितने प्रसिद्ध विद्वान हुए उनमें से कुछ प्रसिद्ध विद्वान् निम्न प्रकार हैं—

१. दिलाराम अथवा दौलतराम

ये बूंदी के रहने वाले थे और इन्होंने संवत् १७६८ में दिलाराम

---

१. अट्ठारहसै ऊपरे संवत सत्ताईस
मास मार्गशिर ऋतु शिशिर दोयज रजनीश ।।

२ अट्ठारह सौ संवता, ता पर धर गुणतीस ।
वार शुक्र पूर्यो तिथि, चैत मास रति ईस ।।२६।।

३ संवत् १८८९ मिती भादवा सुदि २ वाके मिती फागुण सुदी ११ नैं वाबति मुसारन अलह का बाप की मातमी को सिरोपाव बगस्यो कीमती साबिक थान ३।

विलास एवं आत्म-द्वादशी कृतियां लिखी थीं। ये पाटनी गोत्र के श्रावक थे तथा पिता का नाम चतुर्भुज था।

२. दौलतराम :

ये असनी (फतेहर) के निवासी थे। और इनके पिता का नाम शिवनाथ था। इन्होने लगभग १८९७ में अलंकार सग्रह एवं कविप्रिया पर टीका लिखी थी। ये जैनेतर विद्वान् थे।

३. दौलतराम :

ये मारवाड़ नरेश महाराजा मानसिंह के आश्रित थे। इनका समय संवत् १८६३ के लगभग माना गया है। इनकी एक रचना "जालधर नाथ जी रो गुण" उपलब्ध होती है।

४. दौलतराम :

ये मैनपुरी के रहने वाले थे। जाति से कायस्थ थे। उनकी एक लघु कृति "ज्योनार" नाम से मिलती है।

५. दौलतराम :

ये हाथरस के रहने वाले थे। इनका जन्म संवत् १८५५–५६ में हुआ। इनके पिता का नाम टोडरमल एवं जाति पल्लीवाल जैन थी। कपड़े के व्यापार के साथ कविता बनाने की भी इनकी प्रारम्भ से ही रुचि थी। इनके आध्यात्मिक एव भक्ति परक पद अत्यधिक उच्चकोटि के मिलते हैं, जो १०० से भी धक संख्या में हैं। इनकी 'छहढाला' के लघु होने पर भी जैन समाज मे अत्यधिक लोकप्रिय है।

तत्कालीन साहित्यिक वातावरण

कविवर दौलतराम का समय सं० १७४९ से १८२९ तक रहा है। उस समय राजस्थान का साहित्यिक वातावरण कैसा था—इस सम्बन्ध मे यहां कुछ विचार करना है। यह तो निर्विवाद रूप से सही है कि उस समय तक हिन्दी भाषा को प्रतिष्ठा हो चुकी थी और उसके चार स्तम्भ कबीरदास, सूरदास, मीरां, तुलसीदास जैसे महाकवि हो चुके थे तथा ही रल्ह, सधारु, ब्रह्म जिनदास, रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, बनारसीदास, राजमल्ल जैसे जैन कवियों ने भी अपनी हिन्दी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी को पूर्ण रूप से अपना लिया था। उधर आमेर मे हिन्दी का अच्छा वातावरण था और यहां कितने

ही विद्वानों ने इसके प्रचार प्रसार की ओर विशेष योग दिया था। इनमें कविवर विहारी की "सतसई" का शृंगार रस की महत्वपूर्ण कृति के रूप में समादर होने लगा था। आमेर में ही अजयराज पाटनी हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् थे। जिनकी छोटी-बड़ी लगभग २० रचनाएं प्राप्त हो चुकी हैं। इनमें आदिपुराण भाषा (१७६७). नेमिनाथ चरित (१७९३), यशोधर चौपई (१७९२) जैसे महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। अजयराज कवि के समकालीन विद्वान् थे। तथा उन्होंने आमेर के सम्बन्ध में अच्छा वर्णन लिखा है। पं० नेमिचन्द भी आमेर के ही कवि थे; जिनकी एकमात्र कृति 'नेमिनाथ रास' हिन्दी का अच्छा प्रबन्ध काव्य है। कवि ने इसे सं० १७६९ में ही समाप्त किया था।

सतरासै गुणहत्तरे सुदि आसोज दसे रवि जाणंतौ।
रास रच्यो श्री नेमिको, बुद्धि सारु में कियो वखाणतौ ।।

आमेर के समान सांगानेर में भी कवि के पूर्व हिन्दी के कितने ही विद्वान हो चुके थे और उन्होंने भी साहित्य की खूब सेवा की थी। इनमें ब्रह्म रायमल्ल, जोधराज गोदीका, किशनसिंह के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। ब्रह्म रायमल्ल सन्त कवि थे और उनकी कृतियों में 'हनुमत रास', 'श्रीपाल रास', 'सुदर्शनरास', 'भविष्यदत्त कथा' के नाम उल्लेखनीय है। जोधराज गोदीका की 'सम्यकत्व कौमुदी' कथा उल्लेखनीय कृति है; जिसका रचना काल संवद् १७२४ है।

समकालीन हिन्दी विद्वान्

महाकवि दौलतराम का समय सवत् १७४९ से १८२९ तक का है। ८० वर्ष का यह समय भारत के इतिहास का एक धुंधला चित्र उपस्थित करता है। उस काल में राजनैतिक अस्थिरता तो थी ही, सामाजिक दृष्टि से भी समाज में अन्तर्विरोध था। रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों में वह फंसता जा रहा था। १४ से १८वीं शताब्दी तक अत्यधिक समर्थ भट्टारक संस्था का ह्रास प्रारम्भ हो गया था, तथा समाज में उनके विरुद्ध विद्रोह होने लगा था। अध्यात्म-शैलियों ने इस संस्था के ह्रास में विशेष योग दिया। समाज में स्पष्ट रूप से दो दल बन चुके थे। भट्टारकों के समर्थक बीस पंथ आम्नाय वाले कहलाने लगे। जबकि उनके विरोधी एवं समाज सुधारक तेरह पंथ अम्नाय वाले कहलाने लगे थे। इसी प्रकार विद्वानों में भी दो विचार-धारायें आ चुकी थीं। आगरा, आमेर, उदयपुर, जयपुर एवं सांगानेर में विद्वानों का विशेष जोर था। एवं वहां उनका व्यापक प्रभाव भी था। इन विद्वानों ने सवत् १७५० से

१९०० तक जितना जबरदस्त साहित्य-लेखन का कार्य किया, उसने देश में साहित्य के प्रति नवीन क्रान्ति पैदा की और इससे समाज में नव चेतना जागृत हुई। नये-नये ग्रन्थों की मांग होने लगी और उसकी पूर्ति भी हमारे इन्हीं विद्वानों ने की। यहां हम ऐसे ही कुछ प्रमुख विद्वानों का परिचय उपस्थित कर रहे हैं—

भूधरदास :

दौलतराम एवं भूधरदास की भेंट सर्व प्रथम आगरे में हुई थी। दौलतराम के अनुसार भूधरदास आगरे की अध्यात्म शैली के प्रमुख विद्वान् थे। वे स्याहगंज मे रहते थे। ये अधिकांश समय जिनेन्द्र पूजा एवं भक्ति में लवलीन रहते थे। भूधरदास का जन्म कब और कहां हुआ? उनकी शिक्षा-दीक्षा कहां हुई तथा वे जीवन भर क्या करते रहे, इसके सम्बन्ध में कवि की रचनाएं मौन हैं। कवि को संस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थों का अच्छा ज्ञान था। पुराण साहित्य का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था—जिसका स्पष्ट प्रभाव उनकी रचनाओं में मिलता है। कवि खण्डेलवाल जैन थे तथा एक विद्वान् के अनुसार उनका भी गोत्र कासलीवाल था। अतः दौलतराम जब आगरा पहुंचे तो दोनों कवियों में घनिष्ट सम्बन्ध हो गया।

'भूधरदास' का साहित्यिक जीवन संभवत. अधिक लम्बा नहीं रहा। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम १५–२० वर्ष ही साहित्य सेवा एवं लेखन में लगाये। उनकी प्रथम कृति जैन शतक है; जिसे उन्होंने संवत् १७८१ पौष कृष्णा १३ रविवार के दिन समाप्त की थी। इसकी रचना महाराजा सवाई जयसिंह के सूबा हाकिम गुलावचन्द की प्रेरणा से हुई थी। गुलावचन्द शाह हरीसिंह के वंशज थे; जो धार्मिक प्रकृति वाले व्यक्ति थे तथा आगरा आने पर उसने कवि से निवेदन किया था—

आगरे में वाल वुद्धि भूधर खण्डेलवाल,
वालक के ख्याल सों कवित्त रच जाने हैं।
ऐसे ही करत भये जैसिंघ सवाई सूवा,
हाकिम गुलावचन्द आये तिहि ठाने है।
हरीसिंह शाह के सवंस धर्मरागी नर,
तिनके कहे सौं जोरि दीनी एक ठाने है।

फिरि फिरि मेरे मेरे आलस का अंस भयो,
उनकी सहाय यह मेरे मान माने हैं ।
सतरहसै इक्यासिया, पोह पांख तमलीन,
तिथि तेरस रविवार को. शतक समापत कीन ।।४१।।

जैन शतक स्तुति परक, नीति परक एवं जैनधर्म महिमापरक कृति है। उनकी दूसरी कृति पार्श्वपुराण है जो हिन्दी की एक बेजोड़ कृति है। यह एक महाकाव्य है; जिसमें २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवन चरित को निबद्ध किया गया है। भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से यह कृति भाषा साहित्य की सर्वोत्तम कृतियों में से है। इसकी रचना सं० १७८९ में हुई थी। पार्श्वपुराण जैन-साहित्य में सर्वाधिक लोकप्रिय काव्यों में से है; जिसकी पाण्डुलिपियां आज भी राजस्थान के ही नहीं किन्तु समस्त देश के शास्त्र भण्डारों में विपुल संख्या में संग्रहीत हैं। इस पुराण के अतिरिक्त कवि ने हिन्दी पद भी लिखे हैं, जिनकी संख्या ७४ है जो अध्यात्म एवं भक्ति परक हैं।

भूधरदास यद्यपि आगरे के थे, लेकिन उनका जयपुर के विद्वानों से विशेष सम्बन्ध था। कवि कभी जयपुर आये थे या नहीं—इसके सम्बन्ध में तो कोई निश्चित तथ्य नहीं मिलते लेकिन यह अवश्य है कि इनका जयपुर के विद्वानों एवं समाज के नेताओं तथा उच्च अधिकारियों से अच्छा परिचय था। आगरा के मन्दिरों में स्थित जैन भण्डारों की विशेष खोज नहीं होने के कारण अभी इनके जन्म एवं मृत्यु के बारे में निश्चित तिथि नहीं मिलती। लेकिन कवि संवत् १८०० के पूर्व ही स्वर्गवासी हो गये हों—ऐसा अनुमानित किया जाता है।

किशनसिंह :

ये रामपुरा के निवासी थे। रामपुरा उणियारा-टोंक के समीप है तथा जो आजकल अलीगढ़ के नाम से जाना जाता है। किशनसिंह के पिता का नाम सुखदेव पाटनी था; जिनके द्वारा अलीगढ़ (रामपुरा) में एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया गया था तथा जिसका लेख इसी मन्दिर में उत्कीर्ण है। मन्दिर की नींव संवत् १७२१ में लगी थी। किशनसिंह दो भाई थे। आनन्द सिंह इनके लघु भ्राता थे। ये भी खण्डेलवाल एवं पाटनी गोत्र के थे। इनके पिता माथुरदास वसंत के प्रधान थे। उनकी सभी ओर प्रसिद्धि थी। लेकिन किशनसिंह अपने गांव में नहीं रहे और सांगानेर आकर बस गये। ये संभवतः

कुछ समय चौथ का बरवाड़ा तथा आगरा भी रहे थे। सांगानेर आने के पश्चात् वे साहित्य निर्माण में लग गये। उन्होंने १० से भी अधिक रचनाएं की हैं। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—

१.	णमोकार रास	संवत् १७६०
२.	चौबीस दण्डक	,, १७६४
३.	पुण्यास्रव कथाकोश	,, १७७३
४.	भद्रबाहु चरित्र	,, १७८३
५.	त्रेपनक्रिया कोश	,, १७८४
६.	लब्धि विधान कथा	,, १७८२
७.	निर्वाण काण्ड भाषा	,, १७८३
८.	चतुर्विंशति स्तुति	—
९.	चेतन गीत	—
१०.	चेतन लोरी	—
११.	पद संग्रह	—

नेमिचन्द :

आमेर के जिन हिन्दी विद्वानों एवं कवियों ने साहित्य निर्माण में गहरी अभिरुचि ली थी; उनमें कविवर नेमीचन्द का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। नेमिचन्द आमेर की भट्टारक गादी के भट्टारक जगत्कीर्ति के प्रमुख शिष्य थे। वे खण्डेलवाल जाति के सेठी गोत्र के श्रावक थे तथा अपनी आजीविका उपार्जन के अतिरिक्त शेष समय को काव्य रचना में लगाया करते थे। इनके समय में 'आमेर ही' ढूंढाहड प्रदेश की राजधानी थी और उनका यश अपनी सर्वोच्च अवस्था में पहुंच चुका था। कवि ने अपनी कृतियों में आमेर नगर का जो सुन्दर वर्णन किया है, उससे नगर के वैभव, सम्पन्नता एवं विशालता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।[1]

नेमिचन्द दो भाई थे झगडु इनके छोटे भाई का नाम था। इनके कितने ही शिष्य थे; जिनमें डूंगरसी एवं रूपचन्द के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। कवि की अब तक तीन कृतिओं की उपलब्धि हो चुकी है, जिनके नाम नेमीश्वर रास, नेमीश्वर गीत एवं प्रीत्यंकर चौपई हैं।

'नेमीश्वर रास' इनकी प्रमुख कृति है। यह हिन्दी का एक पद्य-गद्य मिश्रित काव्य है। काव्य की कथावस्तु गद्य एवं पद्य दोनों में ही वर्णित है।

१ प्रशस्ति संग्रहः पृ २७६

हिन्दी-भाषा का यह संभवतः प्रथम काव्य है। जो इतना प्राचीन है; जिसमें गद्य एवं पद्य दोनों ही को अपनाया गया है। रास में ३६ अधिकार हैं। जिनमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन का वर्णन किया गया है। साथ ही में महाभारत की कथा का भी समावेश किया गया है। रास का रचना काल संवत् १७६६ आसोज सुदी १३ रविवार है। पूरा रास १३०८ छन्दों में समाप्त होता है, जिनका विभाजन निम्न प्रकार है—

दोहा	सोरठा	सवैया	कड़ख	ढाल	कुल योग
२६०	२५	२	११	१०१०	१३०८

इसके अतिरिक्त गद्य में जो वर्णन मिलता है, वह उक्त संख्या से अतिरिक्त है। कृति का दूसरा नाम हरिवंश पुराण भी दिया हुआ है।

"प्रीत्यंकर चौपई" कवि की दूसरी बड़ी रचना है, जो दोहा और चौपई-छन्दों में निबद्ध है, जिनकी संख्या ३१६ है। इसका रचना काल सं० १७७१ वैशाख सुदी ११ है। चौपाई का आरम्भ प्राचीन परम्परा के अनुसार हुआ है; जिसमें चौबीस तीर्थंकरों के स्तवन के पश्चात् पंच परमेष्ठियों की भक्ति एवं आचार्य कुन्दकुन्द का स्मरण किया गया है। चौपई की भाषा राजस्थानी है—

जीवां वैर भाव मिट गयो, आपस में सब आनन्द भयो।
वनमाली हास्यो भयो देखि, छह रिति मां फल फूल वसै।
वनमाली फल फूल विराय, श्रेणिक राजा वंदौं जू भाय।

दीपचन्द कासलीवाल :

दीपचन्द कासलीवाल भी आमेर नगर के ही कवि थे। ये भी कवि दौलतराम कासलीवाल के समकालीन कवि थे और इन्हीं के समान गद्य-पद्य दोनों ही शैलियों में रचना करने वाले थे। लेकिन इनका अध्यात्म की ओर अधिक झुकाव था। इसलिये इनकी अधिकांश रचनायें अध्यात्म प्रधान हैं।

कवि का जन्म कब हुआ था। इसके सम्बन्ध में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती! इनकी एक रचना 'आत्मावलोकन' सं० १७७४ की कृति है। इसलिए इनका जन्म सं० १७३० के आस पास होना चाहिये। इनकी एक अन्य रचना सं० १७८१ की है। यदि इसे कवि की अन्तिम रचना मान ली जाये तो इनका सम्पूर्ण जीवन संवत् १७३० से १७८५ तक का माना जा सकता है। इनके नाम के पूर्व शाह शब्द का प्रयोग होता था;

इससे ज्ञात होता है कि कवि समाज के प्रतिष्ठित पद पर आसीन थे। ये पहले सांगानेर रहते थे और फिर आमेर आकर रहने लगे थे। कवि ने अपनी 'चिद्विलास' नामक कृति मे इनका वर्णन निम्न प्रकार से किया है।

"इस ग्रंथ में प्रथम परमात्मा का वर्णन किया, पीछे उपाय परमात्मा पायवे का दिखाया। जे परमात्मा को जनमौ कियो चाहै ते या ग्रंथ को वार-वार विचारो। यह ग्रन्थ दीपचन्द साधर्मी कीया वास है, सागानेर, आमेर में आय, तब यह ग्रंथ कियो सं० १७७९ का मिति फागुण वदी पंचमी कौ यह ग्रंथ पूर्ण कियो।

कवि की अब तक निम्न कृतियां उपलब्ध हो चुकी है—

१. अनुभव प्रकाश, २. आत्मावलोकन, ३. चिद्विलास
४. परमात्म पुराण, ५. उपदेश रत्नमाला, ६ ज्ञान मार्त्तण्ड

'अनुभव प्रकाश' पूर्ण आध्यात्मिक रचना है। धारावाहिक रूप मे यह गद्य काव्य यद्यपि आकार में लघु है, लेकिन जिस रीति से कवि ने गागर मे सागर भर दिया है; वह उनकी विद्वत्ता एवं थोड़े में अधिक गम्भीर बात कहने का चातुर्य्य प्रगट करता है।

'आत्मावलोकन' इनकी दूसरी आध्यात्मिक कृति है। जिसमे आत्मा एव परमात्मा के सम्बन्ध पर विशद विवेचन किया गया है। गद्य शैली में इस प्रकार का विवेचन अन्य कवियों द्वारा बहुत ही कम हुआ है। ग्रन्थ मे विभिन्न अधिकार है। इसकी भाषा ढूंढारी है; जिस पर ब्रज भाषा का पूर्ण प्रभाव है। पर साथ ही उर्दू भाषा के शब्दो का भी प्रयोग हुआ है।

इसी प्रकार की कवि की अन्य कृतिया भी अध्यात्मपूर्ण हैं। महाकवि दौलतराम मे इनका कितना सम्पर्क रहा इसके सम्बन्ध में निश्चित जानकारी नही मिलती।

अजयराज पाटनी :

"अजयराज पाटनी" दौलतराम के समकालीन श्रेष्ठ विद्वान थे। पाटनी जी हिन्दी के श्रेष्ठ कवि थे। अपनी लघु रचनाओं द्वारा पाठको को नयी-नयी कृतियां भेंट किया करते थे। अब तक उनकी २० रचनाओं का पता लग चुका है, जिनमे पूजा, जयमाल, कथा, गीत, चरित, चौपई, विवाह, वंदना, वत्तीसी आदि सभी नाम की कृतिया मिलती हैं। राजस्थान के विभिन्न

शास्त्र-भण्डारों में अब तक इनकी निम्न रचनाएं उपलब्ध होती हैं—

१. आदिनाथ पूजा, २. कक्का वत्तीसी, ३. चरखा चउपई, ४. चार मित्रों की कथा, ५. चौबीस तीर्थंकर पूजा, ६. चौबीस तीर्थंकर स्तुति, ७. जिन गीत, ८. जिनजी की रसोई, ९. ठामोकार सिद्धि. १०. नन्दीश्वर पूजा, ११. नेमिनाथ चरित्र, १२. पंच मेरु पूजा, १३. पार्श्वनाथजी का सालेहा, १४. बाल्य वर्णन, १५. बीस तीर्थंकरों की जयमाल, १६. यशोधर चौपई, १७. वंदना, १८. शांतिनाथ जयमाल, १९. शिवरमणी विवाह, २०. विनती।

उक्त रचनायें कवि की काव्य विविधता की ओर संकेत करती हैं। जिनमें सामान्य विषय से लेकर रूपक काव्य तक की रचनायें उपलब्ध होती हैं। कवि प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी थे; जो उनकी रचनाओं की विभिन्न प्रशस्तियों से मालूम होती है। ये पाक शास्त्र के भी विशेषज्ञ थे। 'जिनजी की रसोई' कृति में पाक शास्त्र का अच्छा परिचय मिलता है। 'शिव रमणी विवाह' में तीर्थंकर की बरात का रूपक बांधा गया है; जिसमें तीर्थंकर दुल्हा है तथा मुक्ति को वधू के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तीर्थंकर के प्रवचनों को सुनने वाले सभी भव्य जन उनके बराती हैं। पंचम गति अर्थात् मोक्ष ससुराल है; जहां वे मुक्तिवधु के साथ ज्ञान सरोवर में खूब स्नान किया करते हैं। यद्यपि इसमें केवल १७ पद्य ही हैं; लेकिन रूपकों का अच्छा रूप प्रस्तुत किया गया है।

इसी तरह चरखा चौपई भी एक सुन्दर रूपक काव्य है। इसमें कवि ने गागर में सागर भरा है। चरखे को लेकर कवि ने जो रूपक बांधा है, वैसा रूपक अन्यत्र मिलना कठिन है। इस लघु कृति में शील और संयम दो खूंटे हैं। शुभ ध्यान ताड़ियां एवं शुक्ल ध्यान को चरखे का पाया बनाया है। संसार रूपी जेवड़ी का दामण, दश धर्म को माल, चार दान को हथली तथा आत्मा को ताक् के रूप में प्रस्तुत किया है। क्षमा की आटियां बनाकर ज्ञान गुफा में रखने की ओर संकेत किया गया है। उस शताब्दि में 'चरखा' अत्यधिक लोकप्रिय था तथा सब रोजी-रोटी देने वाला एवं गरीबों का एकमात्र सहारा था।[1]

—भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण कृति है।

---

१ ऐसो चरखो गांव कोय, ताके घर अति आनन्द होय।
अजैराज थोड़ा में कही, चतर नारि मानि जो सही॥

'जिनजी की रसोई' पाक शास्त्र पर एक महत्वपूर्ण कृति है। जैन कवियों द्वारा लिखी हुई संभवतः ऐसी प्रथम रचना है जो केवल पाक-शास्त्र से सम्बन्ध रखती है। इसमे कवि ने व्यञ्जनों, पक्वानो एवं फलों के नाम गिनाकर उनके बनाने की विधि का उल्लेख किया है। इसी के साथ तीर्थंकर के विविध प्रकार के आभूषणों का भी वर्णन मिलता है। जैसे रूठे हुये कृष्ण जी को यशोदा मनाती थी; उसी तरह इसमें कवि ने "तुम रूसो मत मेरे चिमना, खेलो बहुविधि घर के अंगना" कहकर उन्हें मनाने की प्रक्रिया अपनायी है।

सोहे सुन्दर कुण्डल कान, गले हार मोतिन को जाणि।
कडा जड़ाऊं हाथा पगा, रंग रंग का पहरे झंगा ॥

हीरा जडित पांच अति सोहे, सुर नर नाग सकल मन मोहे।
माथे मुकुट अनुपम सार, खेले कुंवर महासुख कार ॥

इसी तरह विविध प्रकार के व्यञ्जनों का जब वर्णन किया गया है; तो ऐसा लगता है कि मानों स्वयं कवि उन्हे बनाने बैठ गया हो—

जांबू नींबू खारा मिठा, करी सवाद रही मति रूठा।
सरदा खरबूजा काकडी, नीकी आणी तुरत की घड़ी ॥

केरीपाक मुरवा भला, पांति खांड घी में घिलमिला।
छोलि वादाम धरे अखरोट, चारोली पिस्ता की मोट ॥

बेसण की चोखी पापडी, विरत मांहि तलतै भी धरी।
मूख विलास मुख मांहि विलाई, तास वोपमा कही न जाई।

प्रस्तुत रचना संवत् १७९५ की है। एक ओर आमेर मे अजयराज साहित्य की गंगा बहा रहे थे तो दूसरी ओर दौलतराम उदयपुर में काव्य रचना कर रहे थे। अजयराज अन्त तक आमेर मे ही रहे और जयपुर बसने के बाद भी उन्होने आमेर मे रहना ही उचित समझा। इन्होने आमेर नगर, वहां के राजमहल, प्राकृतिक दृश्य, मन्दिर आदि का अच्छा वर्णन किया है। इन्होंने महाराजा जयसिंह के शासन काल का भी उल्लेख किया है। एक वर्णन देखिये—

अजयराज इह कीयो वखाण, राज सवाई जयसिंह आण।
अंबावती सहरे सुभ थान, जिन मन्दिर जिन देव विमान ॥

नीर निवाण सोहै वनराई, वेलि गुलाव चमेली जाई ।
चंपो मरवो अरु सेवति, यो हो नाना विधि किती ।।
बहु मेवा बहुविधि सार, वरणत मोहे लागै वार ।
गढ़ मन्दिर कछु कह्यो न जाइ, मुखिया लोग वसै अधिकाई ।।
तामैं जिन मन्दिर इकसार, तहां विराजै नेमि कुमार ।
स्याम मूर्ति शोभा अति घणी, ताकी वोपमा जाइ न वणी ।।

खुशालचन्द काला :

खुशालचन्द राजस्थान के गौरवमान कवि थे । अपने जीवन के बीस से भी अधिक वसन्त ऋतुयें इन्होंने साहित्य निर्माण में व्यतीत की थी । कवि को एक नगर में रहने का अवसर नहीं मिला । इनके पूर्वज टोडारायसिंह के निवासी थे; लेकिन फिर जिहानाबाद—जयसिंह पुरा में जाकर रहने लगे थे । कवि का जन्म संभवतः यहीं हुआ होगा । इनके पिता का नाम सुन्दरदास एवं माता का नाम सुजानदे था । काला इनका गोत्र था । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा जयसिंहपुरा में ही हुई थी; लेकिन फिर भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के साथ ये सांगानेर आ गये और कविवर लक्ष्मीदास चांदवाड़ के शिष्य बनने का इन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ । इन्हीं के पास इन्होंने शास्त्र ज्ञान प्राप्त हुआ, जिसका उल्लेख कवि ने अपनी रचनाओं में बड़ी कृतज्ञता से किया है—

जिन सु भये तहां नाम लिखमीदास,
चतुर विवेकी श्रुत ज्ञान कूं उपाय कै ।
तिहनै पास मै भी कछु अल्प सो प्रकाश भयो,
फेरि मैं वस्यो जिहानांवाद मध्य आयके ।।

इसके पश्चात् कवि फिर वापिस जयसिंह पुरा चले गये । वहां सुखानन्द नाम के उत्तम वणिक थे । उन्हीं के घर में गोकुलचन्द श्रावक रहते थे; जिनको कवि शास्त्र सुनाया करते थे । उन्ही के आग्रह से कवि ने संवत् १७८० में हरिवंश पुराण की रचना की थी—

सरह मध्य इक वणिक वर, साह सुखानन्द जानि ।
ताके गेह विषै रहै, गोकुलचंद सु जानि ।।१०।।

तिन ढिग मैं जाऊं सदा, पढ़ुं शास्त्र सुभाय।
तिनकौ वर उपदेश लै, मैं भाषा बनवाय ॥११॥

कवि ने अपनी रचनाओं में—महाराज जयसिंह, उनके प्रसिद्ध नगर सांगानेर एवं उसमें होने वाले धार्मिक उत्सवों का अच्छा वर्णन किया है। उस समय महाराजा विसनसिंह के सुत महाराजा जयसिंह द्वितीय का आमेर में शासन था।

देश ढुंढाहर जाणौं सार, तामैं धरम तणुं अधिकार।
विसनसिंह सुत जैसिंह राय, राज करै सबकूं सुखदाय॥
देश तनी महिमा अति बनी, जिन-गेहा करि अति ही बनी।
जिन मन्दिर भवि पूजा करैं, केइक व्रत ले केइक धरै॥
जिन मन्दिर करवाये नवा, सुरग विमान तनी कर धवा।
रथ जात्रादि होत बहु जहां, पुन्य उपावन भवियन तहां॥

खुशालचन्द काला के अब तक जिन ग्रन्थों की उपलब्धि हो चुकी है—वे निम्न प्रकार हैं—

१. हरिवंश पुराण, २. यशोधर चरित, ३. पद्मपुराण, ४. व्रत कथाकोश, ५. जम्बूस्वामी चरित, ६. धन्यकुमार चरित, ७. सद्भाषितावली, ८. उत्तर पुराण, ९. चौबीस महाराज पूजा, १०. शान्ति नाथ पुराण, ११. वर्द्धमान पुराण।

—ये सभी कृतियां हिन्दी भाषा की सुन्दर कृतियां है, जिनमे काव्य के सभी लक्षण उपलब्ध होते है। हरिवंश पुराण ३९ संधियों का महाकाव्य है, जिसमे २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ एवं 'महाभारत की कथा का विस्तृत वर्णन है। पुराण में दोहा, चौपाई, अरिल्ल, सवैय्या, सोरठा आदि छन्दों का उपयोग हुआ है। इसका रचनाकाल संवत् १७८० वैशाख सुदी तीज है। इसी तरह उत्तर पुराण का रचना काल स० १७९९ मगसिर सुदी दशमी का है। यह भी संधियो मे विभक्त है तथा इसकी वर्णन शैली आचार्य गुणभद्र के उत्तर पुराण के अनुसार ही मिलती है। इसकी भाषा मे राजस्थानी एव ब्रज का सम्मिश्रण है। वैसे यह पुराण दोहा चौपाई छन्द प्रधान है; किन्तु अडिल्ल, छप्पय जैसे छन्दो का प्रयोग भी हुआ है।

'व्रत कथाकोश' मे कवि ने २३ व्रत कथाओं का संग्रह किया है। जिनकी रचना स० १७८२ से १७८७ तक की गयी थी। कुछ कथाएं तो छोटे-२

काव्यों के बराबर हैं, जिनकी छन्द सं० ३०० से भी अधिक हो गई है। कथाओं में धार्मिक पुट है तथा उनमें नैतिकता के वर्णन की प्रमुखता है। मध्य युग में जन-साधारण में कथाओं के प्रति जो आकर्षण पैदा हुआ या उसके परिणाम स्वरूप कवि ने ऐसी रचनाओं को छन्दोबद्ध किया था।

खुशालचन्द ने अपने साहित्य के माध्यम से जन-साधारण में जो जागृति उत्पन्न की थी, उसने सारे राजस्थान को ही नहीं; किन्तु उत्तर भारत की जैन समाज में भावात्मक एकता स्थापित करने में अत्यधिक योग दिया था। खुशालचन्द समन्वयवादी कवि थे। इसलिये हिन्दी में रचना भी उसी दृष्टि से किया करते थे।

कविवर दौलतराम अथवा महापंडित टोडरमल्ल से कवि का साक्षात्कार कभी हुआ अथवा नहीं—इसके बारे में तीनों ही विद्वानों ने अपनी रचनाओं में कुछ उल्लेख नहीं किया। लेकिन खुशालचन्द भी महाराज जयसिंह के कृपा-पात्र थे, और दौलतराम उनके राजदूत थे, इसलिए दोनों में अवश्य ही मित्रता रही होगी। तीनों ही कवि समाज के अलग २ वर्ग का नेतृत्व करते थे; इसलिए यद्यपि वे परस्पर में अधिक सम्पर्क में रहे भी नहीं हों, तो भी एक दूसरे के मध्य साहित्यिक परिचय तो रहा ही होगा।

टोडरमल :

महापंडित टोडरमल कविवर दौलतराम के समकालीन विद्वान् ही नहीं थे, किन्तु वे उनके घनिष्ट मित्र भी थे। महाकवि द्वारा पुराण ग्रंथों की भाषा टीका टोडरमल की विशेष प्रेरणा के कारण ही सफल हो सकी थी। जिस मनोयोग से टोडरमल ने गोम्मटसार आदि ग्रन्थों की हिन्दी में भाषा टीका की थी, उससे भी अधिक मनोयोग से कवि ने पद्मपुराण, आदिपुराण एवं हरिवंश पुराण की भाषा की थी। टोडरमल के ग्रंथ अत्यधिक गम्भीर एवं गूढ़ शैली में लिखे गये हैं, तथा साधारण पाठक के लिए सहज गम्य नहीं है; जबकि दौलतराम ने अपने सभी ग्रंथ साधरण पाठकों के लिए निबद्ध किये। इसलिए जितना जबरदस्त प्रचार दौलतराम के ग्रन्थों का हो सका, उतना टोडरमलजी के ग्रन्थों का नहीं हो सका।

टोडरमल जी की आयु एवं जन्म संवत् दोनों के बारे में विद्वानों की धारणाएं बदल रही हैं। पहिले उनकी आयु २६-२७ वर्ष की ही मानी जाती थी; लेकिन राजस्थान के अजमेर के भण्डार में "सामुद्रिक सुरुप लक्षण"[1]

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची—पंचम भाग—पृष्ठ संख्या १२०५

की संवत् १७९३ की एक प्रति मिली है, उसमें पं० टोडरमल जी के पठनार्थ प्रतिलिपि की गई—ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यदि उस समय कवि की आयु १५ वर्ष की भी मान ली जावे तो भी उनकी आयु ४७ वर्ष की होनी चाहिये।

टोडरमल ने सर्वप्रथम रहस्यपूर्ण चिट्ठी लिखी। इस अकेली चिट्ठी से ही पता चलता है कि उनकी ख्याति राजस्थान को पार करके पंजाब तक पहुंच गई थी। उन्होंने गोम्मटसार, त्रिलोकसार, क्षपणासार एवं लब्धिसार जैसे सैद्धान्तिक ग्रंथो की भाषा टीका करके जैन समाज को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। यह प्रथम अवसर था जबकि हिन्दी में किसी विद्वान् ने प्राकृत भाषा के ऐसे महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय ग्रन्थों पर हिन्दी टीका लिखी हो। इसलिए इन ग्रन्थों के निर्माण के पश्चात् उनकी कीर्ति पताका चारों ओर लहराने लगी। विद्वत्ता के साथ ही उनकी वक्तृत्व शक्ति भी विलक्षण थी एव समाज को रूढ़ियों एवं अन्ध विश्वासों से निकाल कर सम्यक् मार्ग पर लाने की उनकी जबरदस्त भावना थी। इसलिये अपने जीवन में उन्हें अनेक संघर्षों से जूझना पड़ा और इन्हीं संघर्षों से अन्त मे जूझते २ पंडित जी ने अपना जीवन भी समर्पण कर दिया। वे शहीद हुए थे तथा तत्कालीन समाज की साम्प्रदायिकता की अग्नि में उन्होंने अपने आपको होम दिया। उनका 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' यद्यपि पूर्णतः धार्मिक ग्रंथ हैं; किन्तु वह आकर्षक शैली एवं विद्रोहात्मक पद्धत्ति में लिखा गया है; जिसका एक-एक वाक्य रहस्यपूर्ण एवं धार्मिक अर्थ को लिये है।

टोडरमल के पश्चात् होने वाले सभी परवर्ती कवियों ने अपनी रचनाओं में टोडरमल का सादर उल्लेख किया है तथा उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा की है। स्वयं महाकवि दौलतराम ने "पुरुपार्थ सिद्धयुपाय" टीका में टोडरमल जी की विद्वत्ता का निम्न प्रकार उल्लेख किया हैं—

भाषा टीका ता ऊपर कीनी टोडरमल्ल।
मुनिवर कृत वाकी रही तांके मांहि अचल्ल॥
वे तो परभव कूं गये, जयपुर नगर मझार।
सब साधर्मी तब कियो मन में यह विचार॥

बखतराम साह :

कविवर बखतराम महाकवि दौलतराम के समय प्रसिद्ध कवि थे। ये इतिहास, सिद्धान्त एवं दर्शन के महान् पण्डित थे। भट्टारकों में इनका पूर्ण

विश्वास था और ये बीस पंथ आम्नाय वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वालों में से प्रमुख थे। इन्होंने 'मिथ्यात्व खण्डन' लिखकर महा पं० टोडरमल जी के विचारों का विरोध किया और भट्टारकों का खुलकर समर्थन किया। जयपुर में लश्कर का दि० जैन मन्दिर इनका साहित्यिक केन्द्र था और यहीं बैठकर इन्होंने साहित्य सर्जन किया था। बुद्धि विलास[1] इनकी महत्वपूर्ण कृति है; जिसका इतिहास से पूर्ण सम्बन्ध है। कवि ने इसमें तत्कालीन समाज, राज व्यवस्था, जयपुर नगर निर्माण आदि का अच्छा वर्णन किया है। यह उनकी सं० १८२७ मंगसिर सुदी १२ की रचना है।

बख्तराम चाकसू के निवासी थे। चाकसू जयपुर से करीब २४ मील दक्षिण पूर्व में बसा हुआ एक प्राचीन नगर है। जिसका जैन कवियों ने काफी अच्छा वर्णन किया है। इनके पिता पेमराज साह थे जो चाकसू में ही रहते थे। कवि चाकसू से जयपुर स्थानान्तरित हो गये थे और यहीं पर विद्वानों के सम्पर्क में रहकर साहित्य सेवा किया करते थे। मिथ्यात्व खण्डन नाटक में कवि ने अपना वर्णन निम्न प्रकार किया है—

ग्रन्थ अनेक रहस्य लखि, जो कछु पायौ थाह।
बखतराम वरननु कियो, पेमराज सुत साह ।।१४४।।

आदि चाटसू नगर के, वासी तिनि कौ जांनि।
हाल सवाई जैनगर, मांहि वसे हैं आंनि ।।१४५।।

तहाँ लसकरी देहुरें, राजत श्री प्रेभु नेम।
तिनको दरसरण करत ही, उपजत है अति प्रेम ।।१४१६।।

कवि की एक लघु रचना "धर्मबुद्धि कथा" एवं कुछ पद भी मिलते हैं। बुद्धि विलास में अपने प्रबल विरोधी महा पं० टोडरमल की मृत्यु पर जो पंक्तियाँ लिखीं, वे अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं—

यक तेरह पंथिनु में भ्रमी, टोडरमल्ल नाम सांहिमी।
कहे खलनि कै नृप रिसि तांहि, हति कै धरचौ असुचि थल नाहि।

उक्त घटना के अतिरिक्त कवि ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन विद्वानों के सम्बन्ध में मौन ही रहना उचित समझा।

---

१ राजस्थान पुरातत्व मन्दिर जोधपुर में प्रकाशित। सम्पादक श्री पद्मधर पाठक।

जयचन्द छाबड़ा :

महा पंडित टोडरमल एवं दौलतराम के पश्चात् जिन विद्वानों को समाज द्वारा सर्वाधिक सम्मान प्राप्त हुआ; उनमें जयचन्द छाबड़ा प्रमुख विद्वान हैं। इनका भी समूचा जीवन ही साहित्य-देवता को समर्पित था और साहित्य एवं समाज की सेवा ही इनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। महाकवि दौलतराम एवं महा पंडित टोडरमल दोनों का ही इनके जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा और साहित्यिक क्षेत्र में इन्हीं का उन्होंने अनुसरण किया।

जयचन्द छाबड़ा का जन्म जयपुर से ३० मील दक्षिण की ओर जयपुर मालपुरा रोड पर स्थित फागी ग्राम में हुआ था। यह समय ऐसा था जब दौलतराम की गौरव गाथा चारों ओर फैल चुकी थी और टोडरमल के साहित्यिक के क्षेत्र में पदार्पण की भूमिका बन रही थी। इनके पिता का नाम मोतीराम था। गोत्र छाबड़ा एवं जाति खण्डेलवाल थी। ११ वर्ष की अवस्था में ही ये अपने ग्राम के मन्दिर में जाने लगे और तत्वचर्चा में रुचि लेने लगे। कुछ समय पश्चात् वे जयपुर में आगये और यहां आने के पश्चात् तो उन्हें ऐसा लगने लगा कि मानों उन्हें अपनी अभीष्ट वस्तु मिल गई हो। जब वे जयपुर आये तो उन्हें अपने आपको विद्वानों की गोद में पाया। पं० बंशीधर, टोडरमल, दौलतराम, भाई रायमल्ल, बखतराम आदि सभी शास्त्रज्ञ एवं तत्वोपदेशी थे। फिर क्या था जयचन्द ने भी अपने-आपको इन्ही विद्वानो के समर्पित कर दिया। सर्व प्रथम इन्होंने तत्वार्थ सूत्र पर संवत् १८५६ में वचनिका लिखी और फिर इसके दो वर्ष पश्चात् सर्वार्थसिद्धि पर विस्तृत वचनिका लिखी जो अर्थ प्रकाशिका के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। फिर तो वे एक के पश्चात् दूसरे ग्रन्थ की भाषा टीका लिखने लगे और अपने १२-१३ वर्ष के साहित्यिक काल में १५ ग्रन्थो पर भाषा टीकायें लिख दी। ऐसा मालूम होता है कि उनका मस्तिष्क सैद्धान्तिक ज्ञान से भर चुका था और अब तो केवल निकलने की देरी थी। अब तक उनके निम्न ग्रंथ प्राप्त हो चुके हैं—

रचनाकाल

१. तत्वार्थ सूत्र वचनिका, सं० १८५६
२. सर्वार्थसिद्धि वचनिका, चैत्र शुक्ला पंचमी १८६१
३. प्रमेयरत्नमाला वचनिका, आषाढ़ शुक्ला ४ सं० १८६३
४. स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा भाषा, श्रावण कृष्णा ३ सं० १८६३

५. द्रव्यसंग्रह वचनिका, श्रावण कृष्णा १४ सं० १८६३
६. समयसार वचनिका, कार्तिक कृष्णा १० सं० १८६४
७. देवागम स्तोत्र (आप्त मीमांसा), चैत्र कृष्णा १४ सं० १८६६
८. अष्टपाहुड़ वचनिका, भाद्रपद शुक्ला १२ सं० १८६७
९. ज्ञानार्णव वचनिका, माघ कृष्णा ५ सं० १८६६
१०. भक्तामर स्तोत्र वचनिका, कार्तिक कृष्णा १२ सं० १८७०
११. पद संग्रह,
१२. सामायिक पाठ वचनिका,
१३. पत्रपरीक्षा वचनिका
१४. चन्द्रप्रभ चरित द्वि० सर्ग,
१५. *धन्यकुमार वचनिका,*

उक्त ग्रन्थों की नामावली के आधार पर कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का स्वतः ही आभास मिल जाता है। उन्होंने सैद्धान्तिक, तात्विक, आध्यात्मिक स्तुति परक, दार्शनिक एवं चरित-प्रधान सभी ग्रन्थों की राजस्थानी भाषा में वचनिकाएं लिखीं और उनके पठन-पाठन का सर्वत्र प्रचार किया। इनके ग्रन्थों की भाषा अत्यधिक सरल, सरस एवं सुगम्य है।

तत्कालीन जयपुर दरबार से उनका मधुर सम्बन्ध था। अपनी एक कृति में उन्होंने महाराजा सवाई जगतसिंह के शासन की अच्छी प्रशंसा की है। कवि के अनुसार राज्य में सर्वत्र अमन चैन था तथा सभी धर्मावलम्बियों को अपने २ धर्म पालन की पूरी छूट थी। राजा के कितने ही मंत्री थे और उनमें परस्पर में मैत्री भावना थी। संवत् १८६१ में जयपुर में जो प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ था, उसमें कवि का विशेष योग था।

करी प्रतिष्ठा मन्दिर नयौ, चन्द्रप्रभ जिन थापन थयौ।
ताकरि पुण्य बढ़ौ यश भयौ, सर्व जैनिन को मन हरयो॥

दीवान रायचन्द से भी कवि का विशेष सम्बन्ध था इन्होंने कवि को सभी चिन्ताओं से मुक्त कर दिया और साहित्य निर्माण पर विशेष जोर दिया।

ताके ढिग हम थिरता पाय।
करी वचनिका यह मन लाय॥

जयचन्द का पुत्र नन्दलाल छावडा भी अपने पिता के समान ही साहित्य प्रेमी था। वह अनेक शास्त्रों का ज्ञाता था तथा अपने पिता को साहित्य रचना में योग दिया करता था। जयचन्द जी ने एक स्थान पर अपने पुत्र की निम्न प्रकार प्रशंसा की—

नन्दलाल मेरा सुत गुनी, वालपनें तैं विद्या गुनी।
पंडित भयौ बडौ परवीन, ताहूनैं यह प्रेरणा कीन।।

जयचन्द जी के पश्चात् होने वाले सभी कवियो ने इनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

थानसिंह :

थानसिंह महाकवि दौलतराम के उत्तरकालीन कवि थे। इनके द्वारा रचित "सुबुद्धि प्रकाश" एव "थान विलास" उल्लेखनीय रचनाए है। 'सुबुद्धि प्रकाश' सुभाषित रचना है, जिसकी एक पाण्डुलिपि जयपुर के बधीचन्द जी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे संग्रहीत है। रचना काफी अच्छी है। तथा उसमे १४६ पत्र हैं। इसका रचनाकाल सवत् १८४७ है। इसी तरह 'थान विलास' कवि की रचनाओ की संग्रहात्मक कृति है। कवि बहुत ही स्पष्टवादी एव निडर थे तथा तथ्यों को रखने मे कभी भी नही हिचकते थे। जयपुर मे महाराजा माधोसिंह के समय मे जो साम्प्रदायिक उपद्रव हुये थे, उनका सुबुद्धि प्रकाश की प्रशस्ति मे जो वर्णन किया है, वह उनकी निर्भयता का सूचक है—

माधव आगै सिव धरमी मुखियौ भयो।
जैन्यासो करि द्रोह वच मे लै लियो।।
देव धर्म गुरु श्रुत को विनय विगारियौ।
कीयो नाहि विचारि पाप विस्तारियौ।।६२।।

दोहा

भूप अरथ समझ्यो नही, मत्री के वसी होय।
डड सहर मैं नाखियौ, दुखी भये सव लोय।।६३।।
विविध भांति धन घटि गयो, पायौ वहुत कलेस।
दुखी होय पुर को तजो, तव ताको परदेस।।६४।।

कवि खण्डेलवाल जाति मे ठोल्या गोत्र के थे। हेमराज इनके दादा थे। हेमराज के वडे पुत्र मलूकचन्द, द्वितीय मोहनराम, तृतीय नूणकरण तथा

चतुर्थ साहिबराम थे। इन चारों ही पुत्रों के भी अच्छी संख्या में संतान थी। थानसिंह मोहनराम के पुत्र थे। इनका जन्म सांगानेर में हुआ था। जयपुर एवं सांगानेर में जब साम्प्रदायिक उपद्रव हुये तब कवि भरतपुर चले गये थे। लेकिन वहां कुछ समय तक रहने के बाद वे फिर महाराजा माधवसिंह के दरबार में आगये और वहीं पर व्यापार करने लगे। यहां रहते हुये उन्होंने सुबुद्धि प्रकाश की रचना की। परन्तु इनके पिता वापिस जयपुर नहीं आये और करौली में रहकर ही व्यापार आदि करने लगे। थानसिंह अपने समय के प्रगतिशील कवि थे तथा साहित्य सेवा में सदैव संलग्न रहते थे।

राजनैतिक स्थिति

दौलतराम अपने ८०, वर्ष के जीवन में वसवा, आगरा, उदयपुर एवं जयपुर रहे। आगरा के अतिरिक्त इनका अधिक सम्पर्क जयपुर के महाराजाओं से रहा लेकिन कवि ने अपनी रचनाओं में जयपुर के महाराजाओं एवं उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के नामोल्लेख के अतिरिक्त तत्कालीन राजनैतिक स्थिति अथवा शासन का कोई वर्णन नहीं किया। कवि आगरा भी काफी समय तक रहे लेकिन मुगल शासन के बारे में भी वे मौन ही रहे। इससे पता चलता है कि कवि की राजनीति अथवा तत्कालीन शासन के बारे में लिखने में कोई रुचि नहीं थी। इसके अतिरिक्त जयपुर महाराजा के उच्च पदाधिकारी होने के कारण उन्होंने अपने जीवन को साहित्य रचना तक ही सीमित रखा और अन्य प्रपञ्चों से दूर रहे।

कवि ने जब युवावस्था में पदार्पण किया था उस समय देहली पर मुगल बादशाहों का शासन था जो अपने ह्रास की ओर तीव्र गति से बढ़ रहा था। सम्राट औरंजेब के पश्चात् भारतीय शासन की बागडोर मजबूत हाथों में नहीं रही थी। उसके उत्तराधिकारियों को आपस में लड़ने से ही अवकाश नहीं मिलता था, इसके अतिरिक्त वे अत्यधिक विलासी, आलसी एवं अयोग्य भी थे। ना उनमें अकबर जैसी दूरदर्शिता थी और न औरंगजेब जैसी राजनैतिक चतुरता। फरूखसियर एवं मुहम्मदशाह जैसे मुगल सम्राटों का शासन एकदम ढीला तथा निकम्मा था तथा केन्द्रीय शासन नाम मात्र का रह गया था। कवि ने मुगल साम्राज्य का पूरा पतन अपनी आंखों से देखा होगा।

लेकिन कवि के समय में राजस्थान के शासकगण सशक्त बन गये थे। जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह (सन् १६९९-१७४३) जैसे योग्य एवं दूरदर्शी

शासकों के कारण सवत् १८०० तक राज्य मे शान्ति रही और राज्य की सभी तरह से उन्नति होती रही। महाराजा सवाई जयसिंह के पश्चात् जयपुर की गद्दी पर महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह (सन् १७४३–१७५०) सवाई माधोसिंह (सन् १७५०–६८) एव सवाई पृथ्वीसिंह (सन् १७६८–१७७८) बैठे। इन तीनो ही राजाओ के शासनकाल मे चारो ओर अशान्ति रही। तथा इन तीनो ही शासको को लडाइयो से कभी अवकाश नही मिला। यहा पर सुरक्षा के नाम जैसी कोई चीज ही नही रही। मराठो के अतिरिक्त स्वय मुगल बादशाह भी इनके विरुद्ध हो गये थे और उन पर सदैव युद्ध की तलवार टगी रहती थी। महाराजा ईश्वरीसिंह ने केवल सात वर्ष तक शासन किया और अन्त मे मराठो के आक्रमण से भयभीत होकर जहर का प्याला पी लिया। इसके पश्चात् सवाई माधोसिंह गद्दी पर बैठे लेकिन सत्तरह वर्ष के शासन मे उसे कितनी ही लडाइया लडनी पडी। मरहाठाओ के बार बार के आक्रमणो से शासन व्यवस्था एक दम ढीली पड गयी थी और राज्य की सारी आमदनी फौजो पर ही खर्च करनी पडती थी। इसलिये उस समय कला एव साहित्य को कोई प्रोत्साहन नही मिला। इनके पश्चात् सवाई पृथ्वीसिंह शासन पर बैठे। लेकिन उस समय वे केवल पाच वर्ष के थे और ग्यारह वर्ष के पश्चात् ही उनका स्वर्गवास हो गया। इसलिये वे भी शासन को सशक्त बनाने की दिशा मे कोई कार्य नही कर सके।

महाराजा माधोसिंह एवं पृथ्वीसिंह के शासनकाल मे शासन पर मत्रियो एव पुरोहितो का अधिक प्रभुत्व रहा। सवत् १८१८ से १८२६ तक सारे राज्य मे शैवो एव जैनो मे साम्प्रदायिक झगडे होते रहे। राज्य मे शैवो का प्रभुत्व होने के कारण बहुत से जैन मन्दिरो को नष्ट कर दिया गया तथा कितने ही मन्दिरो को शैव मन्दिरो मे परिवर्तित कर दिया गया। केवल ८–६ वर्ष मे ही इस प्रकार के तीन बार उपद्रव हुए जिससे धन सम्पत्ति की अपार क्षति हुई। इस सम्बन्ध मे तत्कालीन कवि बखतराम साह ने अपने बुद्धि विलास (सवत् १८२७) मे इन घटनाओ का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

सवत् १८१८ मे एक श्याम तिवाडी हुआ जिसने किसी प्रयोग से महाराजा माधोसिंह को अपने वश मे कर लिया। महाराजा ने श्याम तिवाडी को सभी धर्म गुरुओ का प्रधान बना दिया और आचमन (सकल्प) करके राज्य का पूरा भार ही उसे सौप दिया। गलता के बालानन्द आदि जो धर्मगुरु थे वे सभी देखते रहे। इस घटना के कुछ दिनो पश्चात् ही सारे राज्य मे उत्पात होने लगे। महाराजा से मनमाना आदेश लेकर जैनो को रात्रि भोजन

करने पर मजबूर किया जाने लगा तथा उनके मन्दिरों को तोड़ फोड़ दिया गया। राज्य के समस्त जैनों को इतना आतंकित कर दिया गया कि उनका दर्शन, स्वाध्याय एवं पूजापाठ भी बन्द हो गया। किसी मन्दिर को आधा और किसी को पूरा ही नष्ट कर दिया गया। या तो केवल आमेर का सांवलां जी का मन्दिर सुरक्षित रहा अथवा वे ही मन्दिर बच सके जिनकी रक्षा का पूरा प्रबन्ध था। किसी में जबरन शिव मूर्ति स्थापित कर दी गयी। इस प्रकार चारों ओर श्याम तिवारी के अत्याचार होने लगे। किसी से कोई उपाय नहीं बन सका। और न किसी साधु महात्मा का जादू मंत्र ही काम कर सका। लेकिन जब श्याम तिवारी के अत्याचारों की वास्तविकता का महाराजा माधोसिह को मालूम पड़ा तो उन्होंने उसे यथोचित दण्ड दिया और मध्याह्न में जयपुर नगर से निकलवा दिया। वह केवल धोवती एवं दुपट्टा साथ ले जा सका। उस समय वह केवल अकेला था और उसके पीछे से लड़के हुरिया देते जाते थे। महाराजा ने उसका गुरुपद छीन लिया और जैसा उसने कार्य किया था वैसा ही उसको दण्ड दिया गया।[1]

सोरठा

अंबावति मैं ऐक, स्यांम प्रभू कै देहुरै।
रही धर्म के टेक, बच्यौ सु जान्यौ चमतकृत ।।१२९४।।

चौपई

कोए आधो कोऊ सारो, बच्यौ जहां छत्री रखवारो।
काहूं मैं सिवमूरति धरि दी, अैसी मंची स्याम की गरदी ।।१२९५।।

---

१ संवत अट्ठारहसै गये, ऊपरि जकैं अठारह भये।
तब इक भयो तिवाड़ी स्यांम, डिंभी अति पाखंड को धाम ।।१२८६।।
स्वछ अधिक द्विज सबतैं घाटि, दौरत ही साहन की हाटि।
करि प्रयोग राजा वसि कियौ, माधवेस नृप गुर पद दियौ ।।१२९०।।
गलता बालानंद दे आदि, रहे झांकते वैठ वादि।
सबकौ ताहि सिरोमनि कियौ, फुनि वैसनू राज पद दियौ ।।१२९१।।
लियौ आचमन पाव पखार, सौंप्यौं ताहि राज सब भार।
दिन कितेक बीते हैं जवैं, महा उपद्रव कीनौं तवै ।।१२९१।।
हुक्म भूप कौ लेकै चाहि, निस जिमाय देवल दिय ढाहि।
अमल राज कौ जैनी जहां, नांव न ले जिनमत को तहां ।।१२९२।।

इस घटना के १½ वर्ष तक राज्य मे पूर्ण शान्ति रही। जैन धर्मावलम्बियो ने पुनः अपने मन्दिरो का निर्माण करा लिया। रथयात्रा होने लगी तथा मन्दिरो मे ठाट बाट से पूजा एवं उत्सव होने लगे। संवत् १८२१ मे जयपुर नगर मे इन्द्रध्वज पूजन का विशाल आयोजन किया गया जिसमें देश के विभिन्न स्थानो से हजारो स्त्री पुरुषो ने भाग लिया। इस आयोजन मे जैनो ने अपने वैभव का खूब प्रदर्शन किया। जयपुर के महाराजा ने भी एक आदेश जारी किया था कि "पूजा के अर्थि जो वस्तु चाहिये सो ही दरबार सू ले जावो"। लेकिन इस विशाल आयोजन का एक वर्ग विशेष पर अच्छा प्रभाव नही पडा और उन्होने कुछ समय पश्चात् ही एक शिव मूर्ति तोडने का जैनो पर आरोप लगाया। महाराजा ने भी अपनी व्यस्तता के कारण घटना की विशेष जाच नही की। अनेक श्रावको को कैद कर लिया गया। अन्त मे तत्कालिन महापंडित टोडरमल के ऊपर सारा दोषारोपण लगाया गया तथा महाराजा के आदेश से उन्हे मृत्यु दण्ड दिया गया और मारने के पश्चात् उनकी लाश को गन्दगी के ढेर मे डाल दिया गया। टोडरमल उस समय क्रान्तिकारी समाज सुधारक एव प्रबल पंडित थे। समाज के ऊपर उनका पूर्ण प्रभाव था। महाराजा के आतंक के कारण सारा जैन समाज कोई विरोध नही कर सका।

× × × × ×

फुनि मत वरस ड्योढ मैं थप्यो, मिलि सबही फिरि अरहंत जप्यो।
लिये देहुरा फेरि चिनाय, दै अकोड प्रतिमा पधराय ॥१३०१॥

नाच कूदन फिरि बहु लगे, धर्म माझि फिरि अधिके पगे।
पूजत फुनि हाथी सुखपाल, प्रभु चढाय रथ नवल विसाल ॥१३०२॥

तब ब्राह्मनु मतौ यह कियो, सिव उठान कौ टौना दियो।
तामै सबै श्रावकी कैद, करिके डड किये नृप कैद ॥१३०३॥

यक तेरह पथिनु मै ध्रमी, हो तौ महा जोग्य साहिमी।
कहे खलनि कै नृप रिसि ताहि, हति कै घरयो असुचि थल वाहि ॥१३०४॥

टोडरमल जी के बलिदान के पश्चात् राज्य मे फिर शान्ति ही स्थापित हो गयी और फिर पूर्ववत मन्दिरो मे पूजा पाठ, रथयात्रा उत्सव विधान होने

लगे। चारों ओर अमन चैन व्याप्त हो गया। लेकिन यह शान्ति अधिक समय तक नहीं रह सकी और संवत् १८२६ में एक वर्ग ने धार्मिक विद्वेषता की फिर आग फैला दी। चारों ओर मन्दिरों को लूटा जाने लगा और मूर्तियों को तोड़ डाला गया। इन लोगों ने किसी की बात नहीं सुनी और कहने लगे कि उन्हें राजा का यही आदेश है। जयपुर, आमेर, सवाईमाधोपुर एवं खण्डार के मन्दिरों को उसी समय लूटा गया। लेकिन महाराजा जयपुर की फिर सारे राज्य में दुहाई फिरी जिससे लूट खसोट होना बन्द हो गया और राज्य में फिर साम्प्रदायिक सद्भावना स्थापित हो गयी।

फुनि भई छब्बीसा के साल, मिले सकल द्विज लघु र विसाल।
सवनि मतौ यक पक्को कियौ, सिव उठांन फुनि दूसन दियो ॥१३०७॥

द्विजन आदि वहु मेल हजार, विनां हुकम पायें दरबार।
दौरि देहुरा जिन लिय लूटि, मूरति विघन करी वहु फूटि ॥१३०८॥

काहू की मांनी नही कांनि, कही हुकम हमकौं है जांनि।
ऐसो म्लेछन हूं नही करी, वहुरि दुहाई नृप की फिरी ॥१३०९॥

दोहा

लूटि फूटि सवहूं चुकें, फिरी दुहाई वोस।
कहनावति भई लुटि गए, भाग्यौं बारह कोस ॥१३१०॥

कवि बखतराम के अतिरिक्त तत्कालीन कवि थानसिंह ने भी अपने 'सुबुद्धिप्रकाश' में उस समय की राजनैतिक सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का अच्छा वर्णन किया है। सर्व प्रथम कवि ने महाराजा जयसिंह के शासन का, जयपुर नगर की स्थापना की, एवं वहां व्यापार की बड़ी प्रशंसा की है। कवि ने लिखा है कि महाराजा जयसिंह ने आमेर और सांगानेर के मध्य में जयपुर नगर बसाया तथा सूत बांधकर नगर के बाजार, दरवाजे आदि बनाये अपने लिये सात मंजिल वाला महल बनवाया तथा राज्य के बाहर से बड़े २ सेठ साहूकारों को बुलाकर नगर में बसाया। न्यायसंगत टैक्स लगाये जिससे नगर का व्यापार खूब बढ़ गया और सांगानेर एवं आमेर उजड़ने लगे। राज्य के शासन की बागडोर जैनों के हाथों में थी। राजा शैव धर्मानुयायी था। नगर में शैव एवं जैनों के अनेक शिखर बंध मन्दिर थे जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् ईश्वरीसिंह ने शासन की बागडोर सम्हाली और राज्य में शान्ति रही तथा प्रजा भी आनन्द से रहती रही। ईश्वरीसिंह के पश्चात् महाराजा सवाई

माधोसिंह जयपुर के शासक बने। उनके शासन में शैव धर्मावलम्बी शासन में प्रधान बन गये और जैनों से विरोध करने का महाराजा से आदेश ले लिये। इसके पश्चात् वेद, धर्म, गुरु, एवं शास्त्रों का अपमान किया गया। महाराजा मंत्रियों के रहस्य को समझ नहीं सके और उनके कहने में आकर नगर के निवासियों से डंड वसूल किया गया। इससे नगर के निवासी अत्यधिक दुखी हो गये। बहुत से लोग नगर छोड़कर चले गये। स्वयं कवि को जयपुर छोड़कर भरतपुर जाना पड़ा। सवाई माधोसिंह के पश्चात् सवाई प्रतापसिंह जयपुर के महाराजा बने। वे भी अत्यधिक लोभी थे और सभी धर्मावलम्बियों के मन्दिरों का, ब्राह्मणों का एवं अतिथियों के धन को भी जबरन ले लिया था इससे नगर में लोग और भी दुखी हो गये और उदास होकर नगर छोड़ने लगे।

उक्त दोनों वर्णनों से ज्ञात होता है कि संवत् १८१८ में लेकर संवत् १८२६ तक जयपुर राज्य का धार्मिक वातावरण काफी उत्तेजनापूर्ण रहा। तथा शासन में जो शैव धर्मावलम्बी थे उन्होंने शासन का फायदा उठाकर दूसरे वर्ग को अधिक से अधिक नुकसान पहुंचाने का प्रयास किया। लेकिन यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही और जयपुर निवासी एक दूसरे के प्रति गहरी सद्भावना के साथ रहने लगे। इसके अतिरिक्त जयपुर के तत्कालीन शासकों ने कभी सम्प्रदाय विशेष का पक्ष नहीं लिया और राज्य में जैनों को शासन के उच्चस्थ पद पर नियुक्त किया जाता रहा। राव कृपाराम, रामचन्द्र छाबड़ा, बालचन्द छाबड़ा, रतनचन्द जैसे व्यक्ति दीवान के पद पर कार्य करते रहे। और धर्म विशेष का शासन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

माधव आगै सिव धरमी मुखियौ भयो।
जैन्यासौं करि द्रोह वच मैं लै लियो।
देव धर्म गुरु श्रुत की विनय बिगरियौ।
कीयौ नांहि विचारि पाप विस्तारियौ।।

भूप अरथ समझ्यो नहीं मंत्री के वसि होय।
डंड सहर मैं नाखियौ दुखी भये सब लोय।
त्रिविध भांति धन घटि गयौ पायौ बहुत क्लेस।
दुखी होय पुर को तजो तब ताको परदेस।।

सुबुद्धिप्रकाश

जयपुर नगर की स्थापना

महाराजा सवाई जयसिंह केवल योद्धा एवं राजनीतिज्ञ ही नहीं थे किन्तु नगर निर्माता भी थे। सन् १७२५ में उन्होंने 'जयनिवास' नामक महल की नींव रखी और नवम्बर १७२७ में महल के चारों ओर एक नवीन नगर का निर्माण प्रारम्भ करा दिया। पहिले इस नगर का नाम जयनगर रखा गया। बाद में सवाई जयपुर के नाम से प्रसिद्ध हो गया और अब केवल जयपुर के नाम से विख्यात है। इस नगर के निर्माण का सबसे अधिक श्रेय विद्याधर नाम के व्यक्ति को है, जिसे टाड ने जैन लिखा था लेकिन अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार वह बंगाली था। नगर निर्माण के पश्चात् उसका महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा खूब सम्मानित किया गया। उसे रेवन्यू मिनिस्टर बनाया गया। उसके नाम से एक विद्याधर का रास्ता एवं विद्याधर का बाग बनाया गया तथा इसके अतिरिक्त पांच हजार की जागीर भी उसे दी गयी।

जयपुर नगर तीन ओर पहाड़ियों से घिरा हुआ है। इसके उत्तर की ओर आमेर है जो पहिले राज्य की राजधानी था। तथा दक्षिण की ओर सांगानेर है जो जयपुर बसने से पूर्व एक वैभवशाली नगर था। नगर के चारों ओर परकोटा बनाया गया था। उसके नीचे एक गहरी खाई थी जो नदी के समान लगती थी। ऊंचे ऊंचे दरवाजे थे। चौपड़ के समान बाजार थे तथा जिनके बीच बीच में चौक बनाये गये थे। बाजार की सड़क के एक ओर नहर थी जिसे चौपड़ पर बने हुए कुण्डों को पानी मिलता था और जयपुर के नागरिक इनका पानी पीते थे। बाजार एवं गलियों को एकदम सीधा बनाया गया था और फिर उसी के अनुसार महल एवं मकान बनाये गये थे। जयपुर बसने के पश्चात् नगर में बसने के लिये राज्य के बाहर से भी धनाढ्य व्यापारियों को बुलाया गया था, जिससे नगर का व्यापार खूब बढ़ गया था। कविवर बखतराम ने अपने बुद्धि विलास में जयपुर नगर की उत्पत्ति का बहुत ही सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन किया है। वर्णन का प्रारम्भिक अंश निम्न प्रकार है—

सोहे अंबावति की दक्षिण दिसि सांगानेरि,
दोऊ बीचि सहर अनोपम बसायो है।
नाम ताको धरयो हैं स्वाई जयपुर,
मानौं सुरनि हीं मिलि सुरपुर सौं रचायौ है ॥६८॥

चारचौं दिसी रच्यौं उतंग कोट,
ता परि कंगुरनि को वनी जोट।
तिह तलि चौडी खाई वनाय
औंडी मनु सरिता चली जाय ।।९९।।

दरवाजे ऊंचे वर्ने गोख
पौरिया वैठि तिह करत जौख।
चौपरि के कीन्हे हैं वाजार
विचि वीचि वनाए चौक चार ।।१००।।

ल्याऐ नहैरि वाजार मांहि।
विचि मैं वंवे गहरे रखांहि।
चौकनि मैं कुंड रचे गंभीर।
जग पीवत तिनकौं मिष्ट नीर ।।१०१।।

हाटिन कै विचि रस्ता रखाय।
दीन्हें, ते सूधे चले जाय।
वहु वने हवैली कूप वाग।
सुंदर तिनु लखि मन लगत लाग ।।१०२।।

धनवांन जु व्यौपारी कितेक
वहु देस सुदेसनि तैं आऐ अनेक
ते करत विणज अति निसंक होय
परदेस सुदेसहि जात कोय ।।१०३।।

नगर मे ज्योतिष यंत्रालय का निर्माण कराया गया जिससे ग्रहों की चाल का अच्छी तरह से पता लगने लगा और उसी के आधार पर 'जयविनोद' नाम से तिथि पत्र निकलने लगा। देश के कोने-कोने से पंडित आने लगे और साहित्य, तर्क एव न्याय पर विविध चर्चायें होने लगी। कारीगरों को वसाया गया जिससे नगर का व्यापार बढ़ने लगा। वाजार मे समुदायों मे दुकानें थीं जिसमें ग्राहकों को ठीक भावो पर वस्तुयें मिलती रहती थी। पहाड़ों के नीचे ही तालकटोरा था जिसका दूसरा नाम जयसागर भी था। इसमें

विविध प्रकार के पक्षीगण बैठे रहते थे। महाराजा ने अपने निवास के लिए सात मंजिल वाला चन्द्रमहल बनाया जिसकी शोभा अवर्णनीय है। नगर के तीन ओर पर्वत मालाओं पर अनेक गढ़ बनवाये गये इनमें रघुनाथगढ़, शंकरगढ़, हथरोई, सुदर्शनगढ़ एवं जयगढ़, के नाम उल्लेखनीय हैं। महाराजा सवाई जयसिंह ने जयपुर नगर में अश्वमेध यज्ञ भी किया था। इस यज्ञ में भाग लेने के लिए जितने ब्राह्मण पंडित आये थे उनको महाराजा ने विशेष रूप से ब्रह्मपुरी में बसा दिया।

जयपुर नगर की सुन्दरता के बारे में पाश्चात्य कलाविदों ने बहुत प्रशंसा की है। फादर तीफेन्थलर ने जयपुर नगर की सुन्दरता का वर्णन करते हुए लिखा है कि "यह नगर जबकि एकदम नवीन नगर है फिर भी देश के पुराने नगरों से भी सुन्दर है क्योंकि प्राचीन नगरों में बाजार एवं गलियां अत्यधिक सकड़े हैं जबकि जयपुर नगर की प्रत्येक गली एवं बाजार समान रूपसे लम्बे चौड़े हैं। मुख्य सड़क जो सांगानेरी गेट से आरम्भ होती है तथा उत्तरी गेट तक जाती है इतनी चौड़ी है कि छह सात गाड़ियां आसानी से एक साथ निकल सकती हैं। नगर में अनेक सुन्दर मन्दिर है जो शिव अथवा विष्णु के हैं।" इसी तरह सन् १८२० में जब किसी ब्रिटिश मिलिटरी अधिकारी ने जयपुर नगर को देखा तब उसने निम्न शब्द कहें थे[1]

"जयपुर नगर के प्रमुख सड़कें इंगलैण्ड की बहुत सी सड़कों से उत्तम है। यह इण्डिया का सर्वोत्तम नगर है।" इसी तरह और भी पाश्चात्य एवं भारतीय कला विशारदों ने जयपुर नगर के निर्माण की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

जयपुर नगर को गुलाबी नगर कहा जाता है। और इसी नाम से यह सारे देश में विख्यात है। गत २०० वर्षों में इसकी सुन्दरता में परिवर्द्धन होता रहा है, तथा सरगासूली, हवामहल, म्यूजियम, एवं रामनिवास बाग से नगर की सुन्दरता में अभिवृद्धि हुई है।

१८वीं शताब्दी के एक हिन्दी विद्वान् भाई रायमल्ल ने संवत् १८२१ में लिखी एक पत्रिका में इसे जैन नगरी के रूप में लिखा हैं। यहां जितनी संख्या में दि० जैन मन्दिर हैं उतने देश के किसी नगर में नहीं है तथा संवत् १७८४ से लेकर संवत् १९५० तक जितने अधिक जैन विद्वान् हुए उतने अन्यत्र किसी

1. History of Jaipur State by Dr, M. L. Sharma.

नगर में नहीं हो सके। नगर में हस्तलिखित शास्त्र भण्डारों की संख्या भी काफी अच्छी है जिनमें २५ हजार से भी अधिक ग्रन्थों का संग्रह मिलता है।[1]

विशाल मन्दिरों का नगर

महाकवि दौलतराम ने जयपुर का निर्माण अपनी आंखों से देखा होगा। तथा उसके निर्माण की योजना को कार्यान्वित करने में सरकार की ओर से अवश्य ही भाग लिया होगा। जयपुर नगर विशाल मन्दिरों का नगर है। यहां जितनी संख्या में शैव, वैष्णव एवं जैन मन्दिर हैं उतनी संख्या में देश में अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलते। यही नहीं सभी मन्दिर विशाल हैं और कलापूर्ण भी हैं जिनमें वर्तमान समय में भी दर्शनार्थियों की अपार भीड़ लगी रहती है। प्रमुख बाजारों में, चौपड़ के चारों ओर एवं गलियों में एक के बाद दूसरा मन्दिर देखने को मिलेगा, जिसकी सीढ़ियां बाजार की प्रमुख सड़क की पटरी को छूती हुई होती हैं। नगर के परकोटे में इतने अधिक मन्दिरों का निर्माण तत्कालीन जनता की धार्मिक प्रवृत्ति की ओर स्पष्ट संकेत है। चौड़ा रास्ता में स्थित ताड़केश्वरजी का मन्दिर शैव मन्दिरों में सबसे प्रसिद्ध एवं प्राचीनतम मन्दिर है, इसी तरह गोविन्ददेवजी का मन्दिर एवं रामचन्द्रजी का मन्दिर यहां के प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय मन्दिरों में से हैं।

वैष्णव एवं शैव मन्दिरों के समान नगर में जैन मन्दिरों की संख्या भी कम नहीं है। जयपुर नगर एवं उसके उपनगरों में स्थित जैन मन्दिरों एवं चैत्यालयों की संख्या पहिले १७५ मानी जाती थी लेकिन वर्तमान में कुछ नये मन्दिर बन गये हैं और कुछ चैत्यालय कम हो गये हैं। नगर के अधिकांश मन्दिर विशाल एवं कलापूर्ण हैं। जिनमें अत्यधिक मनोज्ञ एवं प्राचीन मूर्तियां विराजमान हैं। दि० जैन मन्दिर पाटोदी एवं दि० जैन तेरहपंथी बड़ा मन्दिर यहां के प्राचीनतम मन्दिर हैं। कहते हैं इनका निर्माण जयपुर के निर्माण के साथ हुआ था। पंचायती मन्दिरों के अतिरिक्त अधिकांश मन्दिर विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा निर्मित हैं। विशाल मन्दिरों में जैन मन्दिर बड़ा दीवानजी दि० जैन मन्दिर छोटा दीवानजी, सिरमोरियों का मन्दिर, संघी जी का मन्दिर, खिन्दूकों का मन्दिर, ठोलियों का मन्दिर, महावीर स्वामी का मन्दिर, दारोगाजी का मन्दिर, बधीचन्द जी का मन्दिर, चाकसू का मन्दिर, चौबीस

१ देखिये श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीर जी से प्रकाशित राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग १ से ४ तक।

महाराज का मन्दिर, खानियों का राणाजी का मन्दिर आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इनमें कितने ही मन्दिरों में विशाल शास्त्र भण्डार हैं जिनमें प्राकृत, अपभ्रंश संस्कृत एवं हिन्दी की प्राचीनतम पाण्डुलिपियां हैं जिनकी संख्या २५ हजार से कम नहीं है और जो राष्ट्र के अमूल्य संपत्ति है तथा समूचे राजस्थान को जिन पर गर्व है।

सामाजिक स्थिति

महाकवि दौलतराम के समय में राजनैतिक अस्थिरता के समान देश की सामाजिक स्थिति भी डांवाडोल हो थी। मुगल सम्राट् औरंगजेब के अत्याचारों के कारण समस्त हिन्दू समाज त्रस्त, पीड़ित एवं भयभीत था। जैन समाज भी मुगलों के उत्पीड़न से बच नहीं सका था। मध्यप्रदेश में सेकड़ों जैन मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया था और संस्कृति एवं साहित्य की रक्षा कैसे हो यह प्रमुख समस्या सबके सामने बनी हुई थी। जैन समाज विभिन्न वर्गों में बिभाजित था। १८वीं शताब्दी तक भट्टारकों का जबरदस्त प्रभाव था। शासन एवं जनता दोनों में ही उनका पूर्ण प्रभाव था। देहली पट्ट के भट्टारकों का जिनमें भट्टारक शुभचन्द्र, जिनचन्द्र एवं प्रभाचंद्र के नाम उल्लेखनीय है, उत्तरी भारत में अपना जबरदस्त प्रभाव स्थापित कर रखा था। इनकी विद्वत्ता एवं त्याग ने जनता पर जादू जैसा कार्य किया था। इनके प्रभाव के कारण अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ एवं बड़ी-बड़ी प्रतिष्ठायें हुई। लेकिन फिर भी देहली के बादशाह् सिकन्दर लोदी (१३८९-१४१७ ई०) की कट्टरता एवं असहिष्णुता के कारण देहली से भट्टारक पट्ट चित्तौड़ स्थानान्तरित किया गया और मंडलाचार्य धर्मचन्द्र (सन् १५२४) चित्तौड़ पट्ट पर आसीन हुए। इनके कुछ वर्षों पश्चात् ही भट्टारक रत्नकीर्ति ने नागौर में भट्टारक गादी स्थापित की। मुगलों के चित्तौड़ पर भी बराबर आक्रमण होते रहने के कारण धर्मचन्द्र के शिष्य ललितकीर्ति ने (संवत् १६०३) चित्तौड़ में अपनी गादी स्थानान्तरित की और राजस्थान के पूर्वी क्षेत्र में अपना जबरदस्त प्रभाव स्थापित किया।

भट्टारक ललितकीर्ति द्वारा भट्टारक गादी स्थानान्तरित किये जाने के पश्चात् राजस्थान के इस क्षेत्र में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक जागरण पुनः प्रारंभ हुआ। इस समय आमेर के राज्य में प्रायः शान्ति थी और मुगलों के आक्रमण का कोई डर नहीं था। भट्टारक ललितकीर्ति के पश्चात् भट्टारक चन्द्रकीर्ति एवं भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति हुए जिन्होंने अपनी विद्वता तथा त्याग के बल पर सारे राजस्थान में अपना प्रभाव स्थापित किया। संवत् १६६१ में

सांगानेर में भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति भट्टारक पट्ट पर बैठे । कवि वखतराम साह ने अपने "बुद्धिविलास" में इसका निम्न प्रकार वर्णन किया है—

नरेंद्रकीरति नाम, पट इक सांगानेरि मैं ।
भये महागुन-धांम, सोलहसै इक्याणवै ।। ६६६ ।।

भ० नरेन्द्रकीर्ति का देश के विभिन्न भागों में बड़ा भारी प्रभाव था । राजस्थान, मालवा, मेवाड़, महाराष्ट्र एवं देहली आदि में इनके कितने ही भक्त रहते थे और जब वे जाते तो उनका खूब स्वागत होता था । तत्कालीन कितने ही विद्वान इनके शिष्य एवं प्रशंसक थे । अनेक स्तोत्रों की हिन्दी गद्य में टीका करने वाले अखयराज इन्ही के शिष्य थे । संवत् १७१७ में इन्होंने अपनी संस्कृत मंजरी की प्रति भेंट की थी । इसी तरह टोडारायसिंह के प्रसिद्ध कवि पंडित जगन्नाथ इन्ही के शिष्य थे । इनके समय में टोडारायसिंह में संस्कृत ग्रन्थों के पठन पाठन का अच्छा प्रचार था । अष्टसहस्री एवं प्रमाणनिर्णय जैसे न्याय ग्रन्थों का लेखन, प्रवचन एवं पाठन होता था ।

लेकिन इन्ही भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के समय में दिगम्बर समाज के प्रसिद्ध तेरापंथ का प्रभाव बढ़ने लगा जिससे तत्कालीन समाज में व्याप्त शिथिलाचार का विरोध होने लगा । वखतराम साह ने अपने मिथ्यात्वखंडन (सं० १८२१) में इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया हैं—

भट्टारक आंवैरि के नरेन्द्रकीरति नाम ।
यह कुपंथ तिनकै समै नयो चल्यो अघ धाम ।।

लेकिन संवत् १८२७ में समाप्त होने वाले बुद्धि विलास मे इन्होंने तेरहपंथ का उदय संवत् १६८३ में माना है ।

इनही गछ मैं नीकस्यौ, नूतन तेरह पंथ ।
सौलह सै तीयासिये सो सब जग जानंत ।। ६२७ ।।

इस प्रकार लगता है वखतराम स्वयं भी इस पंथ के उदय के सम्बन्ध में एक मत नहीं है । लेकिन कुछ भी हो भ० नरेन्द्रकीर्ति के समय से तेरहपंथ ने काफी जोर पकड़ लिया था । इन्ही के समय संगानेर मे अमरा भौंसा हुए जो अपार सम्पत्ति के स्वामी थे । जिन्हें अपनी सम्पत्ति पर काफी गर्व था । एक बार जिनवानी का अविनय करने के कारण इन्हें मन्दिर से निकाल दिया गया

था। इससे कोपित होकर ये भट्टारकों के विरोधी बन गये और तेरहपंथ के प्रचार प्रसार में पूर्ण योग देने लगे। इसका पुत्र जोधराज भी इन्हीं के विचारों का था। वह संस्कृत एवं हिन्दी का बड़ा भारी विद्वान था। इन्होंने सम्यक्त्व कौमुदी भाषा (संवत् १७२४) प्रवचनसार भाषा (संवत् १७२६) पद्मनंदिपंच-विंशति (सं० १७२४) ज्ञानसमुद्र एवं प्रीतिकर चरित जैसी महत्वपूर्ण रचनाओं का निर्माण करके हिन्दी साहित्य की बड़ी भारी सेवा की थी।

तेरहपंथियों के विरोध के बावजूद भट्टारकों के प्रभाव में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के पश्चात् भ० सुरेन्द्रकीर्ति (संवत् १७२२) जगत्कीर्त्ति (संवत् १७३३) भट्टारक गद्दी पर बैठे। संवत् १७४६ में भट्टारक जगत्कीर्त्ति ने चांदखेड़ी में एक विशाल प्रतिष्ठा समारोह का संचालन किया जिससे उनकी प्रतिष्ठा और प्रभाव में और भी वृद्धि हुई। समाज में इन भट्टारकों ने पूजा पाठ, विधान आदि में इतना बाह्याडम्बर ला दिया था, जिसने समाज के प्रबुद्ध वर्ग के चिन्तन पर गहरी चोट की। समाज में अध्यात्म शैली के नाम से जो गोष्ठियां चलती थीं उन्होंने तेरहपंथ के प्रचार में पर्याप्त सहायता दी और आगे चलकर ये ही गोष्ठियाँ तेरहपंथ की गोष्ठियों में परिवर्तित हो गयी। महाकवि दौलतराम जब आगरा गये थे तो वहाँ अध्यात्मसैली पहिले से ही चलती थी और जब उन्होंने उदयपुर में शास्त्र प्रवचन प्रारम्भ किया तो उसे भी इसी सैली के नाम से प्रसिद्ध किया।

१६ वीं शताब्दी के आरम्भ में जयपुर में महापंडित टोडरमल का उदय हुआ। टोडरमल जी महान् विद्वान् थे, शास्त्रों के ज्ञाता थे वक्तृत्व कला में अत्यधिक प्रवीण थे और इन सबके अतिरिक्त समाज सुधार में अग्रसर थे। वे भट्टारक परम्परा के पूर्ण विरोधी थे और तेरहपंथ के कट्टर समर्थक थे। इन्होंने इस युग में तेरहपंथ के प्रचार में सबसे अधिक योग दिया। तेरहपंथ के प्रचार में पं० टोडरमल जी के अतिरिक्त भाई रायमल्ल, दीवान रतनचन्द्र, दीवान बालचन्द आदि विशेष सहायक बने। इन्होंने ज्ञान के प्रसार के लिए विशेष प्रयत्न किये और बालक बालिकाओं को धार्मिक ज्ञान प्रदान करने के लिए कुछ विद्वानों को नियुक्त किया। भाई रायमल्ल ने अपनी एक पत्रिका में इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

"और यहां देश बारा लेखक सदैव सासते जिनवाणी लिखते हैं। वा सोधते हैं। और एक ब्राह्मण महैनदार चाकर रख्या है सो बीस तीस

लडके वालकन कूं न्याय व्याकरण गणित शास्त्र पढाते हैं । और सौ पचास भाई वा वाया चर्चा व्याकरण का अध्ययन करे हैं ।"

सवत् १८२१ मे जयपुर मे 'इन्द्रध्वज पूजा महोत्सव' का आयोजन विशाल रूप से हुआ था । भाई रायमल्ल ने अपनी पत्रिका में इनका जिस सुन्दर ढग से वर्णन किया है उससे पता चलता है कि इस महोत्सव मे देश के विभिन्न भागो से हजारो की संख्या मे स्त्री पुरुष सम्मिलित हुए थे । जयपुर दरबार की ओर से इस आयोजन को सफल बनाने के लिए पूरी सुविधाए प्रदान की गयी थी । भाई रायमल्ल ने लिखा है कि "ए उछव फेरि ईं पर्याय मैं देखणा दुर्लभ है । ए कार्य दरबार की आज्ञा सूं हुवा है और ए हुकम हुवा है जो थाके पूजाजी के अर्थि जो वस्तु चाहिजे सो ही दरबार सूं ले जावो । ... .अर दोन्यू दिवान रतनचन्द वा बालचन्द या कार्य विषै अग्रेश्वरी है" ।

लेकिन इतना होने पर भी बीस पथ आम्नाय वालो का प्रभाव कम नही हुआ था । महापडित टोडरमल जी के समय मे भट्टारक क्षेमेन्द्रकीर्ति एव भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक पट्ट पर विराजमान थे । प० टोडरमलजी के होते हुए इन दोनो भट्टारको का सवत् १८१५ एव सवत् १८२२ मे जयपुर मे ही पट्टाभिषेक किया गया और जयपुर नगर को इन्होने अपनी गतिविधियो का केन्द्र बनाया । एक ओर सवत् १८२१ मे जयपुर नगर मे टोडरमल जी के समर्थको की ओर से विशाल इन्द्रध्वज पूजन का आयोजन हुआ तो दूसरी ओर से सवत् १८२६ मे सवाई माधोपुर मे विशाल पचकल्याणक प्रतिष्ठा समारोह हुआ जिसका भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति ने सचालन किया था । इस विशाल आयोजन मे हजारो मूर्तियो की प्रतिष्ठा की गयी और उन्हे राजस्थान के प्राय प्रत्येक गाव के जैन मन्दिर मे स्थापित की गयी । यह प्रतिष्ठा सगही नन्दलाल ने करायी थी और इसमे लाखो रुपया व्यय करके भट्टारको के प्रभाव को पुन स्थापित किया गया । महापडित टोडरमल जी के बलिदान के कुछ समय पश्चात् ही उनके विरोधियो की ओर से ऐसा विशाल आयोजन से ऐसा लगने लगा जैसे मानो कोई विशेष घटना ही नही घटी हो । जिस प्रकार महापडित टोडरमल ने सिद्धान्त ग्रन्थो की भाषानुवाद करके अपनी विचार धारा के प्रचार मे वृद्धि की उसी प्रकार बीस पथ के कट्टर समर्थक एव भट्टारक परम्परा के प्रशसक पडित बखतराम साह ने सवत् १८२१ मे अपने "मिथ्यात्व खडन" ग्रन्थ मे तेरहपथ की कडी आलोचना की तथा संवत् १८२७ मे बुद्धि विलास

को लिख कर जैन इतिहास पर विशेष प्रकाश डाला। बखतराम का "मिथ्यात्व खंडन" महापंडित टोडरमल के सुधारवादी विचारों का जवाब था।

समाज में पंचायत प्रथा का जोर था। पंचायत की आज्ञा बिना कोई भी सामाजिक एवं धार्मिक कार्य नहीं होते थे। समाज एव जाति से बहिष्कृत करना इनका साधारण कार्य था। जयपुर में ऐसी ही चार पंचायतें थी जिनमें दो पंचायत तेरहपंथ तथा दो बीसपंथ आम्नाय वाले श्रावकों की थी। जयपुर मे पाटोदी का मन्दिर, चाकसू का मन्दिर, बड़ा मन्दिर एवं बधीचन्द जी मन्दिर क्रमशः बीस एवं तेरहपंथ आम्नाय के पंचायती मन्दिर कहलाते हैं।

जयपुर नगर में जैन समाज का अत्यधिक प्रभाव था। शासन में उनका पूरा जोर था और अधिकांश दीवान जैन ही हुआ करते थे। यदि हम सवत् १८१८ से १८२६ तक के समय को इतिहास में से निकाल दें तो फिर शेष समय में जयपुर के शासन में सदैव जैनों का जोर रहा और यही कारण है कि देश में किसी भी नगर में इतने जैन मन्दिर एवं चैत्यालय नहीं हैं जितने जयपुर में मिलते हैं। संवत् १८२१ में लिखी एक पत्रिका में जयपुर नगर का जो वर्णन किया गया है वह इस दृष्टि से उल्लेखनीय है—

और ईं नग्र विषै सात विषन का अभाव हैं। भावार्थ ईं नग्र विषै कलाल कसाई वेश्या न पाइए है और जीव हिंसा की भी मनाई है। राजा का नाम माधवसिंह है ताकै राज विषै वर्तमान (इस समय) एते कुविसन दरबार की आज्ञातैं न पाईए हैं। अर जैनी लोग का समूह वसै है। दरबार के मतसद्दी सर्व जैनी हैं और साहूकार लोग सर्व जैनी हैं जद्यपि और भी हैं परि गौणता रूप है मुख्यता रूप नांही। छह सात वा आठ वा दस हजार जैनी महाजनां का घर पाईए है। ऐसा जैनी लोगां का समूह और नग्रविषै नाहीं और इहां के देश विषै सर्वत्र मुख्यपणैं श्रावगी लोग बसै है तातैं एह नग्र व देश बहोत निर्मल पवित्र है। तातैं धर्मात्मा पुरुष बसनें का स्थानक है। अबार तौ ए साक्षात् धर्मपुरी है।"

महापंडित टोडरमल जी के पश्चात् जयपुर नगर में जितने भी पंडित एवं शास्त्रों के ज्ञाता हुए उनमें प्रमुख तेरहपंथ आम्नाय वाले थे तथा टोडरमल के गहरे प्रशंसक थे। इन विद्वानों में पंडित जयचन्द जी छाबड़ा, पं० गुमानीराम भावसा एवं पं० सदासुख कासलीवाल के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। लेकिन धीरे-धीरे तेरह और बीस पंथों का वैमनस्य समाप्त होने लगा और इच्छानुसार पंथों को मानने की स्वतन्त्रता दे दी गयी। यही कारण है

कि संवत् १८६१ में जयपुर नगर मे जो विशाल प्रतिष्ठा समारोह हुआ था वह भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के निर्देशन मे सम्पन्न हुआ तथा इस समारोह की प्रतिष्ठा कराने वाले थे। दीवान बालचन्द के सुपुत्र संघही रायचन्द। दीवान बालचन्द टोडरमल जी के प्रशंसकों मे से थे एवं तेरहपंथ की ओर उनका विशेष झुकाव था।

महाकवि की अब तक १८ रचनाओं की खोज की जा चुकी है। इन रचनाओं को हम तीन भागों मे विभाजित कर सकते हैं—

१ मौलिक रचनायें
२. अनूदित रचनायें
३. टब्बा टीकायें

मौलिक रचनाओं मे हमने उन रचनाओं को लिया है जिन्हें कवि ने पूर्व आचार्यों के ग्रन्थों पर आधारित होने पर भी स्वतन्त्र रूप से निबद्ध किया है तथा जिनमे अपना मौलिक चिन्तन दिया है। इसके अतिरिक्त इस श्रेणी में वे रचनायें भी सम्मिलित हैं जिनमें कवि ने अपने सर्वथा मौलिक विचार लिखे है। विवेक विलास एवं अध्यात्म बारहखडी ऐसी ही कृतियों में है। कवि की मौलिक रचनायें निम्न प्रकार है—

१. श्रेपनक्रियाकोश
२. जीवंधर चरित
३. अध्यात्मबारहखडी
४. विवेक विलास
५. श्रेणिक चरित
६. श्रीपाल चरित
७. चौबीस दण्डक
८. सिद्ध पूजाष्टक

इसके पश्चात् वे रचनायें रखी गयी है जो भाषा वचनिका के रूप मे लिखी गयी हैं जिनमें कवि ने पूर्वाचार्यों की रचनाओं का हिन्दी गद्य मे वचनिका के रूप में अर्थ किया है और अपनी ओर से विशेष घटाया बढाया नहीं है। लेकिन कवि ने जिस कला के साथ उनकी भाषा टीका लिखी है वे ऐसी लगने लगी है जैसे वे मानो कवि की पूर्णत मौलिक रचनाये है। कवि ने इनको जिस धारा प्रवाह मे लिखा है वही उसकी स्वय की कला है। ऐसी रचनाओं मे निम्न रचनायें आती है—

१. पुण्यास्रवकथाकोश

२. पद्मपुराण
३. आदिपुराण
४. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय
५. हरिवंशपुराण
६. परमात्मप्रकाश
७. सार समुच्चय

इसके अतिरिक्त तीन ऐसी रचनायें हैं जिनकी टीकाओं को कवि ने टब्बा टीका का नाम दिया है। टब्बा टीका का अर्थ उस टीका से हैं जिसमें कवि ने किसी कृति का हिन्दी में पूरा अर्थ नहीं लिखा हो किन्तु पाठकों को उनका अर्थ समझाने के लिए संकेत के रूप मे कठिन शब्दों का उनके ऊपर ही अर्थ लिख दिया हो। ऐसी रचनाओं में निम्न रचनाओं को लिया गया है—

१ तत्वार्थसूत्र टब्बा टीका
२ वसुनन्दि श्रावकाचार टब्बा टीका
३ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा टब्बा टीका

इन सभी १८ रचनाओं का संक्षिप्त परिचय विषय के वर्गीकृतानुसार यहाँ दिया जा रहा है—

१ त्रेपनक्रियाकोश :

"त्रेपनक्रियाकोश" का नाम यद्यपि "पुण्यास्त्रवकथाकोश" से अन्तिम दो शब्दों में साम्यता रखता है; लेकिन यह कथा प्रधान न होकर आचार प्रधान रचना है; जैसा कि इसके नाम से ही रचना के विषय का बोध होता है। इसमें श्रावकों द्वारा पालने योग्य ५३ क्रियाओं का अति सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन किया गया है। इन ५३ क्रियाओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

८. मूलगुण—पांच उदम्बर एवं तीन मकार (मद्य, मांस एवं मधु)
१२ व्रत—पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत
१२. तप—छह बाह्य तप—अनशन, अवमौदर्य, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन एवं कायक्लेश।
छह आभ्यंतर तप—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य स्वाध्याय, कायोत्सर्ग और ध्यान।

१. सम्यक्त्व
११. प्रतिमा
४. दान
१. जलगालरा
१. रात्रि भोजन त्याग
३. रत्नत्रय

———

५३. योग

———

मानव मात्र के जीवन को शुद्ध, सात्त्विक एवं आचारवान बनाने के लिये इन क्रियाओं का पालन आवश्यक है। कवि ने अपने रचना चातुर्य से इन सबका इतना सुन्दर वर्णन किया है कि सारा क्रियाकोश ही एक धारा-वाहिक उपन्यास सा मालूम देता हैं। गृहस्थों के जीवन-विकास एवं सुधार की ऐसी परिष्कृत कृति भारतीय साहित्य की सुन्दरतम कृति है।

"क्रियाकोश" यद्यपि पूर्णतः धार्मिक रचना है। श्रावकों की क्रियाओ से इसका सम्बन्ध है लेकिन फिर भी कवि ने इसे पूर्णतः रुचिकर, आकर्षक तथा सरस बनाने का प्रयास किया है। जिस समय यह रचना निबद्ध की गयी थी उस समय कवि अपनी पूर्ण यौवनावस्था में था। जगत का वैभव उनके लिए सुलभ था। एक ओर शासन का उच्चपद उन्हें प्राप्त था तो दूसरी ओर उनकी विद्वत्ता, साहित्यिक रुचि एवं लोकप्रियता की कहानी चारों ओर फैल चुकी थी। आगरा एवं जयपुर में उन्होने जो ख्याति प्राप्त की थी उसमे उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। ऐसे समय मे 'त्रेपनक्रियाकोश' की रचना इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि तत्कालीन जैन समाज में जो आचार हीनता एवं क्रियाओं के पालन मे ढिलाई व्याप्त हो गयी थी, उससे कवि स्वय खिन्न थे। उन्हें शिथिलता जरा भी पसन्द नही थी। इसलिये उदयपुर जाने के पश्चात् ही उन्होने 'त्रेपनक्रियाकोश' को रचना निबद्ध किया। जिसके महत्व के सम्बन्ध में उन्होने निम्न शब्दों का प्रयोग किया है—

सब ग्रंथनि में त्रेपन किरिया, इन करि इन विन भव वन फिरिया।
जो ए त्रेपन किरिया धारै, सो भवि अपनो कारिज सारै ।।२१३३।।

सुरग मुकति दाता ए किरिया, जिनवानी सुनि जिनि ए धरिया।
तिन पाई निज परणति शुद्धा, ज्ञान स्वरूपा अति प्रति बुद्धा ।।२१३४।।

हैं अनादि सिद्धा ए सर्वा, ए किरिया धरिवौ तजि गर्वा।
ठौर ठौर इनको जस भाई, ए किरिया गावैं जिनराई ॥२१३५॥

—रचना के अन्त में कवि ने हिन्दी भाषा में रचना का औचित्य-वर्णन करते हुए लिखा है कि गणधरों एवं आचार्यों ने प्राकृत में इन क्रियाओं का वर्णन किया है तथा संस्कृत भाषा को इस पंचमकाल में बहुत कम व्यक्ति समझते हैं; इसलिए संस्कृत कृतियों के आधार पर ही यह कृति उन्हें नर भाषा अर्थात् हिन्दी में लिखी है। उस समय हिन्दी को 'नर भाषा' से सम्बोधन किया जाता था, ऐसा संकेत कवि की एक प्रशस्ति से मिलता है—

गणधर गावै मुनिवर गावैं, देवभाष मैं शवद सुनावैं।
पंचमकाल मांहि सुरभाषा, विरला समझै जिनमत साखा ॥२१३६॥
तातैं यह नर भाषा कीनी, सुरभाषा अनुसारे लीनी।
जो नर नारि पढ़ै मन लाई, सो सुख पावै अति अधिकाई ॥२१३७॥

रचना काल :

त्रेपन क्रियाकोश की रचना उदयपुर में रहते हुये की गई थी। उस दिन संवत् १७९५ की भादवा सुदी १२ मंगलवार का शुभ दिन था। तथा कवि सवाई जयसिंह के पुत्र सवाई माधोसिंह के मंत्री एवं सवाई जयसिंह की ओर से उदयपुर दरबार में जयपुर का प्रतिनिधित्व करते थे—

संवत सत्रासै पच्चाणव, भादव सुदि बारस तिथि जाणव।
मंगलवार उदैपुर माहैं, पूरन कीनी संसै नाहैं ॥२१३८॥
आनंद सुत जयसुत को मंत्री, जय को अनुचर जाहि कहै।
सो दौलत जिनदासनिदासा, जिन मारग को शरण गहै ॥२१३९॥

विषय वर्णन :

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, त्रेपनक्रियाकोश में ५३ क्रियाओं का वर्णन किया गया है। क्रियाकोश अध्यायों अथवा भागों में विभक्त नहीं है; किन्तु नियमानुसार उसका नामोल्लेख कर दिया गया है। सर्व प्रथम ६९ पद्यों में मंगलाचरण किया गया है। जिसमें ६३ शलाका महापुरुषों को आचार्य कुन्द-कुन्द, दशलक्षण धर्म, षोड्शकरण भावना, रत्नत्रय एवं सब साधुओं को नमस्कार किया गया है। इसके पश्चात् त्रेपन क्रियाओं का वर्णन प्रारम्भ होता है। अष्ट मूलगुणों का त्याग करने के लिये कवि ने सोदाहरण

सर्क प्रस्तुत किया है। पंच उदम्बर—बडफल, पीपल फल, पाकर, अमर एवं कठूमर फलों में असत्य जीवों का निवास रहता है इसलिए मद्य, मांस एवं मधु के साथ ही इनका सेवन भी वर्जित है। इसी प्रसंग में २२ अभक्ष्यों का भी वर्णन आया है। इसके पश्चात् रसोई जलगृह एवं हाथ चक्की की क्रियाओं में सावधानी वरतने के लिए कहा गया है। जिससे जीव हिंसा न हो। भोजन जितना सात्विक होगा उतना ही वह स्वास्थ्यप्रद होगा। भारतीय जीवन में खान पान की शुद्धि को जो विशेष महत्व दिया गया है, इस दृष्टि से कवि ने इसका वर्णन किया है। जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म है, इसलिये भोजन की सभी क्रियाओं में अहिंसा धर्म का परिपालन आवश्यक है। कविवर दौलतराम ने अपनी इस कृति में इन सब पर बड़ा ही सूक्ष्म वर्णन किया है—

अण जाण फल त्यागहु मित्र, अणछाण्यो जल ज्यों अपवित्र।
त्यागों कदमूल बुधिवंत, कदमूलमें जीव अनन्त ।।११६।।

× × × × ×

दधि गुड खावो कबहु न जोग, बरज श्रीगुरु वस्तु अजोग।

मूलगुणों का वर्णन करने के पश्चात् बारहव्रतों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इन बारह व्रतों के नाम हैं—पंच अणुव्रत —अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत एवं परिग्रहपरिमाणुव्रत। तीन गुणव्रत—दिग्व्रत, देशव्रत, एवं अनर्थदण्डव्रत। चार शिक्षाव्रत—सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोगपरिमाणव्रत एवं वैयावृत्य। इन १२ व्रतों का वर्णन ५८८ पद्य से प्रारम्भ होकर १३५० पद्य संख्या तक समाप्त होता है। इस प्रकार क्रियाकोश ग्रंथ का आधे से अधिक भाग इन व्रतों के वर्णन तक सीमित है। वास्तव में ये १२ व्रत ऐसे हैं जिनके पालने से मानव देवत्व सम बन सकता है। उसमें से बुराइयां समाप्त हो जाती हैं तथा अच्छाइयों की ओर उसकी जीवनचर्या बढ़ने लगती है। यदि इन व्रतों का अणु मात्र भी हमारे जीवन में उतर जावे तो हमारा देश सभी दृष्टियों से उन्नत हो सकता है।

व्रतों के वर्णन के पश्चात् १२ तपों के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। आत्मा के विकारों पर विजय पाने के लिए तपों का परिपालन आवश्यक बतलाया गया है। इसमें ६ बाह्य तप हैं जिनका शारीरिक क्रियाओं से सम्बन्ध है। उपवास करना, भूख से कम खाना, प्रतिदिन किसी एक रस

का परित्याग करना, शय्या छोड़कर सोना तथा शरीर को क्लेश देना ये सभी बाह्य तप है। इनके परि-पालन से साधुओं की तपश्चर्या में दृढ़ता आती है। इसी प्रकार छह अभ्यंतर तप भी हैं। जिन्हें साधक स्वयमेव करता है और जिनसे उदात्त भावों के शमन में शान्ति मिलती है।

इसके पश्चात् सम्यक्त्व, ग्यारह प्रतिमाएं, दान, जल छानने की विधि, रात्रि भोजनत्याग एवं रत्नत्रय के परिपालन के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। कवि ने इन सभी में अपनी अगाध ज्ञान की छाप छोड़ी है। साथ में ऐसी क्रियाओं के महत्व को पद्यों में लिखकर इसकी जनसाधारण को विस्तृत जानकारी भी दी है।

इस प्रकार 'त्रेपनक्रियाकोश' में यद्यपि जैनाचार का वर्णन है, लेकिन यह मानव मात्र के लिए नैतिक संहिता है। जिसने अहिंसा धर्म का परिपालन, सत्य व्यवहार को जीवन में उतारने पर जोर, चोरी, अनैतिक जीवन एवं अनावश्यक संग्रह आदि की बुराइयों की खुलकर निन्दा की गयी है। व्रतों से जीवन को अत्यधिक सयमित, नियंत्रित एवं विकसित करने की कला सिखायी गयी है। वास्तव में ऐसी पुस्तकों को धार्मिक आवरण में न रखकर सार्वजनिक उपयोग के लिए प्रस्तुत की जानी चाहिए।

भाषा:—

भाषा की दृष्टि से यह कवि की प्रथम छन्दोबद्ध रचना थी। इसलिए कवि इसमें किसी एक शैली पर स्थिर नहीं रह सका। कहीं पर यदि शुद्ध हिन्दी का प्रयोग हुआ है तो कहीं पर राजस्थानी का। व्रज भाषा के शब्दों के प्रयोग से कवि बच नहीं सका है। इसी तरह अपने मन्तव्य के लिए कहीं प्राकृत पद्यों का उदाहरण दिया गया है तो कहीं संस्कृत छन्दों को भी उद्धृत किया गया है। यही नहीं एक दो स्थान पर तो अपने विषय का प्रतिपादन करने के लिए उसने गद्य का भी प्रयोग किया है।

जीवंधर चरित्र

'जीवंधर चरित' कवि की दूसरी काव्यात्मक कृति है। इसमें जीवंधर के जीवन का चित्रण किया गया है। जीवंधर का जीवन जैन समाज में अत्यधिक प्रिय रहा है। इसीलिए संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि सभी भाषाओं में जीवंधर के जीवन पर अनेक रचनाएं मिलती है। हिन्दी भाषा में इस चरित को निबद्ध करने की प्रेरणा कवि को उदयपुर में स्वाध्याय प्रेमियों

द्वारा मिली थी। कवि ने इस कृति की प्रशस्ति में उनका साभार उल्लेख किया है। कवि धान मंडी उदयपुर में प्रतिदिन प्रवचन किया करते थे। एक बार उन्होंने महापुराण पर प्रवचन किया। इसी महापुराण में जीवंधर की भी एक सुन्दर कथा आती है। जब श्रोताओं ने उस कथा को सुना तो सभी श्रोताओं ने एवं विशेषतः कालाडेहरा के निवासी श्री चतुरभुज अग्रवाल ने कवि से निवेदन किया कि देव भाषा अर्थात् संस्कृत तो अत्यधिक कठिन है। उसका स्वाध्याय तो पंडित लोग ही कर सकते है, लेकिन सामान्य श्रावकों के लिये शक्ति के बाहर की बात हैं। इसलिये यदि इस काव्य की हिन्दी मे रचना हो जावे तो सभी सरलता से समझ सकेंगे। इसी प्रकार कवि के प्रमुख मित्र पृथ्वीराज का भी यही आग्रह था। सागवाड़ निवासी हुंमड जातीय श्रावक सेठ वेलजी का आग्रह भी विशेष था। इन लोगों के आग्रह को टालना स्वयं कवि के लिए भी संभव नही था। अतएव कवि को अन्त में भाषा में जीवन्धर चरित को प्रारम्भ करना ही पड़ा और संवत् १८०५ की आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को शुभवेला में इस ग्रन्थ की समाप्ति कर दी गई।

'जीवंधर चरित' एक प्रबन्ध काव्य है। इसमें प्रबन्ध काव्योचित सभी गुण मिलते हैं। सारा काव्य अध्यायों में विभक्त है। जिनकी संख्या पांच है। इन अध्यायों में जिस प्रकार का वर्णन मिलता है, उसका संक्षिप्त परिचय अध्याय की पुष्पिका में दिया गया है जिससे इस अध्याय का पूरा चित्र सामने आ जाता है। इन अध्यायों में कवि ने जीवन्धर चरित को अपनी काव्य प्रतिभा द्वारा सरस, सुबोध, एवं सरल बनाने का प्रयास किया है। कवि ने अपने काव्य के परम्परागत कथानक में यद्यपि कोई विशेष परिवर्तन नही किया है फिर भी कुछ नवीन उद्‌भावनाओं की सृष्टि अवश्य हुई है। समूचा काव्य एक इतिवृतसा लगता है। जिसमें जीवन्धर के विभिन्न पक्षो की उद्‌भावना हुई है। कथावस्तु का पूर्णत: निर्वाह हुआ है। वह पाठकों को कभी रुलाती तो कभी हंसाती हुई आगे ले चलती है। वास्तव में जीवन्धर का चरित क्या है—मानों उस महापुरुष की कहानी है, जिसने जीवन में कभी हार नही मानी तथा जिसने कभी अन्यायी का पक्ष नही लिया। वह ऐसे मनुष्य की कहानी है; जिसे जीवन में कुछ कर दिखलाने की तीव्र इच्छा है। वह एक ऐसे पुण्यात्मा की कहानी है; जिसने जीवन में सब कुछ पाकर भी उसे निस्सार जानकर छोड दिया तथा अन्त मे तपस्वी जीवन को अंगीकार करके निर्वाण की प्राप्ति की।

काव्य वर्णन

कवि के सभी वर्णन उच्चकोटि के हैं। एक बार जीवन्धर नगर के बाहर अपने साथियों के साथ गोली का खेल खेल रहे थे। इतने में एक तपस्वी ने जीवन्धर से नगर की दूरी के बारे में पूछ लिया—इसका जीवन्धर ने जो सुन्दर उत्तर दिया वह कितना सामयिक एवं आकर्षक है

बोले कंवर सबै यह जानै, बालक चेलक पंथ पिछानै।
तू अति वृद्ध ज्ञान न तोकों, किती दूर पुर पूछै मोकों ।।६१।।
तरवर सरवर बाग विसाला, बहुरि देखिए खेलत बाला।
तहां क्यों न लखिए पुर नीरा, संसै कहा राखिए वीरा ।।६२।।
ज्यौं लखि धूम अगनि हू जाने, त्यौं बालक लखि पुर परवानें।
जीवंधर के सुनिये वैनां, तापस कीये नीचे नैंनां ।।६३।।

एक बार जीवन्धर रोने लगे। जब तपस्वी ने जीवन्धर से नहीं रोने के लिए कहा तो जीवन्धर ने उसका जवाब कितने व्यंग्य से दिया, वह पढ़ने योग्य है—

रोवे के गुन तुम नहि जानी, मेरी बात हियैं परवानी।
जाय सलेखम जो दुख दाई, नेत्र विमल ह्वै अति अधिकाई ।१०५।
तितै अहार हु सीतल होई, यामैं तौ औगुन नहि कोई ।।

आदि काल से ही लड़की के विवाह की चिन्ता माता-पिता को रही है। पुत्री के विवाह के पश्चात् उन्हें अपूर्व प्रसन्नता होती है। इसी तरह का एक प्रसंग जीवन्धर चरित में भी आया है; जिसमें इसी तरह की बात कही गयी है—

रहै कंवारी कन्यका, व्याह जोगि घर मांहि।
मात तात को दूसरी, ता सम चिंता नांहि ।।४७।।
पुत्री परणावन समा, नहि निचिंतता और ।।

प्रस्तुत काव्य में नायक का चरित्र अलौकिक कार्यों से ही नहीं उभारा गया है; किन्तु वीणा-वादना प्रतियोगिता में जीवन्धर को विजय बतलाकर

नायक के ही चरित्र को समुन्नत बनाया गया है साथ ही अपने स्वयं की वीणा-वादन की कला पर भी प्रकाश डाला गया है—

सुनि करि चित्रत रहे भूचरा खेचरा।
मृग मोहित व्है महाराग मैं चित धरा।
या विद्या करि हुई कवंर की कीरती।
जांनी सब संसार राग मैं कीमती ।।३७।।२१

जीवन्धर सुगन्ध परीक्षा में भी प्रवीण थे, इसलिए कवि ने "गंध परखबा दूजो नाहिं, जीवन्धर सो बरणो मांहि"—७०/२४ के शब्दों में अपने नायक की प्रशंसा की है। जीवन्धर अत्यधिक दयालु थे। जब एक श्वान भयभीत होकर उल्टा तालाब मे पड़ जाता है तो उसे वे अपने प्राणों की भी परवाह न करते हुए तालाब मे कूद पड़ते हैं और मरते हुए कुत्ते को णमोकार मंत्र सुनाते हैं; जिससे वह मरकर यक्ष योनि को प्राप्त करता है—

प्राण छोडि वे सनमुख भयो, सुनिकैं कुमर कढाई हि लयो।
जान्यों इह जीवै नहिं कोइ, याको मरण अवारहि होय ।।७२।।२५
तब ताके कांननि मै आप, दियो मंत्र जो नासै पाप।
नमोकार सो मंत्र न और, इहै मंत्र सब श्रुत को मौर ।।७३।।२५

कवि ने व्यापारियों की मनोवृत्ति पर अच्छी चुटकी ली है और लिखा है—

वनियनि की इह रीति अनादि, हरडै सूंठि आवला आदि।
बेचैं और मोलि ले सही, इन तौ रीति और ही गही ।।६६।।२७

जीवन्धर :

काव्य का नायक जीवन्धर हैं। उसके पिता राज नगर के राजा थे। लेकिन उसका जन्म श्मशान मे हुआ। जन्म लेते ही वह पितृ विहीन हो गया और अपनी माता विजया रानी के द्वारा पालन होने के स्थान पर गंधोत्कट सेठ के घर उसका लालन पालन हुआ। लेकिन जीवन्धर पुण्यात्मा था; इसलिए जहां भी गया वहीं पर उसे सब प्रकार की सुख सुविधा मिलती गयी। गंधोत्कट सेठ ने जीवन्धर का लालन-पालन अत्यधिक स्नेह के साथ किया। वह

प्रारम्भ से ही व्युत्पन्न मति था, साहसी था, निडर था तथा आपत्तियों से जूझने वाला था। बचपन में जब उसकी भेंट तपस्वी से हुई तो तपस्वी और उसके मध्य होने वाला वार्तालाप उसके व्युत्पन्न मति होने का स्पष्ट प्रमाण है। तपस्वी द्वारा नगर की दूरी पूछी जाने पर, जीवन्धर द्वारा दिया गया उत्तर उसकी उत्पन्न मति का द्योतक है।

जीवन्धर ने सर्व प्रथम भीलों का उत्पात शांत किया और उनसे गायों को छुड़ा कर काष्टांगार को सौंप दी। यह जीवन्धर की प्रथम सफलता थी। काष्टांगार जैसे धूर्त राजा भी उससे लड़ने का साहस नहीं कर सके। उसे जीवन्धर ने अपने भाइयों को साथ लेकर ऐसी शिकस्त दी, जिससे जीवन्धर की वीरता की चारों ओर प्रशंसा होने लगी। इसके पश्चात् जीवन्धर ने सुघोषा वीन बजाकर गंधर्वदत्ता के साथ विवाह किया—यह उसका संगीत प्रावीण्य था। काष्टांगार के बिगड़े हुए हाथी असनिवेग को सहज ही में वश में कर लिया जिसके उपलक्ष्य में उसे सुरमंजरी जैसी सुन्दर कन्या प्राप्त हुई। काष्टांगार के षडयन्त्र को विफल किया। पद्मोत्तमा का विष दूर कर उससे विवाह किया एवं आधा राज्य भी प्राप्त किया। सहस्त्रकूट चैत्यालय के कपाट खोलकर क्षेमसुन्दरी को विवाह में प्राप्त किया। धनुष विद्या में प्रवीणता दिखला कर हेमाभा को परिणय संस्कार में बांध लिया तथा अपने ही नगर राजपुर में आकर उसने विमला एवं गुणमाला जैसी कन्याओं से विवाह किया। इनसे जीवन्धर की कीर्ति चारों ओर फैल गयी। यही नहीं रत्नावली को स्वयंवर में प्राप्त करके अपनी निशाने बाजी की कला में सफलता पाई और अपने पिता की जघन्य हत्या करने वाले तथा प्रबल शत्रु काष्टांगार को रण भूमि में मारकर अपना राज्य वापिस प्राप्त किया और एक लम्बे समय तक अपने कुटुम्बीजनों के साथ उसने जनता को स्वच्छ प्रशासन दिया। इस प्रकार काव्य के नायक जीवन्धर का चरित्र अन्त तक निखरता गया है।

काव्य कला:

प्रस्तुत 'चरित' में सभी काव्य गुण उपलब्ध होते हैं। पांच अध्यायों में विभक्त यह काव्य हिन्दी भाषा का प्रमुख काव्य है जो अभी तक विद्वानों की दृष्टि से ओझल रहा। दोहा, चौपई, सोरठा, वेसरी, अरिल्ल, वडदोहा, चालि छन्द, भुजंगी प्रयात, छप्पय आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। कवि ने बीच-बीच में दोहा चौपई के अतिरिक्त अन्य छन्दों का प्रयोग करके काव्य की उपयोगिता में वृद्धि की हैं। इसी तरह अलंकारों का प्रयोग भी

यथेष्ट हुआ है। जिनमे उत्प्रेक्षा, उदाहरण, उपमा एव अनुप्रास अलंकारो के नाम उल्लेखनीय है।

जीवन्धर चरित' शान्त रस का काव्य है। इसका नायक अनेक साहस पूर्ण कार्यों को करने के पश्चात् एव दीर्घ समय तक शासन सुख भोगने के उपरात ससार से विरक्त हो जाता है और अन्त मे घोर तपस्या करके मोक्ष को पाता हैं। अपने पूर्व भव मे १६ दिन तक हंस के बच्चे को उसकी मा से विलग करने का फल जीवन्धर को इस भव मे अपनी माता से १६ वर्ष तक विछोह मिलता है। क्योकि सभी जीवो की समान आत्माएं होती हैं और उन्हें भी सुख-दु ख का अनुभव समान रूप से होता है। जन्म से पूर्व ही पिता की मृत्यु, श्मशान मे जन्म, सेठ का श्मशान मे मृत पुत्र को लाना और उसके स्थान पर जीवन्धर को पालना, यक्षिणी द्वारा उपकार, रक्षा करना और फिर यक्ष द्वारा विपत्तियो मे सहायता ये सब कुछ ऐसी घटनाए है, जो कर्म सिद्धान्त मे अटूट विश्वास उत्पन्न करने वाली हैं।

भाषा :

'जीवन्धर चरित' की भाषा शुद्ध हिन्दी हैं। यद्यपि कवि ने उसे उदयपुर मे रहते हुए छन्दोबद्ध किया था लेकिन मेवाती और गुजराती भाषा का इस काव्य पर प्रभाव नही है। किन्तु कवि के जयपुर निवासी होने के कारण कही-कही ढू ढारी शब्दो का प्रयोग अवश्य हो गया है।

३ अध्यात्मबारहखड़ी :

'अध्यात्म बारहखडी' कवि की अध्यात्मक कृतियों मे सबसे बडी रचना है। इसमें स्वर एव व्यंजन के माध्यम से अध्यात्म विषय का वर्णन किया गया है। स्वय कवि ने इसका अध्यात्म बारहखडी नाम देकर इसके विषय को स्पष्ट किया है। एक प्रकार से वह अध्यात्म विषय का कोश ग्रन्थ है जिसका प्रत्येक वर्णन भक्ति एव अध्यात्म रस से ओत-प्रोत हैं। कवि ने इसमे अपने पूरे ज्ञान को ही जैसे उडेल कर रख दिया है। इस ग्रन्थ मे तीर्थंकरो की विविध रूप मे स्तुति मिलेगी। सहस्रनाम, शतनाम जैसी अनेक रचनाए इसमे समायी हुई हैं। इस कृति का दूसरा नाम "भवत्यक्षरमालिका बावनी स्तवन" भी दिया हुआ है। अध्यात्म बारहखडी इसका अलग नाम है—जैसा कि कवि ने कृति की प्रत्येक पुष्पिका मे उल्लेख किया हैं।

कवि ने अपनी इस पूरी कृति को ८ परिच्छेदा मे निम्न प्रकार विभक्त किया है—

प्रथम परिच्छेद में ओंकार प्रणव महिमा एवं अकाराक्षर से प्रारम्भ होने वाले पद्य हैं। सर्व प्रथम ५ संस्कृत पद्यों में मंगलाचरण किया गया है। इसके पश्चात् ९६ दूहा एवं नाराच छंदों में प्रणवमहिमा, ३६ चौपई छन्दों में ओंकार महिमा एवं ११२, दोहा चौपई, छंद बेसरी में अकार का वर्णन किया गया है। प्रथम परिच्छेद की पुष्पिका निम्नप्रकार है—

"इति श्री भगवदक्षरमालिका बावनी स्तवन अध्यात्म बारहखड़ी नामध्येय उपासनातंत्रे जिनसहस्रनाम एकाक्षरीनाममालादि अनेक ग्रंथानुसारेण भगवद भजनामाधिकारे आनंदराम सुत दौलतरामेन अल्पबुद्धिना उपाख्यीकृते प्रथम स्तुति आरंभद्वारेण प्रणव महिमापूर्वक अकारनिर्भाक्षर प्ररूपणो नाम प्रथम–परिच्छेद ॥१॥

द्वितीय परिच्छेद में अकार से लेकर अःकार के १६ स्वरान्त पद्यों में भगवद्भक्ति एवं अध्यात्म की गंगा बहायी है। इन स्वरान्त पद्यों की संख्या निम्न प्रकार है:—

अकारान्त पद्य	४४२
आकारान्त ,,	१३५
इकारान्त ,,	९६
ईकारान्त ,,	३५
उकारान्त ,,	१६०
ऊकारान्त ,,	४४
ऋकारान्त ,,	१४४
ॠकारान्त ,,	१५
ऌकारान्त ,,	१६
ॡकारान्त ,,	११
एकारान्त ,,	१९०
ऐकारान्त ,,	५०
ओकारान्त ,,	२४
औकारान्त ,,	२५
अंकारान्त ,,	७२
अःकारान्त ,,	१२
	१४७१

जिन छन्दों का इस परिच्छेद में प्रयोग हुआ है, उनमें दोहा, चौपई, चौपया, सवैया, कवित्त, छन्द गीता, भुजंगीप्रयात, त्रोटक, सवैय्या इकतीसा, छन्द मोतीराम, पद्धड़ी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कवि ने कथाओं के माध्यम से भी जिन महिमा का वर्णन किया है। इकारान्त पद्यों के अन्त में कवि ने अपने पुत्रों के नाम गिनाये हैं। ऋकार से पहिले जिनवाणी का स्तवन और फिर षट्ऋतुओं का वर्णन मिलता है। सभी वर्णन विस्तृत एवं स्पष्ट हैं एवं कवि की विद्वत्ता के द्योतक हैं।

तृतीय परिच्छेद :

यह परिच्छेद कवर्ग का है। जिसमें ककार, खकार, गकार, घकार एवं ङकारान्त पद्यों को दिया गया है। इन परिच्छेदों में ककारान्त के २०५ पद्य हैं, खकारान्त के ८१ पद्य, गकारान्त के ११७ पद्य और घकारान्त के ५६ पद्य एवं ङकारान्त के २४ पद्य हैं। प्रारम्भ में वर्णन करने से पूर्व संस्कृत पद्य अलग से दिये गये हैं। गृद्ध के प्रसंग में सीताहरण की कथा दी हुई है।

चतुर्थ परिच्छेद :

इसमें चवर्ग के सभी पंचाक्षरान्त पद्य हैं इनमें चकारान्त के १६०, छकारान्त के ७४, जकारान्त के ३२, झकारान्त के ४२ एवं ञकारान्त के २० पद्य हैं। इस प्रकार यह परिच्छेद ३५८ पद्यों में पूर्ण होता है। इनमें झकारान्त में झूठ की बुराइयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस परिच्छेद का प्रमुख छन्द सवैया एवं सोरठा है। वर्णन कुछ क्लिष्ट हो गया है।

पंचम परिच्छेद :

इसमें टवर्ग के सभी पंचाक्षरान्त पद्य हैं। इनमें टकारान्त के ३७ पद्य, ठकारान्त के ३५ पद्य, डकारान्त के ७६, ढकारान्त के २६ पद्य एवं णकारान्त के ४३ पद्य हैं। इस परिच्छेद में सब मिलाकर २१७ पद्य हैं। इस परिच्छेद का वर्णन सामान्य है।

षष्ठम परिच्छेद :

उसमें तवर्ग के पद्य दिये गये हैं। जिसमें तकारान्त के १७३ पद्य, थकारान्त १३६ पद्य, दकारान्त के ३४६ पद्य, धकारान्त के ७६ एवं नकारान्त के १२६ पद्य हैं। सब मिलाकर हिन्दी पद्यों की संख्या ६६६ है,

जो एक सतसई के रूप में हैं। इस परिच्छेद में त्रेपन क्रिया, अष्ट मूलगुण, द्वादश व्रत, निश्चय व्यवहार नय, गुणस्थान, पांच ज्ञान—आदि पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस परिच्छेद का प्रमुख छन्द दोहा चौपई एवं सोरठा है।

सप्तम परिच्छेद :

इस वर्ग में पवर्ग पर आधारित पद्य हैं। इनमें पकारान्त के ३३८ पद्य, फकारान्त के ७०, बकारान्त के २७, भकारान्त के १३७ एवं मकारान्त के १८६ पद्य हैं तथा कुल पद्यों की संख्या ८५८ है। कुण्डलिया, छाप्पय, सोरठा, शार्दूल विक्रीडित जैसे छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। सभी वर्णन सरस, सरल एवं प्रवाहमय हैं। अलंकारिक शब्दों का भी यत्र तत्र प्रयोग हुआ है।

अष्टम परिच्छेद :

अध्यात्म बारहखडी का यह अन्तिम परिच्छेद है। जिसमें यकारांत पद्यों की संख्या ११८, रकान्त ६२, लकारान्त ८६, वकारान्त ११३, शकारान्त १३३, षकारान्त १२६, सकारान्त ४५२, एवं हकारान्त ६३ तथा क्षकारान्त के ८१ पद्य हैं, इस प्रकार इस परिच्छेद की कुल संख्या १२६८ पद्य हैं जो सबसे अधिक है। इसमें आध्यात्मिक वर्णन अपेक्षाकृत अधिक है। दोहा चौपई जैसे छन्दों के अतिरिक्त उपेन्द्रवज्रा, सवैय्या, कुण्डलिया सोरठा आदि इस परिच्छेद के छन्द हैं।

अध्यात्म बारह खडी काव्यत्व की अपेक्षा से एक अच्छी कृति है। यह एक कोश ग्रन्थ है, जिसकी रचना जिनसहस्र नाम नाममाला आदि अनेक कोश ग्रन्थ एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों के आधार पर की गई है। हिन्दी भाषा में इस प्रकार की बहुत कम कृतियां देखने में आती हैं।

वर्णन :

शारदा—जिसका अपर नाम भारती, ईश्वरी एवं सरस्वती है, वह सर्वज्ञ प्रभु के मुख से निकली हुई है। कवि ने उसका वर्णन करते हुए लिखा है—

"सरवगि के मुखतैं भई, सदा सारदा देवि।
वहै ईश्वरी भारती, सुर नर मुनिजन सेव ॥२७॥

श्रकारान्त में श्रद्धा पर प्रकाश डालते हुये कवि ने लिखा है, कि श्रद्धा से भगवान जिनेन्द्र का नाम जपना चाहिए । श्रद्धा पूर्वक ही किसी को कुछ देना चाहिये । श्रद्धा से ही व्रत एवं तप की आराधना की जानी चाहिए ।

श्रद्धा करि जिन नांव जपि, श्रद्धा करि कछु देहु ।
श्रद्धा करि व्रत शील धरि, नर भव लाहौ लेहु ।।

कवि जिनेन्द्र की भक्ति में इतने सन्नद्ध थे कि इन्हें यह आश्चर्य लगने लगा था कि लोग उन्हें छोड़कर अन्य की कैसे आराधना करते हैं—

ते नर नीच शृगाल सम, जे नहिं ध्यावैं तोहि ।
तोहि छोडि औरहि भजें, इह अचरजि अति मोहि ।।१०५।।

एक दूसरे प्रसंग में कवि ने फिर उनका स्तवन निम्न प्रकार किया है—

तेरौ निर्माता नहीं, रचिता जग मैं कोय ।
अनिर्मातृ भगवान तू, अनिर्वाच्य वो होय ।।३६१।।

जिनेन्द्र का वर्णन कर सकने में असमर्थ अपने आपको कवि निम्न प्रकार प्रस्तुत करता है—

ओजस्वी तुम वर्णना, कथि न सकै जनि कोय ।
मैं मति हीन अजांन जो, किम कहि सकि हौं तोय ।।३।।

'जिनेन्द्र' के स्तवन में कवि के कुछ अत्यधिक सुन्दर, सरल एवं भावपूर्ण पद्य देखिए—

'ख' कहिए आकास को, तू आकास स्वरूप ।
सद्ध चिदातम बोधमय, परम हंस जगभूप ।।२।।
ख कहिए इन्द्रीनि कौ, तुम इन्द्रीनि तैं दूर ।
मन अर बुधि हू कै परै, घटि घटि अन्तर पूर ।।३।।

× × ×

घर घर की सेवा करत, उपज्यौ अति गति खेद ।
अब तू अपनी टहल दे, ले निज मांहि अभेद ।।१।।
घर घरणी मै हम लगे, धन धरणी की चाहि ।
चाहि हमारी मेटि सब, वहु भरमावै काहि ।।२।।

४ विवेक विलास

'विवेक विलास' कवि की पद्यात्मक कृतियों में से सबसे महत्वपूर्ण कृति है। पूरी कृति रूपक काव्य है, जिसमें आदि से अन्त तक रूपकों की मालाएं ही मालाएं हैं। यह एक ऐसी कृति है, जो किसी भी कवि की काव्य प्रतिभा परखने के लिए पर्याप्त है। कवि ने कृति का नाम विवेक विलास' दिया है जो पूर्णतः सत्य है। इसमें जगत के प्राणियों को विवेकमय जीवन अपनाने की प्रेरणा दी गयी है। विभिन्न रूपकों से उसे सच्चरित्रता एवं सद्कार्य करने को कहा गया है। पूरा विलास दोहा छन्द में है। जो ६२४ दोहा छन्दों में समाप्त होता है। एक ही काव्य में दोहा छन्द का इतना बड़ा प्रयोग भी बहुत कम देखने को मिलता है। यह एक ही छन्द-कृति है। १८वीं शताब्दी में दोहा छन्द कवियों के लिए एवं जनता के लिए कितना लाडला छन्द था। इसको इस कृति से जानकारी मिलती है।

कवि ने अपनी इस कृति का नाम 'विलास' दिया है। विलास संज्ञक रचनाएं बनारसीदास से ही लोकप्रिय रही हैं इसलिए प्रत्येक कवि की एक विलास संज्ञक कृति अवश्य मिलती है। इनमें बनारसी विलास, भूधर विलास, द्यानत विलास, दौलत विलास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। लेकिन अन्य विलास, संज्ञक रचनाओं में एवं विवेक विलास में पर्याप्त अन्तर है। बनारसी विलास में जहां बनारसीदास की सभी लघु कृतियों का संकलन किया गया है। वहां दौलतराम ने अपने विवेक विलास में एक ही कृति को निबद्ध किया हैं।

विवेक विलास में निजधाम वर्णन, २. ठगग्राम वर्णन, ३. निज वन निरूपण, ४. निजभवन वर्णन, ५. भावसमुद्र वर्णन; ६. भवसमुद्र वर्णन, ७. ज्ञान निरूपण, ८. नर्बगिरि वर्णन, ६. निज गंगा वर्णन, १०. आशा वैतरणी विषनदी वर्णन, ११. भावसरोवर वर्णन, १२. विभाव सर वर्णन, १३. अध्यात्म वापिका वर्णन, १४ विषय वापी वर्णन, १५. रस कूप वर्णन, १६. भवक्रम वर्णन, १७. अन्तरात्मा ज्ञान राज वर्णन, १८. बहिरात्मा दशा वर्णन, १६. गुरु वचन—इस प्रकार 'विलास' का विषय वर्णन विभक्त किया हुआ है। यद्यपि विवेक विलास अध्यायों अथवा सर्गों में विभक्त नहीं हैं, लेकिन विभिन्न वर्णन ही इसके अध्याय हैं। ये सभी अध्याय ज्ञान रूपी महल से चढ़ने के लिए सीढ़ी का कार्य करते हैं। एक के पश्चात् एक वर्णन इस क्रम से हुआ है, जिससे विलास की एक भी कड़ी नहीं टूट सकी है। और विषय सहज ही खुलता चला गया है। समूचा

विलास रूपको से ओत-प्रोत है तथा प्रत्येक दोहे मे किसी न किसी रूपक का प्रयोग हुआ है। इनमे कवि के अगाध ज्ञान एवं विशाल काव्य-शक्ति का सहज ही पता लगाया जा सकता है।

रचना काल

कवि ने अपनी इस कृति को किस शुभवेला मे प्रारम्भ किया था, और किस शुभवेला मे समाप्त करके साहित्यिक जगत का महान् उपकार किया, इसके बारे मे अपनी अन्य कृतियो के समान समय देना उचित नही समझा। यही नही इस महत्वपूर्ण कृति की पूरे राजस्थान के जैन ग्रन्थगारो मे अभी तक एक ही पाण्डुलिपि उपलब्ध हो सकी है जो जयपुर के पाण्डे लूणकरण जी के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है। यह पाण्डुलिपि स० १८२७ पौष सुदी ३ वृहस्पतिवार को लिखी हुई है। जयपुर मे आने के पश्चात् कवि ने एक ही पद्यात्मक रचना 'श्रीपाल चरित' को छन्दोबद्ध किया था, जिसमे भी स्पष्ट रूप से रचना काल दिया हुआ है। यह कृति सभवतः 'अध्यात्मबारहखडी' के पश्चात् लिखी गयी थी। वह कवि की काव्यशक्ति का सर्वोच्च समय था। और इसीलिए कवि की लेखनी से ऐसी उत्कृष्ट कृति का सर्जन हो सका। इसलिए इसका रचना काल स० १७९८ से १८०० तक का माना जा सकता है।

भाषा

भाषा की दृष्टि से विवेक-विलास एक परिमार्जित हिन्दी कृति है। कवि ने शुद्ध हिन्दी का प्रयोग करके तत्कालीन समय मे प्रचलित हिन्दी शैली का उदाहरण प्रस्तुत किया है। यद्यपि कवि राजस्थानी थे। उदयपुर मे उस समय रहते थे, लेकिन विवेक-विलास की भाषा पर ढूढारी एव मेवाडी भाषा का सबसे कम प्रभाव पडा है। कवि न शुद्ध हिन्दी मे अपनी इस कृति को प्रस्तुत किया है।

विषय वर्णन

विवेक-विलास 'निजधाम वर्णन' से प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य की महिमा एव उससे ब्रह्म पद प्राप्ति का कथन मिलता है। इसके पश्चात् कवि ने जगत मे अध्यात्म चर्चा एव भगवद्भक्ति को ही आत्म साधना के प्रमुख उपाय बतायें हैं। यह आत्मा अपने आत्म प्रदेश मे निवास करता है, वही उसका अभैपुर है। जहा उसे जरा भी काल का भय नही है।

अर्भपुर नगर का राजा आत्मा ही है। समरस भाव उसके मित्र हैं। सम्यक् ज्ञान ही उसका प्रधान अमात्य है। अनन्तवीर्य आत्मा का सेनापति है। भाव उसका दुर्ग है। उसका गम्भीर स्वभाव ही उसके यहां खाई है। आत्म ध्यान ही द्वार हैं और यही अध्यात्म का सार है। अनन्त चतुष्टय भाव ही चार सुभट है। इस प्रकार रूपकों की प्रत्येक पद्य में छटा दिखलायी देती है।

प्रथम अध्याय में इसी तथ्य को स्पष्ट किया गया है कि आत्मा राजा है तथा गुण इसकी प्रजा है। शुद्ध भाव ही उसके शस्त्र हैं जिनसे उसकी जीत होती है। उस पुर में कोई चोर नहीं है। वह आत्मा स्वयं मालिक है। उसके पास महासुखों की सभी सामग्री उपस्थित रहती है। शुद्ध पारणामिक भाव ही राजसभा के पार्षद हैं। जो सदैव आत्मा की सेवा में उपस्थित रहते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व उसके महा-भट हैं जिसके बल पर यह आत्मा निष्कलंक राज्य करता है। निज स्वभाव ही उसका सिंहासन है। उस पर वह बैठकर सब पर शासन करता है। दुःखों को हरण करने वाला स्वभाव ही उसका छत्र है तथा निर्भय भावों की तरंग चमर है। इसके आगे कवि ने आत्मा के विभिन्न गुणों को रूपकों द्वारा समझाया है।

ऐसी आत्मा परमानन्द दशा में विराजती हैं, वहां उसे इन्द्रिय-भोगों की जरा भी चिन्ता नहीं हैं। आत्मानुभव ही अमृत है जिसका वह सदा पान किया करता है। उसे भूख एवं प्यास की बाधा नहीं होती। जन्म, जरा एवं मृत्यु का भय नहीं तथा रात्रि एवं प्रातः उसके लिए समान हैं। रात्रि में विचरण करने वाले चोरों के समान रागादि भावों का वहां संचार नहीं और उसके आत्मपुर में रोग-शोक आदि पिशाच नहीं है। ठग के रूप में काम करने वाले काम एवं लोभ का वहां नाम भी नहीं है। ऐसे प्रदेश में वस्तु स्वभाव ही पुर है और वह धर्ममय है। जहां राजा और प्रजा दोनों धर्ममय है। वहां धर्म रहित होकर कोई नही रहता। ऐसे यह आत्मा जब अपने नगर में रहता है; तब चारों ओर महान् सुख बरसता है। वह उसका नन्दन वन है; लेकिन इस उपवन में न तो मायारूपी वेलि है और न विकल्पों का जाल है। क्रोधादि पंखों का यहां पूर्णतः अभाव है। उस वन में शुभाशुभ कर्म वृक्ष नहीं है। वहां सुख रूपी सरोवर है। जिसमें सहज नीर भरा हुआ है। वहां अपने भाव वाले तरुवर हैं। इस प्रकार यह पूर्ण वर्णन रूपकों से भरा हुआ है।

'विवेक-विलास" का दूसरा अध्याय 'ठग ग्राम वर्णन' है। इसमे कवि की भावाभिव्यक्ति है कि हे मनुष्य ! यह जगत ठगो का निवास-स्थान है। मोहादि वहा के अनन्त ठग हैं, जिनके नाम कहा तक लिए जावें। मोह इन सब ठगों का राजा है, क्योंकि मोह की फासी के समान जगत मे दूसरी फासी नहीं है। जीवो को यह फासी देकर मान गुणो को हर लेता है। मोह निद्रा के समान दूसरी दीर्घ निद्रा नही है। यह जगत मोहवश ज्ञान चेतना खोकर सोता रहता है। ममता मोह की प्रिया है। जिसके समान अन्य कोई ठगिनी नही है। यह ममता सुरेन्द्र नरेन्द्र आदि सभी को ठग लेती हैं। सबसे बडे ठग राग एव द्वेष हैं, जिनकी भुजाओ के प्रताप से मोह जगत पर शासन करता है। राग की प्रिया सरागता है। विषयो मे अनुरागता ही यहा अद्भुत ठगिनी हैं। द्वेष के समान कोई दुर्बुद्धि नही है। द्वेष की प्रिया दुर्जनता है, जिसने अभी सभी को ठगा है। इसी तरह इस नगर मे काम के समान दूसरा कोई प्रवल ठग नही है, जो जगत का शील हरण करके बदफैल करता रहता है। काम की प्रिया रति है, जो जगत को भरमाती रहती है। इसी प्रकार क्रोध, मान, माया और लोभ रोग, शोक असयम आदि और भी ठगो के नाम गिनायें है।

'विलास' का तीसरा वर्णन 'निज वन निरूपण' के नाम से है। यह २५ दोहा छन्दो में पूर्ण होता है। इसमे कवि ने बतलाया है कि जब यह आत्मा अपने वन मे क्रीडा करती है तो उसे मृत्यु का भी डर नही रहता। आत्म-वन अमर उद्यान है जिसमे परमानन्द प्राप्त होता है। यह वन आत्महस के लिए केलि करने का स्थान है लेकिन यह हस हिंसा से रहित है। तथा शान्त रस का धारण करने वाला है। इस वन मे आत्मकला के समान कोई कोयल नही है। वह आत्म-वेलि ही रसिया है। यहा सरवर सम भाव के रूप में है। चपल स्वभाव वाले मृग नही है तथा दुष्ट भाव वाले दुष्ट पशु भी नही है। इस आत्मवन मे न तो मोह रूपी दैत्य का निवास है और न कषाय रूपी किरात ही निवास करता है। इसी तरह से वन मे मिलने वाली सामग्री को आत्मवन के रूप मे चित्रित किया है। वहा न तो काटे हैं और न विकल्पो का जाल है और न माया रूपी विष वलि ही है। इस वन मे रागादिक के रूप मे रजनीचर नही विचरते है। आत्म ज्ञान के रूप मे घने वृक्ष हैं। वहा तो स्वभावरूपी अमृत वृक्ष है जो सदा अमर फल देते हैं। यह एक ऐसा रमणीक वन है, जहा आत्म राजा विचरण करता है।

चतुर्थ अध्याय 'निज भवन वर्णन' के रूप मे है। यह विस्तृत वर्णन है, जो ७७ दोहा छन्दो मे पूर्ण होता है। भव वन' अत्यधिक विरूप है। इसलिए

यह आत्मा उसमें जरा भी विचरण नहीं करती। इस भव वन में दुष्ट स्वभाव के रूप में दैत्य विचरते हैं। मोह दैत्य शिरोमणि है। राग एवं द्वेष रजनी चर हैं, पाप के रूप में पिशाच हैं। सात व्यसनों की सेना में महाहिंसक पुरोहित हैं; जिसमें दया का करण भी नहीं है। ऐसे भव वन में मोह राजा है। ममता उसकी पटरानी है। आठ कर्मों के रूप में विष वृक्ष हैं; जो कांटों से युक्त है तथा छाया रहित है। वह मृत्यु के रूप में उपहार देता रहता है। शुद्धात्म अनुभूति के समान अमृत लता नहीं है। शुद्ध भावों के रूप में अमृत वृक्ष नहीं है। इसके आगे कवि ने और भी भव वन के डरावने रूप का विस्तार से वर्णन किया है।

भव वन के समान ही भाव समुद्र का रूपात्मक वर्णन किया गया है। इसमें सागर में मिलने वाले जड़ स्वभाव के रूप में जलचर, मोह भाव, माया एवं लोभ के रूप में मगर, लोलपी जिह्वा के रूप में मछलियां, निष्ठुर कछुवा, वृथा विवाद करने वालों के रूप में मींडके, तुच्छ स्वभाव के रूप में झींगर आदि का वर्णन किया गया है।

आगे भव समुद्र वर्णन, गर्व गिरि वर्णन, निज गंगा वर्णन, आशा-वैतरणी विष नदी वर्णन, भाव सरोवर वर्णन, विभाव सर वर्णन, अध्यात्म वापिका वर्णन, विषय वापी वर्णन, आदि वर्णनों के रूपकों में काफी साम्यता है। समुद्र में पाने वाले मगर, मछली, जलचर, मच्छर, कछुवा आदि के रूपकों का समावेश किया गया है। सभी वर्णन भावमय है। इसी तरह विलास के सभी वर्णनों में रूपकों के अम्बार लगे हुए हैं।

'विवेक विलास' की भाषा प्रौढ़ है तथा वर्णन रुचिकर है। बड़ी ही प्रभावक रीति से कवि ने अध्यात्म की गंगा बहायी है, जिसमें आत्मतत्व की प्रधानता है। कवि ने आत्मा के विविध गुणों का विभिन्न रूपकों के माध्यम से सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। यह आत्मा स्वभावतः शुद्ध है। निजानन्द रसलीन है। आत्मा ही नगर है और आत्म भाव ही सागर है तथा आत्मा ही स्वयं का राजा है जो स्वयं के पास है।

आतम भावहि नगर है, आत्म भाव पयोधि।
आत्म राम ही एक है, यह निज घर में सोधि ॥३०८॥

'आत्म तत्व' की पहिचान जिसे भी हो गई, वही भवसागर से तिर गया तथा जिसने इसकी सिद्धि करली, उसे जन्म मृत्यु के जाल से छुटकारा मिल गया। कवि ने अपनी इस कृति में आत्मा को कलुषित करने वाले, शुद्ध

चैतन्य दशा से दूर रखने वाले, ससार मे रुलाने वाले अवगुणो का, बुराइयो का एव दुस्साधनो का जिस स्पष्टता से उल्लेख किया है, वे कवि के गम्भीर चिन्तन की ओर सकेत करते है। वास्तव मे यह विलास एक एसी कृति है। जिसका धर्म एव सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नही। वह केवल अपने ही मे निवास करने वाले आत्म तत्त्व तथा उसमे निहित परम शक्तियो का दर्शन कराना चाहता है। वह मनुष्य मात्र को बार-बार चेतावनी देता है कि—

> निज गुर अ बुधि मैं वसै, ताहि न पावो ताप।
> तातै सकल विलास तजि, सेवो आपनि आप।।
> विषै पंच इन्द्रीनि के, कालकूट विष तेहि।
> विष कौ मूल भयकरा, भव कानन है एहि।।

५ श्रेणिक चरित

यह कवि की प्राथमिक रचनाओ मे से है। 'पुण्यास्रवकथाकोश' की भाषा —टीका के पश्चात् उन्होने इस काव्य की रचना की थी। यह एक प्रबन्ध काव्य हैं जिसमे महाराजा श्रेणिक का जीवन चरित निबद्ध है इसमे ५०१ छन्द हैं तथा बिना किसी सर्ग अथवा अध्याय-भेद के कवि ने एक ही प्रवाह मे श्रेणिक की जीवन कथा को छन्दोबद्ध किया है। कवि की यह रचना अधिक लोकप्रिय नही हो सकी, क्योकि अभी तक राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थ भण्डारो मे इसकी केवल दो ही पाण्डुलिपिया मिली है—

१. एक पाण्डुलिपि भरतपुर के पचायती मन्दिर म ह, जिसकी पत्र स० २४६, तथा लेखनकाल सवत् १८८८ है।

२ दूसरी पाण्डुलिपि 'यश कीर्ति सरस्वती भवन, ऋषभ देव' में सग्रहीत है। इसमें ४६ पत्र हैं तथा लेखनकाल सवत् १८०७ कार्तिक सुदी ८ है।

प्रस्तुत परिचय दूसरी पाण्डुलिपि के आधार पर है। पर यह पाण्डुलिपि भी अशुद्ध लिखी हुई है तथा उसकी लिपि भी अच्छी नही हैं।

कवि ने 'श्रेणिक चरित' की रचना सवत् १७८२ चैत्र शुक्ला ५ के दिन पूर्ण की थी। इस दिन चन्द्रवार था।

> समत सतरेसै बीआसी श्री चैत्र सुकल तिथि जान।
> पचमी दिने पूरण करी, वार चन्द्र पहचान।।५०१।।

चरित की भाषा हिन्दी है। इसमें कवि का काव्य कला की ओर अधिक ध्यान न होकर काव्य के नायक की कथा का वर्णन करने का रहा हैं।

इक दिन भूप गयो वन मांही, मारग जती जसोधर पांही।
आतापन तप तपीये कोही, देखी श्रेणिक इम कही ॥६२॥
मुनि पे कुक्कर दीये छुडाय, तव उन दीन दक्षणा जाय ॥६३॥
नमस्कार करी बैठे स्नान, भूपती लखी रांणी गुर जांन ॥६४॥
मरल साप मुनि गल धरो, नरक सातमी को बंध पड़ो।
चौथे दिरा रेनकी वार, कही भूप राणी सब छार ॥६५॥

कवि यह काव्य रामचन्द्र के काव्यानुसार लिखा है, ऐसा उन्होंने ग्रन्थ की प्रशस्ति में उल्लेख किया हैं।

सिवानन्द मुनि राम सीण्यो, रामचन्द्र रिषी नाम।
तिन अनुसार बनाय के, रची सो दौलतराम ॥५००॥

६ श्रीपाल चरित :

'श्रीपालचरित' कवि का प्रबन्धकाव्य है जिसमें कोटिभट श्रीपाल का जीवन चरित निबद्ध है। श्रीपाल के जीवन पर जैनाचार्यों ने सभी भाषाओं में काव्य लिखे हैं। हिन्दी में कवि के पूर्व ब्रह्म रायमल ने 'श्रीपाल रास' (सं० १६३०) तथा परिमल कवि ने श्रीपाल चरित (सं० १६५१) की रचनाएं लिखकर काव्य रचना के मार्ग को प्रशस्त कर दिया था। श्रीपाल एवं मैना सुन्दरी का जीवन अत्यधिक लोकप्रिय रहा है और इसी कारण इनके जीवन पर विविध रचनाएं उपलब्ध होती हैं।

महाकवि दौलतराम ने श्रीपाल के जीवन की कथा की लोकप्रियता को देखकर ही संवत् १८२२ फागुण सुदी ११ को चरित काव्य के रूप में उसे छन्दोबद्ध किया। कवि ने इस काव्य को सोमसेन भट्टारक के श्रीपाल चरित के आधार पर बनाया है; जिसका उल्लेख स्वयं कवि ने इस प्रकार किया है—

संवत् अष्टादस तसु जांन, ऊपर बीस दोय फिर आन।
फागुण सुद इग्यार निस मांहि, कियो समापत उर हुलसाय ॥७५४॥
सोमसेन अनुसार ले, दौलतराम सुखदाय।
एह भाषा पूरन करी, सकल संघ सुखदाय ॥७५५॥

श्रीपाल चरित सतसई के रूप मे है; जिसमें ७५५ दोहा चौपई हैं। कवि ने इस काव्य मे भी कथा का धारावाहिक ही वर्णन किया है। बीच २ मे सर्ग एवं अध्यायो में उसे विभक्त नही किया। काव्य की भाषा सीधी एव सरल है। कवि ने उसमे काव्यत्व लाने का संभवतः कोई प्रयास नही किया फिर भी रचना में काव्यत्व स्थान २ पर उपलब्ध होता है।

सुनि श्रीपाल निसंकित होय, मन मांही इम चिंतित सोय।
देखे कहा कर्म करेय, मोनधारी तिनमें संचरेय ॥१८४॥
इनकू पट भूषण पहराय, कियो तिलक पूजे इन पाय।
फेरि चले मारन के काज, ल्याए जिहाज पासी सेठराज ॥१८५॥
कोटी भट अर रूप अपार, फिरि फहरे पट भूषण सार।
सीस तिलक सोभे इमराय, मानू जस लछमी वर आय ॥१८६॥

इस प्रकार समूचा ही काव्य सरल भाषा मे निबद्ध है। काव्य की वर्णन शैली एवं भाषा दोनो ही उत्तम हैं।

'श्रीपाल चरित' में भाग्य एवं पुरुषार्थ की लडाई मे भाग्य की विजय हुई है। श्रीपाल की रानी मैना सुन्दरी भाग्य पर प्रबल विश्वास रखती थी, जबकि उसका पिता पुरुषार्थ का समर्थक था। भाग्य को नीचा दिखाने के लिए उसने अपनी सुन्दर एव यौवनपूर्ण पुत्री 'मैना' का विवाह एक कोढी राजा के साथ कर दिया। पर भाग्य से उसका कुष्ठ रोग दूर होगया और उसे पति के रूप मे कोटिभट राजा प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् भी श्रीपाल के जीवन मे कितनी ही विपत्तिया आयी, लेकिन उन सभी विपत्तियो मे वह स्वर्ण के समान तप करके निकला। उसे अपना राज्य एव अन्य सभी सम्पदाएं यथावत् मिल गयी। लेकिन कुछ समय बाद श्रीपाल को ससार मे उदासीनता हो गई और उसने सपरिवार वैराग्यमय तप.साधना करके निर्वाण को प्राप्त किया।

७ चौबीस दण्डक भाषा :

यह महाकवि की लघु कृति[1] है। इसमे ५७ दोहा एव चौपई छन्द हैं। प्रस्तुत कृति में एक गति वाला जीव अन्य किस किस गति में जा सकता है—

---

१ महावीर भवन, जयपुर के संग्रह मे वेष्टन सं० १६६६ के गुटके मे संग्रहीत।

इसका वर्णन किया गया है। कवि ने अपने वर्ण्य-विषय को निम्नप्रकार प्रस्तुत किया है—

पहलौ दंडक नारक तनौ, भवनपति दस दंडक भनौ।
जौतिग वितर सुरग निवास, थावर पंच महादुखरास ॥७॥
विकलत्रय अरु नर तिरजंच, पंचेंद्री धारक परपंच।
एहे चौवीसौं दंडक कहे, अब सुनि इनमैं भेद जु लहे ॥

'तीर्थंकर' के माता-पिता मर कर किस गति में जाते हैं इसका कवि ने निम्न प्रकार वर्णन किया है—

तीर्थंकर के पिता प्रसिद्ध, सुरग जांय कै होहै सिद्ध।
माता सुरग लोक ही जाइ, आखरि सिवपुर वेग लहाय ॥

कवि ने पहिले सात नरकों में पैदा होने वाले जीवों का, फिर स्वर्गगति में जाने वाले देवों का, इसके पश्चात् पशु गति और फिर मनुष्य गति में उत्पन्न होने वाला जीव कम से कम किस गति में एवं अधिक से अधिक किस गति में (नरक, स्वर्ग एवं मोक्ष) जा सकता है—इसका वर्णन किया गया है—

ए चौवीसौं दंडक कहै, इनकुं त्यागि परम पद लहे।
इनमैं रुलै सजग कौ जीव, इनतैं रहै तसु त्रिभुवन पीव ॥५२॥

कवि ने इस कृति के रचनाकाल का कोई उल्लेख नहीं किया है। केवल अन्त में अपना नामोल्लेख करके ही कृति को समाप्त कर दिया है—

अंतैकरन जो सुधि होय, जिन धरमी अभिराम।
थोरी बुद्धिप्रकास तैं, भाषी दौलतराम ॥

८ सिद्ध पूजाष्टक :

यह कवि की पूजा विषयक कृति है; जिसमें सिद्ध परमेष्ठियों की पूजा लिखी गयी है। इसमें १२ पद्य हैं। यह पूजाष्टक विना आह्वानन के है तथा प्रारम्भ में मंगलाचरण के पश्चात् जल चढ़ाने का पद्य है, इसी तरह अन्त में अर्घ के पश्चात् जयमाला नहीं दी गयी है। अन्तिम दो पद्य

---

१. महावीर भवन, जयपुर के संग्रह में गुटका। सं० १०८१ वे. सं. १५५० में संग्रहीत।

निम्न प्रकार है—

अरघ करौ उछाह सौं, नमौं आठौं अंग निवाय।
आनन्द दौलतराम कौ, प्रभु भौ भौ होइ सहाय ॥११॥

च्यार ग्यान वर नहि देखैं, हम देखै सरधावंत।
जांनै मांनै अनुभवै, तुम राखौ पास महंत ॥ अर्घम् ॥

६ पुण्यास्रव कथाकोश :

कथाओं के माध्यम से जन सामान्य में नैतिकता एवं सदाचार को प्रोत्साहन देना देश की प्राचीन परम्परा रही है। इस दृष्टि से लिखा हुआ कथा-साहित्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी आदि सभी भाषाओं में मिलता है। जैनाचार्यों ने अपने कथा साहित्य में नैतिकता एवं सदाचार के प्रयास को सर्वाधिक प्रमुखता दी और देश की प्रायः सभी भाषाओं में विशाल कथा साहित्य का निर्माण किया। पुण्यास्रव कथाकोश, व्रतकथाकोश, आराधना कथाकोश, कथाकोश आदि नामों से उन्होंने सैंकड़ों कथाएं लिखी और बालकों, युवकों एवं पाठकों में स्वाध्याय के प्रति गहरी रुचि पैदा की तथा बुराइयों से बचते हुये शिष्ट जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी।

'पुण्यास्रव कथाकोश' को सर्व प्रथम मुमुक्षु रामचन्द्र ने संस्कृत भाषा में लिखा था। इसकी कथाएं जैन समाज में काफी लोकप्रिय हैं। कविवर दौलतराम ने इन्हीं कथाओं को हिन्दी भाषा में निबद्ध करके हिन्दी भाषा भाषी पाठकों के लिए एक महान् अवसर उपस्थित किया। कथाकोश में ५६ कथाएं हैं। मुमुक्षु रामचन्द्र के कथाकोश की प्रशंसा कवि ने निम्न प्रकार है—

पुण्यास्रव की कथा रसाल, पूजादिक अधिकार विसाल।
षट् अधिकार परम उतकिष्ट, छप्पन कथा मध्य है मिष्ट ॥१॥

आदिपुराणदिक जे कह्या, अभिप्राय तसु यामैं लह्या।
आचारिज जिम करि अभिलाष, लिखी कथा संस्कृत भाष ॥२॥

× × ×

रामचन्द्र मुनि अति परवीन, कथा कोश पुण्यास्रव कीन।
तिनकी कहा बडाई करौ, वंदन करि निज उर में धरौ ॥१०॥

दौलतराम युवावस्था में पदार्पण करते ही किसी कार्य वश जब आगरा गये, तब उन्होंने वहां पुण्यास्रव कथाकोश सुना। सुनकर उन्हें अत्यधिक आनन्द आया और अत्यधिक रुचि के साथ उन्होंने इसकी भाषा टीका लिखी। काव्य-रचना में पांव रखने का उनका यह प्रथम अवसर था। इसलिए उन्होंने अत्यधिक ध्यान पूर्वक इसकी भाषा टीका लिखी और संवत् १७७७ भादवा सुदी पंचमी शुक्रवार के शुभ मुहूर्त में उन्होंने इसे पूर्ण करके हिन्दी भाषा भाषी पाठकों को भेंट किया।

संवत् सत्रहसै विख्यात, ता परि धरि सत्तरि अरु सात।
भादव मास कृष्ण पक्ष जांनि, तिथि पांचै परवी परवांनि ।।२८।।

रवि सुत कौ पहिलौ दिन जोय, अर सुर गुरु के पीछे होय।
वारैह गनि लीज्यो सही, ता दिन समापत लहौ ।।२९।।

रचना का प्रमुख कारण :

कवि के आगरा जाने पर उन्हें वहां संचालित अध्यात्म शैली में जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस शैली के जिन प्रमुख सदस्यों के नाम दौलतराम ने गिनाये हैं; उसमें सर्व प्रथम कविवर भूधरदास का उल्लेख आता है, जिनके लिए लिखा गया है कि वे स्याहगंज में रहते थे तथा जो जिन स्मरण एवं पूजन में लगे रहते थे और अपने अशुभ कर्मों को नष्ट किया करते थे। ये कवि भूधरदास वे ही है जिन्होंने संवत् १७८९ में आगरा में 'पार्श्वपुराण' की रचना की थी और जिन्होंने अपने आपका "आगरे में बाल बुद्धि भूधर खण्डेलवाल" पंक्तियों से परिचय दिया था। इनके अतिरिक्त सदानन्द, अमरपाल, बिहारीलाल, फतेचन्द, चतुर्भुज आदि उस शैली के प्रमुख सदस्य थे, जो वहां आकर परस्पर चरचा किया करते थे।

भूधरदास जिनधर्मी ठीक, रहै स्याहगंज मैं तहकीक।
जिन सुमरिन पूजा परवीन, दिन प्रति करै असुभ कौ छीन ।।१५।।

हेमराज साधर्मी भलै, जिन वच मांनि असुभ दल मलै।
अध्यातम चरचा निति करै, प्रभु के चरन सदा उर धरै ।।१६।।

सदानन्द है आनन्द मई, जिन मत की आज्ञा तिह लही।
अमरपाल भी यामैं लिख्यो, परमागम को रस तिन चख्यो ।।१७।।

लाल विहारी हैं नित मुनै, जिन आगम को नीकै मुनै।
फतेचंद है रोचक जीके, चरचा करै हरष धरि जीकै ।।१८।।

त्रभुज साधरमी जोर, धुकी भकति जसु प्रभु की वोर।
मिलैं आगरै कारन पाय, चरचा करै परस्पर आय ।।१९।।

दौलतराम को मुख्य प्रेरणा ऋषभदास से प्राप्त हुई थी और उनके उपदेशो से धर्म के प्रति श्रद्धा एव साहित्य निर्माण के प्रति रुचि पैदा हुई थी।

रिषभदास उपदेस सौं, हमैं भई परतीति।
मिथ्यातम को त्यागि कैं, लगी धर्म सौं प्रीति ।।२१।।

पुण्यास्रव कथाकोश मे जिन कथाओ का वर्णन है, जो सभी मुमुक्षु रामचन्द्र के पुण्यास्रव, कथाकोश के आधार पर है। सभी कथाओ को सरस एव रोचक शैली मे लिखा गया है। कथाओं की तालिका निम्न प्रकार है —

१ जिनपूजाव्रतकथा, २ महाराक्षस विद्याधर कथा, ३. मेढक की कथा, ४. भरत कथा, ५ रत्नशेखर चक्रवर्ती कथा, ६. करकण्डु कथा, ७ वज्रदन्त चक्रवर्ती कथा, ८ श्रेणिक कथा, ९ पंच नमस्कार मन्त्र कथा, १० महाबली कथा, ११ भामण्डल कथा, १२ यमराजा की कथा, १३ सुकुमाल मुनि कथा, १४. भीम केवली कथा, १५ चाण्डाल कूकरी कथा, १६ सुकौशल मुनि कथा, १७ कुबेर प्रियाश्रेष्ठी कथा, १८ मेघकुमार कथा, १९. सीता जी की कथा, २० रानी प्रभावती कथा २१ राजा वज्रकरण कथा, २२ बाई नीली कथा, २३ चाण्डाल कथा, २४ नागकुमार कथा, २५ भविष्यदत्त कथा, २६ अशोक रोहिणी कथा, २७ नन्दिमित्र कथा, २८ जामवन्ती कथा, २९ ललितघण्टा कथा, ३० अर्जुन चाण्डाल कथा, ३१ दान कथा (महाराज श्रेणिक सम्बन्धी), ३२ जयकुमार सुलोचना कथा, ३३ वज्रजंघ कथा, ३४ सुकेत श्रेष्ठी कथा, ३५ सागर चक्रवर्ती कथा, ३६ नलनील कथा ३७ लवकुश कथा, ३८ दशरथ कथा, ३९ भामण्डल कथा, ४० सुसीमा कथा, ४१ गंधारी कथा, ४२ गौरी कथा ४३ पद्मावती कथा ४४ धन्यकुमार कथा, ४५ अंग नीला ब्राह्मण कथा, ४६ पान सेमरी कथा, ४७ अकलंक देव कथा, ४८ समन्तभद्र कथा, ४९ सनतकुमार चक्रवर्ती कथा ५० सजय

मुनि कथा, ५१. मधुपिंगल कथा, ५२. नागश्रत कथा, ५३. ब्राह्मण चक्रवर्ती कथा, ५४. अजन चोर कथा, ५५. अनन्तमती कथा, ५६. उदयन कथा, ५७. रेवती रानी कथा, ५८. सेठ सुदर्शन कथा, ५६. वारिषेण मुनि कथा, ६०. विष्णुकुमार मुनि कथा, ६१. वज्रकुमार कथा, ६२. प्रीतिंकर कथा, ६३. सत्यभामा पूर्वभव कथा, ६४. श्रीपाल चरित्र कथा, ६५. जम्बू स्वामी कथा।

उक्त ५६ कथाओं के अतिरिक्त ६ लघु कथाएं प्रमुख कथाओं में आ गयी हैं जिससे उनकी संख्या ६५ हो गयी है। इस प्रकार पुण्यास्रव कथाकोश—कथाओं का वास्तव में कोश ग्रन्थ है। जिनसे जीवन निर्माण की शिक्षा मिलती है। प्रत्येक कथा कहने का मुख्य उद्देश्य कथा नायक के जीवन का वर्णन करने के अतिरिक्त नैतिकता, सदाचार और अच्छे कार्यों को करने की परम्परा को जन्म देना है। साथ ही ये कथाएं कर्म सिद्धान्त का भी मुख्य रूप से प्रतिपादन करती हैं। जैसा हम करेंगे—उसी के अनुसार हमें परिणाम भुगतना पड़ेगा। इन सभी कथाओं के नायक भारतीय संस्कृति के महापुरुष हैं और इन्हीं महापुरुषों की जीवन गाथा से ये कथाएं अधिक निखर पड़ी हैं। कुछ कथाएं ऐसी भी हैं, जिन पर कितने ही काव्य, चरित एवं रास लिखे गये हैं और उन्हीं को कवि ने संक्षिप्त रूप में इस कृति में प्रस्तुत किया है। ऐसी कथाओं में—नागकुमार, भविष्यदत्त, श्रेणिक, जयकुमार सुलोचना, धन्यकुमार, प्रीतिंकर, श्रीपाल एवं जम्बूस्वामी की कथाओं के नाम लिये जा सकते हैं।

लोकप्रियता

पुण्यास्रव कथाकोश समस्त जैन समाज में अत्यधिक प्रिय कृति के रूप में समादृत है। ऐसा कोई शास्त्र भण्डार नहीं जिसमें इस कथाकोश की दो चार प्रतियां नहीं मिलती हो। स्वाध्याय प्रेमियों के लिए इस कथाकोश का स्वाध्याय आवश्यक माना जाता है। हिन्दी में इससे पूर्व इतकी बड़ी कृति किसी भी विद्वान् के द्वारा नहीं लिखी गयी थी। इसलिए देश के अहिन्दी भाषा भाषी प्रदेशों में भी इस कथाकोश का स्वाध्याय करने के लिए सैंकड़ों हजारों व्यक्तियों ने हिन्दी सीखी। कवि की इस कृति का चारों ओर जोरदार स्वागत हुआ और देश के कोने-कोने में इसका स्वाध्याय होने लगा। जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में इसकी एक प्रति संवत् १७८८ मंगसिर बुदी १३ रविवार के दिन की लिखी हुई है। जिसकी प्रतिलिपि अहमदाबाद में हुई थी। इस पाण्डुलिपि से स्पष्ट है कि गुजरात में भी इसकी प्रतियां लिखी जाती थी और उनको अन्यत्र भेजा जाता था।

भाषा :

कवि द्वारा पुण्यास्रव कथाकोश की रचना करीव २५० वर्ष पूर्व आगरा में की गयी थी। उस समय आगरा जिला व्रज भाषा का केन्द्र था लेकिन वहां खड़ी बोली का प्रचलन एवं लेखन भी प्रारम्भ हो गया था। इस कथा कोश की भाषा खड़ी बोली के अधिक निकट है। यहां इस कथाकोश में से चार उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं जिससे पाठकगण इस कृति की भाषा का अच्छी तरह पता लगा सकेंगे।

एक दिन राजा सिकार जाय छो। राह में आताप नाम जोग धरयां जिसोधर मुनिराज देख्या। कोप करि राणी का गुर जाणि कुकरा छोड्या। वे स्वान नमस्कार करि जाय बैठ्या। जब देखि मुनि का गला मैं मुवो सांप नाख्यो तीहीं विरियां सातवां नरक की आव बांधी। चौथे दिन राति नैं रांणी नैं कहीं। तब चेलना कही महा पाप कीयौ। आतमां नैं नरक में बोयौ। या कहि महा दुःख कीयौ। राजा कहीं रांणी वै कांई दूरि करिवा सकै न छै चेलणां कही महामुनि बोन करै। अर यौ वे करै तौ ये मुनि नहीं। पत्र सं० २१

× × ×

नागकुमार जी पंचमी को उपवास लीयौ। अर विधि पूछी सो साधक कहे छै। फागुण कै महीनैं तथा आषाढ़ काती कै महीनैं सुदी ४ नैं पवित्र होय पूजाकरि शास्त्र सुणि। साधु नैं विधिपूर्वक आहार के पाछे आप एकाभुक्त कीजै। ठामि आत पाणि ले सकल संसारी धन्धो छोडि धरम कथा करि दिन पूरो कीजै। रात्रि जागरण कीज्ये। प्रभु का चरणां चित्त लगाजै। पाछै उपवास कै दिन च्यार प्रकार आहार कषाय की त्याग करि विषय स्यौं पाइ सुख होय। पत्र सं० ६५

× × ×

जंबूद्वीप पूर्व विदेह पुष्कालवती देस। पुंडरीकणी नगरी विषै राजा वसुपाल श्रीपाल। तिह नगरी बाहरी सिवंकर उद्यान विषै भीम केवली की समोसरण आयौ। तठैं खचरवती सुभगा रतिसेना सुसीमा ए चारि विंतरी आप केवली नैं पूछती हुई। हे प्रभु म्हां की पति कौण हवेसी।

पत्र सं० ११८

× × ×

"मालव देस उजेणी नगरी विषै राजा अपराजित रांणी विजयां त्यांकै विनयश्री नाम पुत्री हुई। हस्तिशीर्षपुर कै राजा हरिषेण परणीं। एक दिन दंपति वरदत्त मुनि नैं आहारदान देता हूवा। पाछै बहुत कालताई राज्य कीयौ। एक रात सज्यागृह विषै विनयश्री पति सहित सूती थी। अगर का धूप का धूम करि राजा रांणी मृत्यु प्राप्ति हूवा। मध्य भोगभूमि विषै उपज्या। तहां सौ विनयश्री को जीव चंद्रमा कै देवी हुई।" पत्र सं० १५७

इन उदाहरणों को पढ़ने से ज्ञात होगा कि कवि की भाषा कितनी निखरी हुई है। यद्यपि कवि के राजस्थान निवासी होने से इस पर ढूंढारी भाषा का भी कुछ प्रभाव है तथा कहीं-कहीं ब्रज भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है लेकिन फिर भी कथाकोश को हम खड़ी बोली की ही कृति कहेंगे। इसमें विभिन्न नामों का पूर्णतः शुद्ध रूप में व्यवहार किया गया है। इनका तद्भव रूपान्तर नहीं किया गया है। ऐसे सभी शब्द तत्सम हैं—वर्द्धमान स्वामी, बारिषेण, चम्पापुरी, भरतक्षेत्र, रामदत्ता, जम्बूद्वीप मान्यखेट, पात्रकेसरी, अकलंक, निःकलंक। भाषा टीका में 'में" के स्थान पर "विषै" शब्द का प्रयोग हुआ है। ज्यांकै (१३५) उतरया (१३४) देवालागौ (१३३)। लेकिन निम्न उद्धरणों से ज्ञात होगा कि कवि ने कथा कोश को कितनी परिष्कृत भाषा में निबद्ध किया था।

(क) "पीतकर जी स्त्री सहित नाव में बैठा तब सर्यों वस्तु भूलि आया था। सो वै कलेवा निमित्त नगर में आया तब नागदत्त पापी जिहाज चलाय दीनी।" पृ० सं० २०७

(ख) एक दिन रात्रिवंत सिद्धकूट चैताले वंदवानै गयो थो सो हरिचन्द मुनिकनैं धर्म श्रवण करि दिगम्बर हुवो। सो एक दिन वन विषै गुफा में कायोत्सर्ग तिष्टै थो। दुर्धर तप करि अत्यन्त क्षीण सरीर देख्यो।।

पृ० सं० १६०

(ग) "अर सातसैं अंग रक्षक जो कोढ़ पीड़ित था सो निरोग हुआ। अहो सिद्धचक्र की पूजा करिवा थकी उत्कृष्ट फल नैं कल्पवृक्ष की वेलि की नांई ई भव में दे छै।" पृ० सं० २१७

अभी तक 'पुण्यास्रव कथाकोश का' भाषा की दृष्टि से अध्ययन नहीं हुआ है जिसकी अत्यधिक आवश्यकता है। हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास में इस कृति का पर्याप्त महत्व है। दि० जैन साहित्य में इससे पूर्व इतनी

बडी भाषा टीका किसी विद्वान् द्वारा नही लिखी गई थी। इसलिए कवि के इस प्रथम प्रयास का सब ओर से मर्मस्पर्शी स्वागत हुआ और देश के एक छोर से दूसरे छोर तक इसका स्वाध्याय होने लगा। यहा तक यह ग्रन्थ गुजरात एव महाराष्ट्र मे भी लोकप्रिय बन गया। जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र-भण्डार मे इसकी एक प्रति सवत् १७८८ मंगसिर सुदी १३ रविवार के दिन की लिखी हुई है, जिसकी प्रतिलिपि अहमदाबाद मे हुई थी। इसलिए इस ग्रन्थ की भाषा ऐसी है जो तत्कालीन समाज मे अत्यधिक लोकप्रिय रही।

१० पद्म पुराण :

पुण्यास्रव कथा कोश की रचना के पश्चात् कवि की यह दूसरी विशाल गद्य कृति है, जिसने अपने युग मे तुलसीदास की रामायण के समान समाज मे जैन रामायण के रूप मे सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त की थी। इसका घर-घर एव मन्दिर-मन्दिर मे स्वाध्याय होने लगा था और जिसकी लोकप्रियता ने उस समय के सभी रिकार्ड तोड दिये थे। जयपुर आने के पश्चात् कवि ने इसकी रचना कब से प्रारम्भ की इसका तो इसमे कोई उल्लेख नही मिलता, लेकिन इसकी रचना समाप्ति काल सं १८२३ है। उस समय महा पं० टोडरमल की गद्यात्मक कृतियो की ख्याति उच्च स्तर तक पहु च चुकी थी तथा जनता की इच्छा भी पद्यात्मक कृति की अपेक्षा गद्यात्मक कृति को अधिक मनोयोग से पढने की थी। इसलिए दौलतराम ने भी गद्यात्मक कृतियो की ओर विशेष ध्यान दिया।

'पद्म पुराण' कवि की मूल कृति नही है। किन्तु १०-११वी शताब्दी के महाकवि रविषेणाचार्य की सस्कृत कृति का हिन्दी भाषानुवाद है। लेकिन कवि का लेखन शैली एव भाषा पर पूर्ण अधिकार होने से यह मानो उसकी स्वय की मूल रचना के समान लगती है। इसमे १२३ पर्व है जिनमे जैन धर्म के अनुसार "रामकथा" का विस्तार से वर्णन हुआ है। भगवान महावीर के समवसरण मे जाने के पश्चात् राजा श्रेणिक राम कथा को सुनने की इच्छा करते हैं और तब भगवान महावीर रामकथा पर विशद व्याख्यान करते हैं। राम कथा के साथ मे राक्षस वशी एव वानर वशी विद्याधरो का, रावण का जन्म, अंजना सुन्दरी और पवनजय का विवाह वर्णन, हनुमान जन्म कथा, रावण को चक्र प्राप्ति एव राज्याभिषेक और इसके पश्चात् रामकथा की पुन वर्णन किया गया है। जिसमे राम लक्ष्मण को ऋद्धि-प्राप्त, राम को लोकापवाद की चिन्ता, सीता का वन मे विलाप, सीता को लव-कुश की

प्राप्ति, एवं उनका लक्ष्मण के साथ युद्ध, सीता की अग्नि परीक्षा आदि विविध वर्णनों के पश्चात् राम निर्वाण प्राप्त करते हैं और इस प्रकार अत्यधिक सुन्दर ढंग से तथा भक्ति पूर्वक राम कथा की समाप्ति होती है। इस कथा के प्रारम्भ में कवि ने निम्न शब्दों में राम के जीवन की प्रशंसा की है—

'कैसे हैं श्रीराम, लक्ष्मी कर अलिंगित है हृदय जिनका और प्रफुल्लित है मुख रूपी कमल जिनका, महापुण्याधिकारी हैं, महाबुद्धिमान हैं गुणन के मन्दिर और उदार हैं चरित्र जिनका, केवल ज्ञान के ही गम्य है।"

महाकवि दौलतराम ने "पद्म पुराण" को हिन्दी गद्य में लिख कर के स्वाध्याय प्रेमियों के लिए महान् अवसर प्रदान किया। यही नहीं हिन्दी के पाठकों को गद्य में राम कथा देकर एक नवीन परम्परा को जन्म दिया। अब तक जितनी भी रामायण लिखी गयी थीं वे सब पद्य में ही थीं। महाकवि विमलसूरि ने प्राकृत में, महाकवि स्वयंभू ने अपभ्रंश में, महाकवि वाल्मीकि ने संस्कृत में, रविषेणाचार्य ने संस्कृत में जो रामकथाएं लिखी, वे सब पद्य में ही थी; लेकिन दौलतराम ने इसे गद्य में निबद्ध कर उसकी लोकप्रियता में वृद्धि की तथा उसे जैन समाज के घर-घर में पढ़ी जाने वाली कथा बना दी।

"पद्म पुराण" की भाषा खड़ी बोली के रूप में है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इसे ढूंढारी भाषा के रूप में स्वीकार किया है लेकिन वास्तव में कवि ने ब्रजभाषा प्रभावित खड़ी बोली के रूप में इसे प्रस्तुत किया है। जो अत्यधिक मनोरम एवं हृदयग्राही बन गई है। कहीं तो इसकी भाषा इतनी आलंकारिक बन पड़ी है, मानों वह हिन्दी की कादम्बरी हो। कवि ने इसे विभिन्न उपमानों से संवारा है।

"पद्म पुराण" की रचना में साधर्मी भाई रायमल्ल का अनुरोध विशेष रूप से उल्लेखनीय है; जिसका स्वयं कवि ने निम्न प्रकार से उल्लेख किया है—

रायमल साधर्मी एक, जाके घर में स्वपर विवेक।
दयावंत गुणवंत सुजान, पर उपकारी परम निधान॥
दौलतराम सु ताको मित्र, तासों भाष्यो वचन पवित्र।
पद्मपुराण महाशुभ ग्रंथ, तामें लोक शिखर को पंथ॥
भाषा रूप होय जो येह, बहुजन वांच करै अति नेह।
ताके वचन हिये में धार, भाषा कीनी मति अनुसार॥

११. आदिपुराण :

'आदि पुराण' संस्कृत मे आचार्य जिनसेन की रचना है। काव्य, भाषा एवं वर्णन की दृष्टि से यह रचना संस्कृत भाषा की अनूठी कृति है। इसमें ४७ पर्व है तथा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और उनके पुत्र सम्राट भरत तथा महायोगी बाहुबलि आदि का जीवन विस्तृत रूप से वर्णित है। जैन समाज का यह एक अत्यधिक प्रिय ग्रन्थ है; जिसका स्वाध्याय करना प्रत्येक श्रावक एवं श्राविक के लिए आवश्यक माना है। त्रेसठ शलाका महापुरुषों का जीवन जानने के लिए यह एक महत्वपूर्ण कृति है। ऐसे पुराण की भाषा टीका का कार्य महाकवि दौलतराम ने अपने हाथ मे लेकर हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए महान् उपकार का कार्य किया। कवि ने जब संस्कृत मे रचित आदि-पुराण का स्वाध्याय एवं प्रवचन किया तो सभी श्रोताओ ने विशेषतः दीवान रतनचन्द ने उनसे इस पुराण की भाषा-टीका करने का अनुरोध किया। कुछ अन्य श्रोताओं एवं स्वाध्याय प्रेमियो ने भी इसके लिए आग्रह किया। उस समय जयपुर मे स्वाध्याय का अत्यधिक प्रभाव था। महाविद्वान टोडरमल का प्रभाव चरमोत्कर्ष पर था। इसलिए कवि को तत्कालीन स्वाध्याय प्रेमियों के आग्रह को मानना ही पड़ा और उन्होने इसकी भाषा टीका प्रारम्भ करदी। सवत् १८२३ मे पद्मपुराण की रचना के ठीक ७ मास पश्चात् ही उन्होने यह एक और विशाल गद्य कृति पूर्ण की।

अठारह सै सम्वता ता ऊपर चौवोस।
कृष्ण पक्ष आसोज की पुष्य नक्षत्र वरीश।
शुक्रवार एदादशी पूरण भयो ये ग्रंथ॥

इस ग्रन्थ के निर्माण की प्रेरणा में पं० टोडरमल के दोनों पुत्र हरिचन्द एवं गुमानीराम तथा देवीदास गोधा का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। कवि ने भाषा टीका के प्रारम्भ में अपनी जिस रूप में लघुता प्रगट की है। वह उल्लेखनीय है।

ता परि भाषा वचनिका, भाषूं मैं मति मन्द।
लेहु सुधारि सूर्पडिता, ज्ञान रूप निर्द्वन्द॥
महिमा महापुराण की, मो पै कही न जाय।
जानै श्री जिन केवली, तीन भुवन के राय।
निज मति माफिक कछू मैं, भाषूं भाषा रूप।
सुनहु भव्यजन भावधरि, भजहु भजहु जिन रूप॥

आदि पुराण विशाल काव्य ग्रन्थ है लेकिन कवि ने भाषा टीका की एक ही शैली को अपनाया है। आचार्य जिनसेन के क्लिष्ट शब्दों का अर्थ जितने सरल, बोधगम्य शब्दों में किया है; वह कवि के संस्कृत एवं हिन्दी के अगाध ज्ञान का द्योतक है। पुराण की सरस शैली होने के कारण इसका शीघ्र ही सारे देश में प्रचार हो गया और सैंकड़ों स्वाध्याय प्रेमियों ने इस ग्रन्थ के स्वाध्याय करने के लिए ही हिन्दी भाषा सीखी।

१२ पुरुषार्थ सिद्धयुपाय :

यह आचार्य अमृतचन्द्र की कृति है जो संस्कृत भाषा में निबद्ध है। यह ग्रन्थ लघुकाय होने पर भी गागर में सागर का कार्य करता है। आचार्य अमृतचन्द्र ने इसमें जैन धर्म की तात्विक गम्भीरता का वर्णन किया है। जो उनके महापाण्डित्य का दिग्दर्शन कराता है। इसकी हिन्दी टीका जयपुर के ही महापण्डित टोडरमल ने प्रारम्भ की थी, जो महाकवि दौलतराम के समकालीन विद्वान थे। लेकिन उनका असमय में ही स्वर्गवास होने के कारण वे इसे पूरी नहीं कर पाये। तब तत्कालीन जयपुर समाज के प्रमुख दीवान रतनचन्द्र ने दौलतराम से उसे पूर्ण करने का अनुरोध किया। दौलतराम ने संवत १८२७ में मंगसिर सुदी २ के पावन दिन इस ग्रन्थ की भाषा टीका पूर्ण की—

तासु रतन दीवान ने, कही प्रीत कर एह
करिये टीका पूरण; उरधर धर्म सनेह।
तब टीका पूरण करी, भाषा रूप निधान।
कुशल होय चहु संघ को, लहे जीव निज ज्ञान।
सुखी होय राजा प्रजा, होय धर्म की वृद्धि।
मिटै दौष दुख जगत के, पावे भविजन सिद्धि।
अट्ठारहसै ऊपरे संवत सत्ताईस मास
मार्गशिर ऋतु शिशिर दोयज रजनीश॥

इसके पहले कवि ने पं० टोडरमल्ल के नाम का उल्लेख किया है। जिन्होंने उक्त टीका का प्रारम्भ किया था और उसका कितना भाग शेष रह गया था, इसका भी उल्लेख किया है—

अमृतचन्द्र मुनीन्द्रकृत ग्रंथ श्रावकाचार,
अध्यात्म रूपी महा आर्या छन्द जु सार।
पुरुषारथ की सिद्धि को जामैं परम उपाय।
जाहि सुनत भव भ्रम मिटै, आतम तत्त्व लखाय।

भाषा टीका ता ऊपर कीनी टोडरमल्ल
मुनिवर कृत बाकी रही ताके माहि अचल्ल।
ये तो परभव कूं गये जयपुर नगर मझार।
सब साधर्मी तब कियो मन मैं यह विचार।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में २२८ श्लोक हैं। इनमें अहिंसा धर्म पर विशेष जोर दिया है। इसके अतिरिक्त पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत के वर्णन के अतिरिक्त रात्रि भोजन का जबरदस्त निषेध किया गया है।

महाकवि दौलतराम ने ग्रन्थ के उत्तर भाग की भाषा टीका लिखी! तथा अत्यधिक सरल शब्दों में उसे प्रस्तुत किया।

"विवेकी पुरुष जो हैं जो गृहस्थ अवस्था में भी संसार से विरक्त होकर सदा ही मोक्ष मार्ग में उद्यमी रहते हैं और वे ही अवसर पाकर शीघ्र ही मुनि पद को धारण करके सकल परिग्रह को त्याग कर निर्विकल्प ध्यान में आरूढ़ होकर पूर्ण रत्नत्रय को मानकर संसार के भ्रमण का उच्छेद कर शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति करते हैं"

महापंडित टोडरमल की भाषा ब्रज भाषा को लिए हुए हैं, जब कि दौलतराम की भाषा खड़ी बोली का रूप लिए हुए है। संस्कृत के दुरूह शब्दों को भी उन्होंने सरल हिन्दी शब्दों में समझा दिया है। कवि ने पहिले श्लोकों की टीका, विषय का स्पष्टीकरण के लिए अर्थ तथा फिर भावार्थ दिया है।

१३. हरिवंश पुराण :

हरिवंश पुराण 'पद्मपुराण' की राम कथा के समान ही कृष्ण कथा है; जिसमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन–चरित के वर्णन के प्रसंग में पूरे महाभारत के पात्रों के जीवन का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। जैनाचार्यों द्वारा पद्मपुराण के समान अपभ्रंश में स्वयंभू का रिट्ठणेमिचरिउ तथा संस्कृत में जिनसेनाचार्य का 'हरिवंश पुराण' इस विषय की प्रमुख रचनाएँ है। दौलतराम ने ऐसे विशाल पुराण की हिन्दी गद्य टीका करके हिन्दी की लोक प्रियता में श्रीवृद्धि का एक और प्रयास किया और उसमें वह पूर्णतः सफल भी रहा। 'हरिवंश पुराण' का स्वाध्याय घर–घर होने लगा और अहिन्दी क्षेत्रों में भी उसके स्वाध्याय का प्रचार हो गया। राजस्थान के कितने ही भण्डारों में हरिवंश पुराण की एक से अधिक प्रतियां उपलब्ध होती हैं जो उसके स्वाध्याय के प्रचार को द्योतित करती है।

इस कृति का रचनाकाल संवत् १८२९ चैत्र सुदी पूर्णिमा है। इसकी रचना जयपुर नगर में सम्पन्न हुई थी। यह कवि की अन्तिम कृति है। इसकी रचना की घटना भी बड़ी विचित्र है। कवि के परम मित्र भाई रायमल्ल जब मालवा गये, तब उन्होंने वहां की समाज को उनके द्वारा रचित आदिपुराण एवं पद्मपुराण की भाषा–टीका को पढ़कर सुनायीं। एक तो भाई रायमल्ल की प्रवचन शैली, दूसरी इन कृतियों की सरसता—दोनों ने वहां के श्रावकगणों को आनन्दित कर दिया। उन्होंने इसे बार-बार सुनने की इच्छा प्रकट की। इसका फल हुआ कि इन दोनों ग्रन्थों का मालवा में बराबर स्वाध्याय होने लगा। पर श्रावकों की प्यास और भी जागृत हुई। उन्होंने भाई रायमल्ल से पद्मपुराण के समान हरिवंश पुराण की भी भाषा टीका लिखवाने की प्रार्थना की क्योंकि वे श्रावक दौलतराम की विद्वत्ता से परिचित हो चुके थे। भाई रायमल्ल को उनकी बात माननी पड़ी। उन्होंने वहीं से दौलतराम को पत्र लिखा कि हरिवंश पुराण की भी ऐसी भाषा टीका लिखो, जो सब को अच्छी लगे। पत्र लेकर आने वाले साधर्मी भाईयों ने भी महाकवि से भाषा–टीका करने का अनुरोध किया और शीघ्र ही इस महान कार्य को पूरा करने की प्रार्थना की; क्योंकि शरीर का पता नहीं कि वह कब धोखा दे जावे। वैसे भी दौलतराम उस समय काफी वृद्ध हो चुके थे। जयपुर के तत्कालीन दीवान रतनचन्द और उनके भाई बिरधीचन्द ने भी पंडितजी से आग्रह किया। फिर क्या था—महाकवि इस कार्य में जुट गये। उन्होंने दो शीघ्रलिपि लेखक सीताराम एवं सवाईराम को अपने साथ लिया। और शीघ्र ही संवत् १८२९ की चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के शुभ दिन इस महान ग्रन्थ की भाषा को पूर्ण कर दिया इस ग्रन्थ के समापन के साथ ही मानों कविकी साहित्य—साधना सफल हो गयी। यह उनके जीवन की अन्तिम कृति थी। इसे प्राप्त कर समूचा साहित्यिक जगत निहाल हो गया। १९ हजार श्लोक प्रमाण गद्य कृति लिखना कितनी असाधारण साहित्यिक उपलब्धि थी! इसका अनुमान भी करना आसान कार्य नहीं है।[1]

भयो कौन विधि ग्रन्थ यह, भाषा रूप विशाल।
सो तुम सुनहु महामती, जिन आज्ञा प्रतिपाल ॥१॥

जम्बूद्वीप मंझार यह, भरतक्षेत्र शुभ थान।
ताके आरिज खंड में, मध्य देश परवान ॥२॥

वस्तुतः हरिवंश पुराण हिन्दी भाषा की महान निधि है। कवि ने जिस तरह आलंकारिक भाषा में कथा का वर्णन किया है, वह आज से २०० वर्ष पूर्व किसी विद्वान के सामर्थ्य के बाहर था। पद्यकार तो बहुत थे; पर गद्य मे और वह भी ललित भाषा में कथा का वर्णन प्रत्येक के वश की बात नही थी।

नगर सवाई जयपुरा, जहां वसे बहु न्यात।
राजा पृथिवीसिंह है, जो कछुवाहा जाति ॥३॥

शिरोभाग राजन में, ढूंढाहड पति सोय।
ताके मंत्री श्रावका, और न्यातहु होय ॥४॥

बहुत वसैं जैनी जहां, जीव दया व्रत पाल।
पूजा करे जिनेंद्र की, आगम सुने रसाल ॥५॥

बहुत जीव श्रद्धावती, चरचा मांहि सुजान।
ग्रन्थ अध्यातम आगमा, सुने बहुत धर कान ॥६॥

संस्कृत भाषामई, भये जु आदि पुराण।
पद्मपुराणादिक बहुरि, भाषा भये निधान ॥७॥

रायमल्ल के रुचि बहुत, व्रत क्रिया परवीन।
गये देश मालव विषै, जिन शासन लवलीन ॥८॥

तहा सुनाये ग्रन्थ उन, भाषा आदिपुराण।
पद्मपुराणादिक तथा, तिन को कियो बखान ॥९॥

सब भाई राजी भये, सुनकर भाषा रूप।
तिनके रुचि अति ही बढी, धारी कथा अनूप ॥१०॥

रायमल्ल से सबन ने, करी प्रार्थना येह।
करवाओ हरिवंश की, भाषा बहु गुण गेह ११

आगे दौलतराम ने, टोका भाषा मांहि।
करी सो ही यह अब करे, यामें संशय नाँहि ॥१२॥

तब भेजी पत्री यहां, रायमल्ल धर भाव।
लिखो जु साधर्मीन की, करण धर्म प्रभाव ॥१३॥

तथा जु दौलतराम को, मल्ल लिखी वह बात।
करहु भाषा हरिवंश की, सबके चित्त सुहात ॥१४॥
सब सार्धमिन मिले जब, श्री चैत्यालय मांहि।
भाषी दौलतराम से, जिन श्रुतसे अघ जांहि ॥१५॥
जिनवानी रस अमृता, जा सम सुधा न और।
जाकर भव भरमण मिटे, पावे निश्चल ठौर ॥१६॥
यामैं विलम्ब न कीजिये, करो शीघ्र ही येह।
सफल होहि जाकर सही, उत्तम मिनखा देह ॥१७॥
रत्नचंद दीवान एक, भूपत के परधान।
तिन के भाई शुभ मती, विधीचंद परवान ॥१८॥
सो दौलत के मित्र अति, भये जु उद्यम रूप।
तिन के आग्रहते यह, टीका भई अनूप ॥१९॥
दौलत ने अति भाव धर, भाषा कीनौ ग्रन्थ।
महा शान्त रस को भरो, सुगम मुक्ति को पंथ ॥२०॥
सीताराम जो लेखका, और सवाईराम।
तिन पर लिखवायो जु यह, बहुत कथा को धाम ॥२१॥
ताकर सुधरे भव यह, अरु पावे शुभ लोक।
होये अति आनन्द अरु, कबहु न उपजे शोक ॥२२॥
सुखी होह राजा प्रजा, होहु सकल दुःख दूर।
बढी धर्म जिनदेव को, जाहि बखाने सूर ॥२३॥
ख्याति खंडेल जु वाल है, गोत्र कासलीवाल।
सुत है आनन्द राम को, वसवे वास विशाल ॥२४॥
सेवक नरपति को सही नामसु दौलतराम।
ताने यह भाषा करी, जपकर जिनवर नाम ॥२५॥
अट्ठारह सौ संवता, तापर धर गुणतीस।
वार शुक्र पून्यो तिथी, चैत मास रवि ईस ॥२६॥

पुराण के कितने ही प्रसंग है; जिनमें महाकवि ने अपनी सारी लेखनी को उंडेल कर रख दिया है। वर्णन शैली सरस एवं आकर्षक है। कवि ने प्रारम्भ में ग्रन्थ की उत्पत्ति तथा उसके पश्चात अनुक्रमणिका दी है जो हरिवंश पुराण का संक्षिप्त सार है। मात्र इस सार को ही पढ़कर कोई भी इस महान् कृति के विषय वर्णन से परिचित हो सकता है। अन्त मे स्वय महाकवि ने भी "यह हरिवंश पुराण का विभाग सक्षेप कर रहा है।"—लिख कर अपने प्रतिपादित ग्रन्थ के विषय मे जानकारी दे दी है। यहाँ एक गद्यांश प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे हरिवंश पुराण की गद्य शैली का अनुमान हो सकेगा—

भावार्थ:—माता ही स्वामिनी है अर निद्रा ही सखी है सो इस निद्रा सखी ने ऐसी जानी जो मोह कर मेरी स्वामिनी आनन्द रूप शुभ स्वप्न के दर्शन को प्राप्त भई सो मैं कृतार्थ भई। सेवक का यही धर्म है जो स्वामी को आनन्द उपजावे इसी कर सेवक को कृतार्थता है ।।७६।। माता तो आप ही जाग्रतरूप है परन्तु दिक्कुमारी जगाने के अर्थ माता को ऐसे शुभ शब्द कहती भई सो ये शब्द केवल मंगल ही के अर्थ है। अर माता तो जाग्रतरूप है देवी कहा शब्द कहे सो सुनो। हे विवुधार्थ कहिये माता ? तू कैसी है जाना है पदार्थों का रहस्य जिसने सो तू विवुध्यास्व कहिये जाग। हे विवर्धने ! कहिये वृद्धि रूपिणी अब तू सबको आनन्द वढा। अर हे देवी ! विजय लक्ष्मी की स्वामिनी देवी पूर्ण हैं मनोरथ जिसके सो तू विजय के भाव को प्राप्त हो ।।१७।। हे माता ! अब यह चन्द्रमा तुम्हारे मुखरूप चन्द्र को देख कर लज्जावंत होय प्रभा रहित होय गया है तुम्हारा मुख निष्कलक अर गुण कर कहिये गुणों की खान अर चन्द्रमा दोषी कहिये रात्रि उसका करणहारा है उससे दोषकर अर कलंकी है ।।७६।। अर दीपों की ज्योति मंद भासे है सो मानो ये दीपक अपने प्रकाश को हसे हैं जो यह जिनेन्द्र के माता पिता का गृह नखों के उद्योत समान चांद सूर्य का प्रकाश नही यहां हम प्रकाश करें इस

ता दिन यह पूरण भया, श्री हरिवंश पुराण।
पढो सुनो अरु सरदहो, पंडित करो बखान ।।२७।।
श्री हरिवंश पुराण की, भाषा सुनहु सुजान।
सकल ग्रन्थ संख्या भई, उन्नीस सहस प्रमाण ।।२८।।

दो हजार अरु चार सौ, ता ऊपर पंचास।
संवत वीर जिनेशका, कियो ग्रन्थ परकास ।।२९।।

समान मूढता कहां ॥८०॥ अब संध्या दुष्ट की मित्रता समान निष्फल डिगती भासे है कैसी है दुष्ट की मित्रता अत्यन्त सुख विषै है राग जिसका अर क्षण मात्र में राग मिट जाय है अर यह सांझ भी प्रथम तो राग कहिये आरक्तरूप भासे है। अर क्षण मात्र में आरक्तता मिट जाय है ॥ भावार्थ—अब संध्या की भी ललाई मिटे है ॥८१॥ अब सूर्य की प्रभा सज्जन की मित्रता समान बढ़े है कैसी है मित्रता अवन्ध्य कहिये सफल है अर्थ जिस विषे अर कैसी है सूर्य की प्रभा सफल है सकल कार्य जिस विषे ॥८२॥

१४ परमात्म प्रकाश भाषा—

"परमात्म प्रकाश" आचार्य योगीन्दु की (६-७वीं शती) कृति है जिसकी रचना का प्रमुख उद्देश्य प्रभाकर भट्ट के उद्बोधन के लिए रहा था। अपभ्रंश भाषा में निबद्ध यह ग्रंथ अध्यात्म विषय का प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है। यह दोहा छन्द में लिखा गया है, जिसकी संख्या ३४५ है। इसके दो अधिकार है; जिनमें बहिरात्मा, अन्तरात्मा एवं परमात्मा के स्वरूप का वर्णन किया गया है। यह जैन साहित्य की एक लोकप्रिय कृति रही है।

महाकवि दौलतराम कासलीवाल ने इस पर हिन्दी में विस्तृत टीका लिखी; जो ६८६० श्लोक प्रमाण है; जैसा कि स्वयं कवि ने निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

'यह परमात्म प्रकाश ग्रन्थ का व्याख्यान प्रभाकर भट्ट के संबोधने अर्थि श्री योगिन्द्र देव नैं कीया था ता परि श्री ब्रह्मदेव नै संस्कृत टीका करी। श्री योगीन्द्राचार्य नै प्रभाकर भट्ट संबोधिवे कै अर्थि दोहा तीनसै तीयालीस कीए ता परि ब्रह्मदेव नैं संस्कृत टीका हजार पांच च्यारि ५००४ कीए ता परि दौलतराम नैं भाषा वचनिका का श्लोक अडसठिसैनिवे ६८६० संख्या प्रमाण कीए। श्री योगीन्द्राचार्य कृत मूल दोहा ब्रह्मदेवकृत संस्कृत टीका दौलतिराम कृत भाषा वचनिका पूर्ण भई ॥'

कवि ने अपनी भाषा टीका में विषय का प्रतिपादन अत्यधिक बुद्धिमत्ता पूर्ण किया है; जिससे प्रत्येक स्वाध्याय प्रेमी के वह समझ में आ सके। कवि ने इसकी भाषा कब लिखी इसका इसमें कोई उल्लेख नहीं किया किन्तु इस कृति को भी कवि ने उदयपुर रहते हुए ही लिखी थी ऐसा मालूम होता है। क्योंकि जयपुर आने के बे तो उन्होंने आदिपुराण पद्मपुराण एवं हरिवंश पुराण जैसे विशालकाय ग्रन्थों की रचना करने में संलग्न हो गये थे।

'परमात्म प्रकाश' कवि की उत्तम कृति है तथा तत्कालीन प्रचलित हिन्दी गद्य का सुन्दर रूप है।

१५ तत्त्वार्थ सूत्र टब्बा टीका—

'तत्त्वार्थ सूत्र' जैन सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने वाला सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ है। यह सूत्र रूप मे है और आचार्य उमास्वामी विरचित है। इसका रचनाकाल दूसरी-तीसरी शताब्दी माना जाता है। यह ग्रन्थ दोनो ही सम्प्रदायों मे समान रूप से समादृत है। इस पर संस्कृत मे कितनी ही टीकाएं उपलब्ध हैं और उनमे पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि (छठी शती) अकलकदेव का तत्त्वार्थराजवार्तिक (७७७–८३७) एव विद्यानन्द की श्लोकवार्तिक टीकाए (सं० ८१०) सर्वाधिक प्रसिद्ध एव लोकप्रिय है। हिन्दी मे भी कितनी ही टीकाए मिलती हैं।

कविवर दौलतराम ने इस पर टब्बा टीका लिखकर इसके स्वाध्याय के प्रचार मे अपना योगदान दिया। कवि ने अध्यायों के अन्त मे "इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्र ए दशमो अध्याय अर्थ सहित पूरो हुवो और अन्त मे इति उमास्वामि मुनि विरचित तत्त्वार्थ सूत्र टब्बा सहित समाप्ति"—इस प्रकार अपनी टीका का परिचय दिया है। अर्थ सूत्रो पर दिया गया है तथा कहीं-२ तो पर्याप्त रूप से विस्तृत बन गया है। इसकी एक पाण्डुलिपि श्री दि० जैन मन्दिर पाण्डे लूणकरण जी, जयपुर के शास्त्र भण्डार म सग्रहीत है। ग्रंथ की टब्बा टीका का एक उदाहरण देखिये—

"अपना पर का उपकार कै अर्थि अपना चित का देना सो दान है। तहा अपना पर का उपकार सो अनुग्रह कहिए सो अपना उपकार तो पुण्य का संचय होना है और पर का उपकार सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र की वृद्धि होना है सो इन अर्थनितै स्व कहिता धन ताका अतिसर्ग कहिए त्याग सो दान है।"

१६ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा टब्बा टीका[1]—

यह प्राकृत भाषा का अपूर्व ग्रन्थ है जिसमें बारह अनुप्रेक्षाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। दौलतराम ने इसी की हिन्दी मे टब्बा टीका लिखकर इसके स्वाध्याय के प्रचार को प्रोत्साहन दिया। कवि ने इसकी प्रशस्ति मे लिखा है कि कार्तिकेयानुप्रेक्षा की टब्बा टीका इन्द्रजीत के बोध कराने को लिए सवत् १८२६ की ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी के दिन पूर्ण की थी—

---

१. देखिये अनेकान्त,

सुखी होहु राजा प्रजा, सुखी होई चौसंग।
पावहु शिवपुर सज्जना, सो पद सदा अलंध।
इन्द्रजीत के कारनें, टवाजु बालाबोध।
भाष्यो दौलतराम ने, जाकर होय प्रबोध ।।

१७ वसुनन्दि श्रावकाचार भाषा—

आचार्य वसुनन्दि का श्रावकाचार प्राकृत भाषा का सुन्दर एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें श्रावकों के आचार धर्म का वर्णन किया गया है। महाकवि दौलतराम जब उदयपुर में थे, तभी उन्होने अपनी शास्त्र सभा में इस श्रावकाचार पर प्रवचन किया था। ग्रंथ प्राकृत में होने के कारण कवि के द्वारा समझाने पर एक बार तो समझ में आगया; लेकिन पुनः उसका स्वाध्याय कैसे किया जावे यह प्रश्न सभी के समक्ष आया। अन्त में शास्त्र सभा के प्रमुख श्रोताओं में सेठ वेलजी ने दौलतराम से निवेदन किया कि यदि इस ग्रंथ की टव्वा टीका हो जावे तो इसका स्वाध्याय करने में सभी को सुविधा होगी। वेलजी सेठ का अनुरोध सुनकर कवि इसकी टव्वा टीका करने को सहमत हो गये और उन्होंने शीघ्र ही अपने कार्य को समाप्त कर दिया।

अब तुम सुनहु भव्य इक बैंन, जा विधि टव्वा भयौ सुख दैंन
उदियापुर में कियो बखान, दौलतिराम आनन्द सुत जान।
वाच्यौ श्रावक व्रत विचार, वसुनन्दी गाथा अधिकार।
बोले सेठ वेलजी नाम, सुनि नृप मंत्री दौलतिराम।
टव्वा होय जो गाथा तनो, पुन्य उपजै जिसको घनौ।
सुनि के दौलति वेल सु बैन, मन धरि गायो मारग जैन।
नंदो विरधौ जिन मत सार, सुख पावो चउसंध अपार।
दौलति वेल कहो निज बोध, होहु होहु सबको प्रतिबोध।

टीका काफी विस्तृत हैं तथा भाषा एवं शैली की दृष्टि से वह काफी अच्छी है।

१८ सार चौबीसी

यह कवि की पद्यात्मक आध्यात्मिक कृति है जिसमें मानव जीवन का, जगत की गतिविधियों का, आत्म स्वभाव का एवं धार्मिक जीवन की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है। इसी के साथ एक रूपात्मक कथा का भी वर्णन मिलता है। एक बार जीवात्मा ने भवसागर से पार उतरने का उपाय अपने

सद्गुरु ने पूछा । इसके उत्तर में इन्होंने बतलाया कि मोह की सुता मायानारी भव जाल से निकलने में सबसे बड़ी बाधा है । इसलिये अपने हृदय से मोह पर विजय प्राप्त करो । कुमित्रों की आज्ञा को मत मानो और ज्ञान को अपना प्रधानमंत्री बनाओ । सुबुद्धि को अपनी स्त्री नियुक्त करो । विवेक को पुरोहित और अपनी आत्मशक्ति को ही सेनापति रखो । भगवद् भक्ति के सहारे मोह पर विजय प्राप्त करो तभी जाकर इस भव से मुक्ति मिल सकती है । इसके पश्चात् इस जगत में कौन कौन से पदार्थ सर्वोत्तम हैं उनका भी इसमे वर्णन मिलता है ।

धेनु नहीं सुर धेनु सी, रस अमृत सो नांहि
उदधि न क्षीरोदधि जिसे, पंडित लोक कहांहि ॥८७॥
ऐरावत से गज नहीं, सुरपुर से पुर नांहि ।
वन नहीं सुरवन सारिखो, क्रीडा रूप लखाहि ॥

७८ वें पद्य मे १०३ पद्यों तक इसी प्रकार का वर्णन मिलता है । पूरी रचना १०४ पद्यों मे समाप्त होती है । इसमे रचना काल नही दिया हुआ है किन्तु अन्तिम पद्य में अपने नामोल्लेख के साथ ही रचना समाप्त करदी गयी है ।

सार समुच्चै यह कह्यौ, गुर आज्ञा परवांन ।
आनंद सुत दोलति नै, भजि करि श्रीभगवान ॥१०४॥

इस ग्रंथ की एक प्रतिलिपि जयपुर के वर्धाचन्द जी मन्दिर के शास्त्र भण्डार में १०८२ संख्या वाले एक गुटके में संग्रहीत है ।

कवि की विचारधारा

महाकवि दौलतराम साहित्य की किसी एक धारा मे नही बहे ! और न वे किसी परम्परा से ही बधे रहे ! उन्होने अपना जीवन कथाकोष लिखने से प्रारम्भ किया और अन्त हरिवंश पुराण से किया ! ५२ वर्ष के लम्बे साहित्यिक जीवन मे कितने ही उतार चढ़ाव आये लेकिन उनकी साहित्यिक धारा अजस्र बहती रही । वे रीति कालीन कवि थे ! मुगल बादशाहो एवं राजा महाराजाओ की शान शौकत का युग था ! आमेर के दरबारी कवि बिहारी की सतसई ने तत्कालीन जनता पर जादू जैसा कार्य किया था ! चारों ओर मस्ती थी ! रंगीन एवं शृगार रस से ओत प्रोत कविताएं थी और उनमे डूबा हुआ था सारा हिन्दी समाज ! लेकिन दौलतराम राज दरबार मे रहते हुए हुए भी इस क्षणिक मस्ती से दूर थे ! वे जानते थे कि यह जीवन निर्माण का मार्ग नही है ! सरागता जीवन की सच्चाई तक नही पहुँचने देती

जबकि वीतरागता उसके अन्तिम छोर तक पहुँचने में सहायक होती है ! इसलिए कवि ने "पुण्यास्रव कथाकोष" की रचना करके पाठकों को अध्ययन का एक नवीन मार्ग बतलाया ! ये सब ऐसी कथाएं है जिनमें जीवन निर्माण का मार्ग मिलता है ! सरसता- एवं धारा प्रवाहिकता में ये कथाएं किसी से कम नहीं ! भाव, भाषा एवं शैली सभी दृष्टियों से उत्तम ! आगरा की गलियों में अध्यात्म सैलियों में तथा मन्दिर एवं स्वाध्याय शालाओं में इन कथाओं को पढ़ा जाने लगा और इस एक ही कृति में दौलतराम लोकप्रियता के शिखर पर जा बैठे ।

उदयपुर में जब वे पहुँचे तो वहाँ भी राजाशाही थी । कामिनी एवं सुरा का दौर दौरा था ! और कवि को इन राजदरबारों में भी उपस्थित रहना पड़ता था ! जयपुर महाराजकुमार के संरक्षक जो ठहरे ! लेकिन यहाँ भी कवि ने अपने आपको कमल के समान निलिप्त रखा ?

उदयपुर जाने के पश्चात् उनका साहित्यिक जीवन निखर गया । आगरा में उन्हें वहाँ की अध्यात्मक शैली में रहने का अवसर मिला । और भूधरदास जैसे महाकवि से साहित्यिक विचार विमर्श करने का सौभाग्य मिला । आगरा से पुनः जयपुर आने के पश्चात् भट्टारकों एवं तत्कालीन विद्वानों के विचारों को जानने एवं समझने का समय प्राप्त हुआ । और जब उदयपुर पहुँचे तो उन्हें एकान्त में अपने विचारों का मन्थन करने का खूब समय मिला । वहाँ आगरा एवं जयपुर जैसा न तो साहित्यिक वातावरण था और न सामाजिक संगठन ही । यहाँ उन्होंने अपने योग्य वातावरण का स्वयं को निर्माण करना पड़ा । एवं शास्त्र प्रवचन के माध्यम से अपने विचारों को प्रसारित करने का सुन्दर अवसर भी मिला । इसलिये उदयपुर जाने के पश्चात् उन्होंने समाज को सर्वप्रथम "क्रियाकोश" दिया । इसके आधार पर हम कवि की विचार-धारा का अच्छी तरह अध्ययन कर सकते हैं। कवि ने इसमें गृहस्थों के लिए आवश्यक त्रेपन क्रियाओं का जिस सुन्दरता एवं विशदता से वर्णन किया वह कवि के विचारों का द्योतक है । इसमें सभी क्रियाओं को जीवन विकास के लिये आवश्यक माना है और उनके पालन करने के महत्त्व पर प्रकाश डाला है । आरम्भ में उसने उन कार्यों का नामोल्लेख किया है जिनके सम्पादन से मानव जीवन सामान्यतया प्रशस्त बनता है तथा जिन्हें हम श्रावक मात्र के लक्षण कह सकते हैं । ऐसे शुभ कार्यों के नाम निम्न प्रकार हैं—

मोक्ष मारगी मुनिवरा, जिनकी सेव करेय ।
सो श्रावक धनि धन्य है जिन मारग चित देय ॥६०॥

जिन मंदिर जो शुभ रचै, अरचै जिनवर देव।
जिन पूजा नित प्रति करै, धरै साधु की सेव ।।६१।।
करै प्रतिष्ठा परम जो, जान्या करै सुजान।
जिन सासन के ग्रन्थ शुभ, लिखवावै मतिवान ।।६२।।
चउ विधि सघ तणी सदा, सेवा धारै वीर।
पर उपगारी सर्व की, पीडा हरै जु वीर ।।६३।।

उक्त पक्तियाँ श्रावक के लिए प्रशस्त मार्ग को निर्देशित करने वाली है। इससे यह स्पष्ट है कि वे इन सभी क्रियाओ के पालन करने के पक्ष मे थे जिन्हे पूर्वाचार्यों ने प्रतिपादित की थी। उनकी दृष्टि से जीवन निर्माण के लिये आचार की प्रधानता है चारित्र की विशेषता है। और त्रेपन क्रियाओ के सम्बन्ध मे उन्होने इसी दृष्टि से विस्तृत प्रकाश डाला है। कवि ने अपनी इस कृति के माध्यम से उदयपुर के सामाजिक वातावरण को स्वच्छ बनाया और श्रावको को इन क्रियाओ को जीवन मे उतारने पर विशेष जोर दिया। कवि इससे पुरातन पथी नही बना किन्तु उसने जीवन मे चारित्र की, सयम की, अहिंसा, सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य एव परिग्रहपरिमाण आदि व्रतो की पुन प्रतिष्ठापना की। षट् कर्मों के परिपालन को जीवन का आवश्यक अंग बतलाया तथा मद्य मास एव मधु को मानव मात्र के लिये त्याज्य बतलाया। कवि के इन विचारो से समाज मे नव चेतना का सचार हुआ। इसके लिये उन्होन शास्त्र प्रवचन प्रारम्भ किया और उसे अपने विचारो को लोगो तक पहुँचाने का माध्यम बनाया।

भक्त कवि के रूप मे

उदयपुर मे रहते हुए कवि ने अध्यात्म बारहखडी की रचना की। यह कवि की सबसे विशाल पद्यात्मक काव्य कृति है जिसे हम अध्यात्म एव भक्ति का महाकाव्य भी कह सकते हैं। इस कृति मे वे भक्त कवि के रूप म हमारे सामने उपस्थित हुए है। बारहखडी के रूप मे उन्होने जिस रूप मे भक्ति एव अध्यात्म की गगा बहायी है वह हिन्दी काव्य जगत् मे अनोखी है। उसने सर्व प्रथम निम्न शब्दो मे निर्ग्रन्थ जिनवर का स्तवन किया है—

और न दूजो देवता और न दूजो पथ।
शिव विरचि जगनाथ है, जो जिनवर निग्रथ ।।१०।।

---

१ अध्यात्म बारहखडी पद्य सख्या ४८

वर्णन भी भक्ति का एक अग है। अक्षय तृतीया पर्व के महात्म्य को कवि ने निम्न शब्दों में प्रस्तुत किया है—

वैशाखी शुक्ला जु तीज अक्षय भई
रिषभ कियो जा दिवस पारनौ विधि ठई।
बरष एक उपवास धारि यम धार जो।
मारग प्रगट कियो जु मोह मद मार जो ।।५१।।
घटियां श्रेंदस पुनीत कियो जाने सही।
सो मानुज भवतारि किय सिव ईसही।
ईस रसाहारी जु देवपति देव जो
अषैतीज सम करहु करी हम सेव जो ।।५२।।

गद्य निर्माता के रूप में

दौलतराम हिन्दी गद्य साहित्य के प्रथम विद्वान् थे जिन्होंने अपनी चार वृहद् गद्य रचनाएं साहित्य प्रगत को भेंट की। उनकी प्रथम कृति पुण्यास्त्रवकथा-कोश संवत् १७७७ (सन् १७२०) की रचना है। उस समय तक हिन्दी कृतियों का अर्थ पद्यात्मक कृतियों में लिया जाता था। यद्यपि डा० जयकिशन शर्मा ने व्रज भाषा गद्य का पूर्ण विकास एवं उसका उत्कर्ष काल संवत् १५०० से १७०० तक स्वीकार किया है और इस काल की कुछ रचनाओं के नाम भी गिनाए हैं।[१] इन कृतियों में या तो लघु गद्य रचनाएं हैं या फिर वचनिका, टीका संज्ञक रचनाएं हैं लेकिन कविवर दौलतराम ने हिन्दी गद्य में विशालकाय कृतियां प्रस्तुत की और हिन्दी पाठकों में हिन्दी के प्रति गहरी रुचि पैदा की। कवि ने जिस धारावाहिक शैली को अपनाया आगे चलकर सारे जैन कवि ही नहीं किन्तु जैनेतर कवियों ने भी उसी शैली का अनुकरण किया। यद्यपि दौलतराम की चारों ही रचनाओं को हम अनुदित रचनायें कह सकते हैं ये केवल अनुवाद अथवा वचनिका मात्र नहीं हैं किन्तु इनमें मौलिकता का सर्वत्र सद्भाव है जिससे ये

१ हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां पृष्ठ संख्या ५१२–१३

दौलतराम का हिन्दी गद्य संस्कृत परिनिष्ठ है। वह अपभ्रंस, प्राकृत तथा देशी शब्दों से मुक्त है। वह ब्रज भाषा का गद्य है लेकिन फिर भी उसमें खड़ी बोली का पूर्व रूप देखा जा सकता है।

कृतियाँ स्वतन्त्र गद्य काव्यों के रूप में सामने आती हैं। पुण्यास्त्रव कथाकोश के अतिरिक्त आदिपुराण, पद्मपुराण एवं हरिवंश पुराण जैसी कृतियों की भाषा एवं शैली की दृष्टि से कवि ने उन्हें सर्वथा मौलिकता प्रदान की और जो अनुवाद में सूना सूना सा नजर आता था उसे अपनी कृतियों में जड से उखाड फेंका। यही कारण हैं कि उनका पद्मपुराण एवं हरिवंशपुराण का स्वाध्याय गत २०० वर्षों में जितना हुआ उतना स्वाध्याय संभवतः अन्य किसी रचना का नहीं हुआ होगा। बल्कि महाकवि के पूर्व तक हिन्दी गद्य रचनाओं के प्रति पाठकों का जो उपेक्षा भाव था उसे भी दौलतराम ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दूर किया। इसके अतिरिक्त अब तक भाषा टीका लिखने की जो परम्परा विद्यमान थी वह भी धीरे धीरे समाप्त हो गयी और विद्वान हिन्दी गद्य में लिखने की ओर झुकने लगे। २०वीं शताब्दी में हिन्दी गद्य या उपन्यास, कहानी एवं निबन्धों के रूप में जो विकास हुआ उसमें भी वही भावना काम करती है जिस भावना से दौलतराम को अपनी कृतियां का माध्यम हिन्दी गद्य को स्वीकार किया था। 'खेतनि विषै नाना प्रकार के खेत हरे हो रहे हैं अर सरोवरनि में कमल फूल रहे हैं अर वृक्ष महारमणीक दीखे है' यह शैली आज से २०० वर्ष से भी अधिक समय की है। गत दो सौ वर्ष में हिन्दी भाषा के प्रयोग में कितना परिवर्तन आया है इससे हम परिचित हैं लेकिन संवत १८२३ में भी हिन्दी गद्य में लिखने वाले इतने उच्चस्तरीय विद्वान थे यह देखकर हमे आश्चर्य होता है। और उनकी विद्वत्ता एवं लिखने की शैली को देखकर के ही मालवा समाज ने हरिवंशपुराण को हिन्दी गद्य मे निर्माण करने की और प्रार्थना करवायी।

"उनकी वार्त्ता पुर ग्रामादि विषै प्रसिद्ध भई सो वर्मन भूपति बलदेव के समाचार सुन कर संका मान नाना प्रकार के आयुध धर उपसर्ग करने को आये। तब सिद्धार्थ देव उनको ऐसी माया दिखाई वे जहां देखे तहां दीखे।"

उपर्युक्त उदाहरण हरिवंशपुराण का है। कवि ने इस पुराण में बड़े बड़े वाक्य लिखे हैं क्रियाओं का प्रयोग कम से कम किया है और उसके प्रयोग से स्थान पर अर्द्ध क्रिया पदों का प्रयोग करके वाक्य को लम्बा करता गया है। लेकिन फिर भी भाषा एवं शैली के आकर्षण में कोई कमी नहीं आती है और पाठक उसे सहज भाव से पढ़ता है। हिन्दी गद्य के विकास की दृष्टि से दौलतराम के इन कृतियों का अत्यधिक महत्त्व है इसलिये इनका समीक्षात्मक अध्ययन आवश्यक हैं।

सब वामें वह सबनि में, वह हैं सब ते भिन्न ।
वा तें सब ही भिन्न है वह भिन्नो च अभिन्न ।।

कवि के शब्दों में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश जिन स्वरूप है इसलिये उसने परमात्मा की निम्न शब्दों में भक्ति की है—

तुही जिनेश संकरो, सुखंकरो प्रजापती ।
तुही हिरण्य गर्भ को, अगर्भ को धरापती ।।

वह परमात्मा अनन्त गुणात्मक है । अनंत सुख एवं वीर्य का धारी है । उसके समान वही है और दूसरा कोइ भी नहीं है । तेरी समता तू ही सामी, तो सौ और न अन्तरयामी" कह कर वह प्रभु का स्तवन करता है और अपने "संकल्पा अर सकल विकल्पा, मेरे मेटि जु देव अकल्पा" की याचना की है । कवि का प्रभु अमरेश्वर द्वारा पूजित है । सूर्य एवं चन्द्रमा जिनकी सेवा करते हैं । चारों निकायों के देवों द्वारा पूजित है । जिन सहस्रनाम में जिस प्रकार भगवान जिन देव के १००८ नामों का गुणानुवाद किया है उसी प्रकार इस बारहखडी में उसने उसी रूप में जिनदेव का स्तवन किया है । उसने भगवान से कर्म रूपी कलंक को हटाने की प्रार्थना की है । वास्तव में तो जो अरहंत सिद्ध आदि पंच परमेष्ठियों का स्तवन करता है उसके स्वतः ही माया एवं मोह दूर हो जाते हैं । एक स्थान पर उसने कहा है जब किसी भक्त को भव सागर से तारा है तो इन पंच परमेष्ठियों की भक्ति ने ही उसे तारा है अन्य ने किसी ने नहीं । क्योंकि वह सब देवों का भी देव है—

जब तारै जब तू ही तारै, तो बिनु और न कर्म निवारै ।
सब देवनि को तू ही देवा, सब करि पूजति एक अभेवा ।

कवि ने उन सभी महापुरुषों का, भक्तों का, आचार्यों एवं साधुओं का नामोल्लेख किया है जिन्होंने जिनेन्द्र भक्ति से भव संकटों से मुक्ति प्राप्त की है क्योंकि जिनेश्वर सब के रक्षक हैं और सब भेदाभेद से विमुख हैं ।[१] णमोकार मंत्र की महिमा का भी कवि ने वर्णन किया है । इस मंत्र की महिमा से मरणासन्न श्वान ने भी देवगति प्राप्त की थी ।

मरत सुन्यौ स्वाने चितधारी, अघते रहित भयो शुभकारी ।

लेकिन कवि की भक्ति एवं भक्त की कामना दोनों ही उल्लेखनीय है । वह प्रभु

१. अध्यात्म बारहखडी—पृष्ठ संख्या १६२ पद्य संख्या १६६

से सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये निवेदन नहीं करता। स्त्री, सन्तान, स्वास्थ्य एवं सुन्दर शरीर की वह अपने प्रभु से वांछा नहीं करता और न वह कोट्याधीश बनने की याचना करता। वह तो उनसे स्वयं परमात्मा स्वरूप को प्राप्त करने की प्रार्थना करता है क्योंकि उसने इन्हीं के जाल में पड़ कर जन्म जन्मन्तरों मे महान दुःख पाये हैं जिनका वर्णन करना भी कठिन है।[1] वह स्वयं तीर्थंकर बनने की कामना करता है इसलिये वह निम्न शब्दों में स्तवन करता है—

अतिसै जग के दासन मांगे, दे अतिशय चउतीस जु मोहि
अष्ट जु प्रातिहारहू देहो, केवल दै विनऊं कह तोहि।
देहु अनंत चतुष्टय निश्चै, तू अतिशय तन चिदघन होहि।
अतिशय प्रातिहार नहि देतो, अनंत चुतुष्टय दे प्रभु सोहि ॥४०६॥

भगवान जिनेन्द्र देव जहां विराजते है उसका वर्णन भी कवि ने भक्ति वश किया है। वहां केवल आत्म सुख ही आत्म सुख है। जगत् का अन्य कोई व्यापार नही। न असि का व्यापार है और न वहाँ मसि का कार्य है। व्यापार एवं वणिज वहां नहीं होता। निर्वाण होने के पश्चात उस लोक में न पठन पाठन की आवश्यकता है और न गुरु शिष्य का भेद है वहां यह आत्मा शुद्ध स्वरूप में निवास करती हैं। मोह द्रोह एवं अन्य वैभाविक क्रियाओं को वहाँ कोई स्थान नही है और ऐसे ही स्थान प्राप्ति के लिये वह अपने प्रभु से प्रार्थना करता है।[2]

इस प्रकार सम्पूर्ण अध्यात्म बारहखडी भक्ति भावना से ओत प्रोत है। कवि ने इसमें अपना हृदय खोल कर रख दिया है और जितना भी उसे शाब्दिक ज्ञान था उसे उसने अपने भावों में उतारा है। भक्ति एवं स्तवन में कवि ने जैन सिद्धान्त का भी अच्छा वर्णन किया है क्योंकि जिन भगवान भी उन्ही सिद्धान्त मय है। यही नही वर्ष भर के प्रमुख पर्वो के महात्म्य का भी इसी प्रसंग मे वर्णन कर दिया है। क्योंकि इन पर्वों का महात्म्य भी तो इनके जीवन की किसी घटना का कारण है। और उनके जीवन की घटनाओं का सांगोपांग

१. सो मेरो मेटो जगनाथा, निज परणति को देहु साथा।
पर परणति तें मैं दुख पायो, आप विसारि जु जन्म गवायो ॥२४०॥
२. अध्यात्म बारहखडी—पद्य संख्या ४३० पृष्ठ संख्या २४१.

समकालीन शासक, विद्वान् एवं श्रावक

१ महाराजा सवाई जयसिंह : (सन् १७०१ से १७४३)

महाराजा सवाई जयसिंह जयपुर राज्य के योग्यतम शासक थे। वीरता, शौर्य्य एवं सूझ-बूझ के लिए अपने समय में देहली दरबार में अत्यधिक लोकप्रिय थे। वे सन् १७०१ में आमेर की गद्दी पर बैठे, लेकिन जब उन्होंने आमेर को अपने राज्य के लिए बहुत छोटा नगर पाया तो सन् १७२७ में जयपुर नगर को बसाया[1]। इस नगर को महाराजा ने जिस वैज्ञानिक ढंग से बसाया उससे उनकी कीर्ति विश्व में फैल गयी। तत्कालीन जैन कवि बख्तराम साह ने अपने बुद्धिविलास में इसका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

कूरम सवाई जयस्यंघ भूप सिरोमनि,
सुजस प्रताप जाको जगत में छायौ है।
करन-सौ दानी पांडवन-सौ कृपांनी महा,
मांनी मरजाद मेर रांम-सौ सुहायौ है॥

महाराजा सवाई जयसिंह ने एक लम्बे समय तक राज्य पर शासन किया अपने राज्य की सीमाओं में अत्यधिक वृद्धि की।

शासकीय गुणों के अतिरिक्त महाराजा साहित्य, संस्कृति तथा कला के विशेष प्रेमी थे। विद्वानों एवं कलाकारों को वे खूब संरक्षण प्रदान करते थे। महाकवि दौलतराम का इनसे प्रथम साक्षात्कार कब हुआ—इसका तो कोई उल्लेख नहीं मिलता; लेकिन महाकवि ने सर्वप्रथम अपने 'त्रेपनक्रियाकोश' में (सं० १७९५) अपने आपको जयसिंह का अनुचर एवं जयसिंह के सुत (महाराज कुमार) का मंत्री के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके पश्चात् जब तक महाराजा जीवित रहे तब तक महाकवि उनकी सेवा में रहे।

---

1. सोहै अंबावतिकी दक्षिण दिसि सांगानेरि,
दोऊ बीचि सहर अनौपम बसायौ है।
नांम ताकौ धर्यौ है, सवाई जयपुर।
मांनौं सुरनि हीं मिलि सुरपुर-सौ रचायो है॥६८॥

महाराजा जयसिंह यद्यपि वैष्णव धर्मानुयायी थे, लेकिन जैनधर्म, साहित्य तथा सस्कृति से उनका विशेष प्रेम था और उनके शासन काल मे पूरे राज्य मे नये-नये जैन मन्दिरो का निर्माण होता रहा। जयपुर नगर मे भी उन्होने दो चौकडिया (मोदीखाना एव घाट दरवाजा) विशेष रूप से जैनो को वसने के लिए प्रदान की। उनके शासन मे जयपुर नगर मे जिस भारी संख्या मे विशाल एवं कलापूर्ण जैन मन्दिरो का निर्माण हुआ, वह उनकी जैन धर्म के प्रति अनुराग का द्योतक है। कर्नल टॉड ने अपने ग्रन्थ "राजस्थान" मे यह भी लिखा है कि इस राजा को जैन धर्म के सिद्धान्तो का अच्छा ज्ञान था और उनकी विद्या बुद्धि के कारण भी वह जैनो का काफी सम्मान एवं आदर करता था।[1] इनके शासनकाल मे सैकडो ग्रन्थो की प्रतिलिपिया की गई और उनको देश के विभिन्न भण्डारो मे विराजमान किया गया। श्रीमहावीरजी क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग की ओर से प्रकाशित ग्रन्थ सूचियो (५ भाग) एव प्रशस्ति सग्रह मे ऐसे सैकडो ग्रन्थो का उल्लेख आया है, जिनकी प्रतिलिपि जयपुर में तथा राज्य के विभिन्न नगरो में हुई थी।

इनके शासनकाल मे सवत् १७५८, १७६१, १७६३, १७६६, १७७२, १७७३, १७७७, १७७९, १७९१ १७९६ आदि मे प्रतिष्ठापित मूर्तिया एव यन्त्रराज राजस्थान के विभिन्न नगरो मे उपलब्ध होते है। सबसे बडी प्रतिष्ठा इनके शासनकाल मे बासखोह (जयपुर) नगर में हुई थी, जिसे आमेर गादी के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ने करवायी थी। इस सवत् की मूर्तिया जयपुर एव राजस्थान के विभिन्न नगरो के मन्दिरो मे विराजमान है।

महाराजा जयसिंह के समय मे आमेर, सागानेर एव जयपुर मे कितने ही विद्वान् हुए, जिनमें अजयराज पाटनी, खुशालचन्द काला, नमीचन्द, दीपचद कासलीवाल एव किशनसिंह के नाम उल्लेखनीय है। इन विद्वानो ने तत्कालीन शासन की भूरि भूरि प्रशसा की है।

२ महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह (१७४३–१७५०)

महाराजा सवाई जयसिंह के पश्चात् महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठे। यद्यपि ये अधिक दिनो तक शासन नही कर सके, लेकिन जितने वर्षो तक जीवित रहे, अत्यधिक कुशलता से शासन किया। इनके राज्य में अधिकाशत शान्ति रही। कविवर वख्तराम ने इनके शासन की

---

१ एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान—पृ० २९७

निम्न शब्दों में प्रशंसा की है—

बहुत वर्ष लौं राज किय, श्री जयस्यंध अवनीप ।
जिनकै पटि वैठे स्वदिनि, ईश्वरस्यंध महीप ।।१७०।।
तिनकी दांन कृपांन को, जय जस करत अपार ।
जिन सौं जंग जुरे तिन्है, करि छांडे पतझार ।।१७१।।

महाकवि दौलतराम ने इनके शासनकाल का अपनी कृतियों में उल्लेख नहीं किया है; क्योंकि उस समय वे महाराज कुमार माधोसिंह की सेवा में उदयपुर रहते थे ।

महाराजा सवाई ईश्वरीसिंह को इमारतें बनाने का बड़ा शौक था और ईश्वर लाट (सरगासूली) उन्हीं के समय में बनायी गयी थी ।

३ महाराजा सवाई माधोसिंह : (१७५०–१७६७)

महाकवि दौलतराम महाराज कुमार माधोसिंह के मंत्री होकर उदयपुर गये थे और जब तक माधोसिंह जयपुर के शासक नहीं बने, तब तक वे मंत्री के रूप में उदयपुर में ही रहे । महाराजा सवाई माधोसिंह के शासनकाल में राज्य का काफी विस्तार हुआ और रणथम्भौर का प्रसिद्ध किला जयपुर राज्य को आसानी से प्राप्त हो गया । बख्तराम साह ने इनके सम्बन्ध में जो कवित्त लिखे हैं वे निम्न प्रकार है—

दोहा : बहुरि पाटि बैठे नृपति, रांमपुर तैं आय ।
भाई माधवस्यंघजू, दुरजन कौं दुखदाय ।।१७३।।

कवित्त : जिन रामपुर मैं करी निज चाकरी,
सो धरि राखी विचारि हिये ।
फिरि पाय कें राज ढुंढाहर कौ,
सु नऊं निधि के सुख आंनि लिये ।।
भनि 'राम' कृपातें भले ही भलै,
अमरेस के से जिनु दांन दिये ।
हरि ऐक सुदामां निवाज्यो कहूं,
नृप माधव केई सुदामां किये ।।१७४।।

सोरठा : दिये दिवाये दांन, जस प्रगट्यो दसहूं दिसनि ।
उवें जगत परिभांन, राज कियो यम मुलक परि ।।१७५।।
आगे नृपति अनंत, जतन किये आयो न गढ़ ।
रणथम्भौर महंत, सो माधव सहजें लह्यौ ।।१७६।।

कवित्त : ऐसी मौज कढत सवाई माधवेस कर,
सुवरन-झर ज्यौं प्रवाह नदी नद के ।
मांन-वंस भांन जयसाहि कै समांन स्यांम,
हरत गुमांन निज दांन सौं धनद के ।।
मोती अनहद के जराऊ साज सदके,
कर द्वार रदके अनाथ दीन दरदके ।
जीन जम्बूनदके तुरंग करी-कदके,
मतंग मंति मद के कढत सदा सदके ।।१७७।।

सोरठा : चढी फौज करि कोप, भिरि भागे जट्टा प्रबल ।
नई चढी यह वोप, कछवाहन की तेग को ।।१७८।।

लेकिन महाराजा पुरोहितों से अधिक प्रभावित थे । एक बार उन्होंने अपना सारा राज्य ही श्याम तिवारी को सौंप दिया; जिसने जैनों पर अनेक जुल्म ढाये । मन्दिरों को लूटा गया और मूर्तियो को तोड डाला गया । लेकिन महाराजा ने सदैव जैनो का पक्ष लिया । जब उन्हें श्याम तिवारी द्वारा किये गये अत्याचारों का पता चला तो उसे उन्होने तत्काल अपने नगर से निकाल दिया और राज्य मे साम्प्रदायिक सद्भाव को पुन: उत्पन्न किया । महापण्डित टोडरमल ने अपनी अधिकांश रचनायें इन्हीं के शासन काल में लिखी थीं । इसी तरह महाकवि दौलतराम ने भी श्रीपाल चरित (सं. १८२२) पद्मपुराण (स० १८२३) एवं आदिपुराण (सं० १८२४) जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की थी । भाई रायमल्ल ने महाराजा माधोसिंह के शासनकाल का वर्णन करते हुए जो लिखा है, वह अत्यधिक महत्व है तथा उस समय शासन पर जैनो के प्रभाव का स्पष्ट द्योतक है—

"राजा का नाम माधवसिंह है । ताके राज विर्षे वर्तमान एते कुविसन दरबार की आज्ञातैं न पाईए है । अर जैनी लोग का समूह वसै है ।

दरबार के मुतसद्दी सर्व जैनी हैं और साहूकार लोग सर्व जैनी है। जद्यपि और भी है परि गौणता रूप है मुख्यता रूप नांहि। छह, सात वा आठ वा दस हजार जैनी महाजनां का घर पाइए है। ऐसा जैनी लोगों का समूह नग्र विषै नांहि और इहां के देश विषै सर्वत्र मुख्य पणैं श्रावग लोग वसै हैं तातैं एह नग्र वा देश बहोत निर्मल पवित्र है। तातैं धर्मात्मा पुरुष बसने का स्थानक है। अबार तो सक्षात धर्मपुरी है।"

४ महाराजा सवाई पृथ्वीसिंह : (१७६६–१७७७)

महाकवि दौलतराम के जीवन-काल में ये चतुर्थ महाराजा थे। संवत् १८२४ चैत्र वदी ३ को ये जयपुर की गद्दी पर बैठे। कविवर बख्तराम ने बुद्धि विलास में इनके सम्बन्ध में निम्न पद्य लिखा है—

पृथ्वीस्यंघ विख्यात जा दिन तें भूपति भऐ।
मिटे सकल उतपात, सुखी भई सारी प्रजा ।।१८१।।

इनके शासनकाल के दो वर्ष पश्चात् ही जयपुर राज्य में शासन पर एक वर्ग विशेष का जोर हो गया, जिसने मन्दिरों, मूर्तियों एवं उनके अनुनायियों पर बहुत अन्याय बरसाये। कवि बख्तराम ने अपने बुद्धि विलास में इस घटना का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

फुनि भई छव्वीसा कैं साल, मिले सकल द्विज लघु र विशाल।
सबनि मतौ यह पक्कौं कियौ, सिव उठान फुनि दूसन दियो ।।१३०७।।

द्विजन आदि बहु मेल हजार, बिना हुकम पायें दरबार।
दौरि देहुरा जिन लिय लूटि, मूरति बिघन करी बहु फूटि ।।१३८।।

लेकिन जब महाराजा को इन अत्याचारों का पता लगा तो उन्होंने अपने राज्य में फिर साम्प्रदायिक सद्भाव की घोषणा की और राज्य भर में फिर से सब सम्प्रदाय के अनुयायी शान्ति पूर्वक रहने लगे।

महाराजा के शासनकाल में संवत् १८२६ में सवाई माधोपुर में विशाल पंच कल्याणक महोत्सव हुआ, जिसमें हजारों मूर्तियों की प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। ऐसा विशाल समारोह सारे देश में अपने ढंग का अकेला था। संवत् १८२६ में प्रतिष्ठापित सैंकड़ों हजारों मूर्तियां आज भी उत्तरी भारत के अधिकांश मन्दिरों में मिलती है। यह प्रतिष्ठा समारोह भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति द्वारा सम्पन्न हुआ था।

महाकवि दौलतराम ने साम्प्रदायिक अशान्ति रहने पर भी अपना साहित्य का निर्माण का कार्य यथावत रखा और हरिवंश पुराण (सवत् १८२६) जैसे महान् ग्रन्थ की भाषा टीका करने मे सफल हुए। महाकवि ने पृथ्वीसिंह के शासन काल की निम्न पंक्तियो मे प्रशसा की है—

नगर सवाई जयपुरा, जहा वसे वहु न्यात।
राजा पृथिवीसिंह है, जो कछुवाहा जाति ॥३॥
शिरोभाग राजान में, ढूंढाहड़ पति सोय।
ताके मंत्री श्रावका, और न्यातहु होय ॥४॥

५ महाराणा जगतसिंह :

महाराणा जगतसिंह उदयपुर के महाराणा थे। महाकवि दौलतराम ने इनका जीवंधर चरित की प्रशस्ति मे निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

उदियापुर ता मांहि, राजधानी अति सौहै।
जगतसिंह महरांण, पाट सोसोदिन को है॥
× × × ×
रहै राण के पास, राण अति किरपा करई।
जानै नीकौ जाहि, भेद भाव जु नहि वरई॥

महाराणा जगतसिंह और सवाई जयसिंह के परस्पर मधुर सम्बन्ध थे। यही नही, महाराजा सवाई माधोसिंह उदयपुर महाराणा की राजकुमारी के राजकुमार थे।

६ अमरपाल :

'अमरपाल' का 'पुण्यास्रव कथाकोश' मे उल्लेख हुआ है। कवि ने इनकी 'परमागम को रस तिन चख्यो' के रूप मे प्रशंसा की है। महाकवि बनारसीदास के साथियो मे कौरपाल का नाम उल्लेखनीय है। 'सूक्तिमुक्तावली' का पद्यानुवाद बनारसीदास और कौरपाल ने मिलकर किया था।[1] 'अमरपाल'

---

१ नाम सूक्ति मुक्तावली, द्वाविंशति अधिकार।
शत श्लोक परमान सब, इति ग्रंथ विस्तार ॥१॥
कुंअरपाल बनारसी, मित्र जुगल इक चित्त।
तिनहिं ग्रंथ भाषा कियो, बहुविधि छन्द कवित्त॥
सोलहसै इक्यानवे, ऋतु ग्रीष्म वैशाख।
सोमवार एकादशी, करन छत्र सित पाख॥

संभवतः कौरपाल के सुपौत्र अथवा वंशज थे। और उन्हीं के समान अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्य थे। अध्यात्म विषयक रुचि अमरपाल को वंश-परम्परा से मिली होगी—ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

७ आनन्दराम :

'आनन्दराम' महाकवि दौलतराम के पिता थे। सर्व प्रथम 'पुण्यास्रव कथाकोश' में कवि ने आनन्दराम सुत लिखकर अपना परिचय दिया है। आनन्दराम वसवा (जयपुर) के रहने वाले थे। और वहीं रहकर संभवतः अपना काम-धन्धा करते थे। आनन्दराम के पुत्रों तथा उनकी पत्नी के बारे में कवि ने कोई परिचय नहीं दिया है। 'पुण्यास्रव कथाकोश' के अतिरिक्त कवि ने त्रेपन क्रियाकोश, जीवंधर चरित, पद्मपुराण और हरिवंशपुराण आदि सभी कृतियों में 'आनन्दराम' का सादर उल्लेख किया है। जो उनकी अपने पिता के प्रति अनन्यतम भक्ति का प्रतीक है।

कर्णदास :

ये उदयपुर के रहने वाले थे तथा महाकवि की शास्त्र-सभा के प्रमुख सदस्यों में से थे। कवि से 'अाध्यात्मबारहखड़ी' लिखवाने में इनका विशेष योग रहा था।

९ खेतसिंह :

खेतसिंह दि० जैन अग्रवाल मन्दिर, उदयपुर का टहलवा था, जो स्वयं भी पण्डित था। महाकवि दौलतराम ने इनका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

मण्डी धान की नगर मांहि, जहां जैन मन्दिर महा।
तहां टहलवा पंडितो इक, खेतसिंह नामा कहा ।।

१० चतुरभुज :

ये भी आगरा की अध्यात्म शैली के प्रमुख श्रोता थे। कवि ने इन्हें साधर्मी लिखा है। भगवद् भक्ति की ओर इनकी विशेष रुचि थी। आध्यात्मिक चर्चाओं में भी ये बड़ी रुचि रखते थे। महाकवि दौलतराम को इन्हीं से शास्त्र प्रवचन एवं साहित्य निर्माण की प्रेरणा मिली थी। 'पुण्यास्रव कथाकोश' में कवि ने इनका सादर स्मरण किया है।

११ चतुरभुज अग्रवाल :

एक चतुरभुज का हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। ये दूसरे चतुरभुज हैं; जिन्होंने महाकवि को उदयपुर में जीवधर चरित की रचना करने के लिए आग्रह किया था। ये अग्रवाल श्रावक थे तथा कालाडहरा (जयपुर) के रहने वाले थे। कवि के ये परम प्रशंसकों में से थे। तथा उदयपुर के अग्रवाल मन्दिर में चलने वाली शास्त्र-सभा के प्रमुख श्रोता थे। जब महाकवि ने बीस हजार श्लोक प्रमाण वाले 'महापुराण' का स्वाध्याय समाप्त किया तो इन्होंने उनसे 'जीवंधर चरित' को हिन्दी में रचने का आग्रह किया और इसके लिये निम्न आधार प्रस्तुत किया—

देव भाष गंभीर, संसकृत विरला जानैं।
पंडित करैं वखान, अलप मति नांहि वखानैं॥

जो ह्वै ग्रंथ अनूप, देस भाषा कै मांहो।
वांचै बहुत हि लोक, या मह संकै नांही॥

सब गिरंथ की बनि न आवै, तौ इह जीवंधर तनी।
अवसि मेव करनी सुभाषा, पृथीराज भी इह भनी॥६॥
सुनी 'चतुर' मुख वात, सोहि दौलति उरधारी।

—इस प्रकार इन्ही के आग्रहवश दौलतराम ने 'जीवंधर चरित' की रचना प्रारम्भ की और संवत् १८०५ मे उसे समाप्त कर हिन्दी को एक प्रबन्ध-काव्य भेंट किया।

१२ पण्डित चोमा :

ये उदयपुर के रहने वाले थे। स्वय कवि ने इनको पंडित की उपाधि लगाकर स्मरण किया है। ये कवि के विशेष प्रशसक थे तथा तत्वचर्चा में मग्न रहा करते थे। अध्यात्मवारहखड़ी के निर्माण मे कवि को इनसे विशेष प्रेरणा मिली थी।

१३ पृथ्वीराज :

पृथ्वीराज संभवत: श्रावक थे तथा प० दौलतराम की शास्त्रसभा के ये नियमित श्रोता थे। जीवंधर चरित की रचना करने मे इन्होंने भी कवि से

आग्रह किया था; जिसका कवि ने ग्रंथ-प्रशस्ति में निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

सब गिरंथ की बनि न आव, तौ इह जीवंधर तनी।
अवसिमेव करनी सुभाषा, प्रथीराज भी इह भनी ।।६।।

१४ फतेचन्द :

आगरा नगर के अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्यों में फतेचन्द का नाम भी उल्लेखनीय है। फतेचन्द अपने समय के प्रतिष्ठित श्रावक थे तथा शास्त्रों की चर्चा में सदैव तल्लीन रहते थे। ये प्रतिदिन शास्त्र-प्रवचन में जाते और नयी-नयी चर्चायें करके श्रोताओं की जिज्ञासा बढ़ाते तथा विषय का स्पष्टीकरण करते थे। महाकवि दौलतराम ने अपने "पुण्यास्रव कथाकोश" में—"फतेचन्द है रोचक नीके, चरचा करै हरष धरि जीके" इन शब्दों में इनकी प्रशंसा की है। फतेचन्द आगरा निवासी थे अथवा कवि के समान ये भी बाहर से ही वहाँ आये थे—इस सम्बन्ध में निश्चित जानकारी नहीं मिलती; क्योंकि कवि ने आगे "मिले आगरै कारन पांयें" शब्द कहे हैं।

१५ बख्तावरदास :

इनका कवि ने अध्यात्म बारहखड़ी की प्रशस्ति में उल्लेख किया है। ये उनकी शास्त्र-सभा के प्रमुख सदस्य थे और कवि के विशेष सम्पर्क में रहते थे। तत्वचर्चा एवं धार्मिक-चिन्तन में विशेष योग देते थे। ये भी उदयपुर के रहने वाले थे।

× × × ×

१६ बिहारीलाल :

श्रावक बिहारीलाल आगरा की अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्य थे। प्रतिदिन शास्त्र सभा में आते और ध्यान एवं मनन पूर्वक शास्त्र श्रवण करते थे। विद्वानों को शास्त्र-प्रवचन की ओर प्रोत्साहित करते और स्वयं भी उनकी सेवा में सदैव तत्पर रहते। दौलतराम ने इनका 'पुण्यास्रव कथाकोश' की प्रशस्ति में सादर स्मरण किया है और इनके सम्बन्ध में निम्न पंक्तियां लिखी हैं—

लाल बिहारी हूं नित सुनै, जिन आगम को नीकै मुनै ।।

१७ बेलजी सेठ :

इनका कवि ने अपनी दो कृतियों में उल्लेख किया है। ये हूंबड़ जाति के श्रावक थे तथा सागवाड़ा के निवासी थे। शास्त्र श्रवण में इनकी

गहरी रुचि थी। जीवन्धर चरित की रचना करने के लिए कवि से इन्होंने भी आग्रह किया था[1]। इसी तरह वसुनन्दि श्रावकाचार की टव्वा टीका करने के लिए उन्होंने विशेष आग्रह किया था।[2] जब तक दौलतराम उदयपुर मे रहे, तब तक बेलजी सेठ इनके विशेष प्रशमक रहे।

१८ भूधरदास

'भूधरदास' महाकवि दौलतराम के समकालीन विद्वान् थे। पुण्यास्रवकथा कोश की प्रशस्ति मे सर्व प्रथम इन्ही का स्मरण किया गया है। ये ही वे भूधरदास है, जिन्होने 'पार्श्वपुराण' जैसे प्रबन्ध काव्य की रचना सवत् १७८९ मे समाप्त की थी। आगरा की अध्यात्म शैली के ये प्रमुख विद्वान् थे। कवि का सर्व प्रथम इन्ही से परिचय हुआ और इन्ही की प्रेरणा से वे साहित्य निर्माण की ओर प्रवृत्त हुए। इनका विस्तृत परिचय प्रस्तावना ११ के पृष्ठ पर देखिए।

१९ मनोहरदास

जब महाकवि उदयपुर मे महाराजकुमार माधोसिंह के मंत्री बनकर गये तो उन्होंने वहा भी दि० जैन अग्रवाल मन्दिर मे शास्त्र प्रवचन प्रारम्भ किया और आगरा के समान ही उसे भी अध्यात्म शैली का रूप दिया। इस शैली के प्रमुख सदस्यो मे मनोहरदास का नाम उल्लेखनीय है। मनोहरदास ने कवि से अध्यात्म बारहखडी को छन्दोबद्ध करने का विशेष आग्रह किया था, जिसका उल्लेख स्वय कवि ने उसकी प्रशस्ति में किया है।

---

१ सुनी चतुर मुख बात, सोहि दौलति उर धारी।
सेठ बेलजी सुघर, जाति हूमड हितकारी॥
सागवाड है वास, श्रवण की लगनि धरौरी।
सब साधरमी लोक, धरै श्रद्धा श्रुत केरी॥
तिननै आग्रह करि कही फुनि, दौलति कै मन मैं वसी।
सस्कृत तै भाष कीनी, इहै कथा है नौर सी॥७॥

२ बोले सेठ बेलजी नाम, सुनि नृप मत्री दौलतिराम।
टव्वा होय जो गाथा तनौ, पुन्य उपजै जिसको घनौ॥

२० रतनचन्द दीवान :

पं० भंवरलाल न्यायतीर्थ ने इनका दीवान काल संवत् १८१३ से १८२५ तक का माना है। महाकवि दौलतराम से इनका परिचय उनके अन्तिम दिनों में हुआ था; जिसका उल्लेख उन्होंने अपने हरिवंश पुराण की प्रशस्ति में "रतनचन्द दीवान एक, भूपत के परवांन" के रूप में किया है। इस पंक्ति के आधार पर इनका संवत् १८२५ के बाद भी दीवान होना जाहिर होता है।

दीवान रतनचन्द महापंडित टोडरमल की शास्त्रसभा के विशेष श्रोताओं में से थे और पंडित जी का पूरा सम्मान करते थे। भाई रायमल्ल ने अपनी पत्रिका में उस समय के जिन दो दीवानों का उल्लेख किया है; उनमें एक रतनचन्द तथा दूसरे दीवान बालचन्द छावड़ा थे। इन्होंने जयपुर में बधीचन्द जी के मन्दिर का निर्माण कराया था और मन्दिर निर्माण करने के पश्चात् उसे अपने बड़े भाई के नाम से प्रसिद्ध किया था।

२१ भाई रायमल्ल :

'भाई रायमल्ल' महाकवि दौलतराम के समकालीन श्रावक थे। धर्म एवं साहित्य प्रचार की उत्कट प्रेरणा लेकर वे विद्वानों की सेवा में जाते थे और उनसे नव साहित्य निर्माण का सानुरोध निवेदन करते थे। जहां भी उन्हें विद्वान एवं पण्डित दिखाई देते थे, वे उनके पास जाकर अपनी हार्दिक भावनाएं प्रस्तुत करते।

उनका जन्म संवत् १७७० के लगभग माना जाता है। बचपन में ही इनके ज्ञान की पिपासा बढ़ने लगी और २२ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने साहिपुरा के विद्वान् श्रावक नीलपति साहूकार से धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया और उसके पश्चात् ही वे पूर्ण संयमित जीवन व्यतीत करने लगे एवं ज्ञान-वृद्धि को ही एक मात्र अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। संवत् १८०५ के पूर्व ही वे महाकवि दौलतराम से मिलने उदयपुर पहुंचे। वहां की आध्यात्मिक शैली एवं वहां के श्रावकों में धर्म प्रचार को देखकर उन्हें अत्यधिक सन्तोष हुआ। इस घटना का भाई रायमल्ल ने अपने पत्र में निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

"उहां दौलतराम के निमित्त करि दस बीस साधर्मी व दस बीस बायां सहित शैली का बाणा बणि रह्या—ता अवलोकन करि साहिपुरा पाछा आया।

'महाकवि दौलतराम' जब जयपुर आ गये; तब उन्होंने कवि को पद्मपुराण की भाषा करने के लिए विशेष आग्रह किया जिसका कवि ने उक्त ग्रन्थ प्रशस्ति में निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

रायमल्ल साधर्मी एक, जाके घट में स्व-पर विवेक।
दयावंत गुणवंत सुजान, पर उपकारी परम निधान ।।
दौलतराम जु ताको मित्र, तासों भाष्यो वचन पवित्र ।
पद्मपुराण महाशुभ ग्रंथ, तामें लोक शिखर को पंथ ।।
भाषा रूप होय जो यह, वहुजन वांचै करि अति नेह ।
ताके वचन हिये मैं धार, भाषा कीनी मति अनुसार ।।

इसके पूर्व भाई रायमल्ल महापण्डित टोडरमल के घनिष्ट सम्पर्क में आ चुके थे। उन्होंने सिंघाणा जाकर गोम्मटसार जैसे महान् एवं विशाल ग्रंथों की भाषा टीका करवाने में सफलता प्राप्त की।[1]

महापण्डित टोडरमलजी भी भाई रायमल्ल से काफी प्रभावित थे। उन्होंने निम्न शब्दों में उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है—

रायमल्ल साधर्मी एक, धर्म सधैय्या सहित विवेक ।
सो नाना विधि प्रेरक भयो, तब यहु उत्तम कारज सयो ।।

सवत् १८२१ मे जयपुर में जो इन्द्रध्वज महोत्सव हुआ था, उसका भाई रायमल्ल ने अतीव सजीव वर्णन किया है। उससे तत्कालीन जयपुर नगर की साहित्यिक, सांस्कृति एवं धार्मिक गतिविधियों का भलीभांति परिचय मिलता है।

सवत् १८२७-२८ मे रायमल्ल मालवा देश गये हुए थे। वहां उन्होंने महाकवि दौलतराम द्वारा भाषा मे निबद्ध आदि पुराण एवं पद्मपुराण का प्रवचन किया। दोनों ग्रन्थो को सुनकर सभी श्रावक हर्षित हो गये और उनमे स्वाध्याय की रुचि में वृद्धि हुई। उसी समय वहां के श्रावकों ने भाई रायमल्ल से दौलतराम के द्वारा हरिवंश पुराण की भी टीका करने का निवेदन

---

१ शुभ दिन टीका प्रारम्भ हुई·········वे तो टीका बणवते गये। हम वाचते गये। बरस तीन में चारि ग्रंथां की ६५००० टीका भई। पीछे जयपुर आए।

कया। जिससे इस महान् ग्रन्थ का स्वाध्याय भी सुगमता से हो सके। भाई रायमल्ल ने वहीं से दौलतराम को पत्र भेजा; जिसमें सारी वस्तु स्थिति का दिग्दर्शन कराया। महाकवि को भाई रायमल्ल का आग्रह स्वीकार करना पड़ा। इस घटना को कवि ने हरिवंश पुराण की प्रशस्ति में उल्लेख किया है।

२२ रिषभदास :

'पुण्यास्रव कथाकोश' की रचना में तथा धार्मिक जीवन व्यतीत करने की ओर सबसे अधिक प्रेरणा देने वालों में रिषभदास का नाम उल्लेखनीय है। इन्हीं के उपदेश से कवि मिथ्याचरण त्याग कर सम्यक आचरण की ओर प्रवृत्त हुए थे। महाकवि ने रिषभदास की प्रशंसा में निम्न पंक्तियां लिखी हैं—

रिषभदास उपदेस सौं, हमैं भई परतीति।
मिथ्यातम को त्यागि कैं, लगो धरम सौं प्रीति ॥२१॥
रिषभदेव जयवन्त जग, सुखी होहु तसु दास।
जिन हमकौं जिन मत विषै, कीयो महा गढास ॥२२॥

२३ सदानन्द :

सदानन्द आगरा की अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्य थे। कवि ने "सदानन्द है आनन्द मई, जिनमत की आज्ञा तिह लही"—शब्दों में इनका स्मरण किया है।

२४ सीताराम-सवाईराम

ये दोनों महाकवि के समय के ग्रन्थ-लेखक थे। महाकवि हरिवंश पुराण की भाषा-टीका बोलते गये थे और ये दोनों उसे लिखते गये थे। उसका उल्लेख कवि ने निम्न प्रकार किया है—

सीताराम जु लेखका और सवाई राम।
तिन पर लिखवायो जु यह, वहुत कथा को धाम ॥

२५ हरिदास :

ये उदयपुर के रहने वाले थे। यहां पर कवि द्वारा संचालित शास्त्र-सभा के ये प्रमुख श्रोता थे तथा उनके विशेष सम्पर्क में रहते थे। कवि ने 'अध्यात्म बारहखडी' की प्रशस्ति में इनका विशेष रूप से स्मरण किया है।

२६ हेमराज :

कवि ने हेमराज का 'पुण्यास्त्रव कथाकोश' में स्मरण किया है और उनके सम्मान में निम्न पद्य लिखा है—

हेमराज साधर्मी भलै, जिन वच मांनि असुभ दल मले।
अध्यातम चरचा निति करै, प्रभु के चरन सदा उर धरै।।

हेमराज जैन धर्मावलम्बी थे जिनवाणी मे उनकी अटूट श्रद्धा थी। वे आगरा की अध्यात्म शैली के प्रमुख सदस्य थे। तथा अध्यात्म-चर्चा में संलग्न रहा करते थे।

आगरा के ही अन्य पाण्डे हेमराज संभवतः उनसे भिन्न विद्वान् थे।

डा० कस्तूरचंद कासलीवाल

जीवन्धर स्वामि चरित्र

रचनाकाल : संवत् १८०५ आषाढ़
शुक्ला २ गुरुवार

रचनास्थान : उदयपुर (राजस्थान)

दोहा

मंगल पाठ—

वरधमान भगवान कौं, करि वंदन मनलाय ।
जिनवानी कौं करि प्रणति, नमि गौतम के पाय ।।१।।
जीवंधर मुनिराय की, कहौं कथा सुखदाय ।
बुद्धि पराक्रम रस भरी, सुनौ भव्य मनलाय ।।२।।

श्रेणिक द्वारा सुधर्माचार्य से प्रश्न—

एक दिवस श्रेणिक नृपति, समवसरण कै मांहि ।
लखत फिरत है जिन विभव, जा सम जग मैं नाहि ।।३।।
लखि सोभा चउ वननि की, उपज्यो हर्ष अपार ।
वन असोक मैं वृक्ष तलि, देख्यो मुनि अविकार ।।४।।
ध्यानारूढ़ विसुद्ध जो, मगन महा परवीन ।
मानौं वैठो सिद्ध ही, निज स्वरूप लवलीन ।।५।।
देखि अवस्था धीर की, सफल करे नृप नैन ।
दे प्रदक्षरणा करि प्रणति, धन्य धन्य कहि वैन ।।६।।
आय सुधर्माचार्य पै, पूछो प्रसन रसाल ।
स्वामी देख्यो साधु इक, रहित सकल जगजाल ।।७।।
अति सुरूप सुंदर महा, जो[१] वन मांहि महंत ।
जीत्यां वैठो मदनमद, निसचल निरमल संत ।।८।।
तन वच मन बुधि कैं परै, पहुँच्यो मुनि वरवीर ।
परमतत्व परचै किया, तिष्ठै गुण गम्भीर ।।९।
कौन पुरिष ए सौ कहौं, करि किरपा गुरदेव ।
सुरनर मुनिवर खेचरा, करैं तिहारो सेव ।।१०।।

मूलपाठ-जीवन

तव सुधर्म गुरु बोलिया, सुनि हो श्रेणिक भूप।
कहौं कथा जोगिन्द्र की, अद्भुत अति रस रूप ॥११॥

चौपई

कथा का प्रारम्भ—

याही 'भरतक्षेत्र' कै मांहि, 'हेमांगद' इक देश वसांहि।
तहां 'राजपुर' नगर अनूप, राज करै सत्यंधर भूप ॥१२॥

पटरानी 'विजया' गुण खांनि, जा समान रति रूप न मांनि।
मंत्री 'काष्ठांगारिक' एक, प्रोहित 'रूद्रदत्त' अविवेक ॥१३॥

महारानी विजया द्वारा स्वप्न दर्शन—

एक समै विजया पटरानि, देखे सुपना दुख सुखदांनि।
आप उतारि धरचो मुझ सीस, मुकुट जु सत्यंधर धरणीस ॥१४॥

अष्ट हेम घंटा जुत सोहि, चिह्न राज को सुखि इह होहि।
बहुरि लख्यो सुपिनां मैं एक, तरु असोक आश्रित अविवेक ॥१५॥

तानैं तरु काट्यो ता मांहि, ऊग्यो वालवृक्ष सक नांहि।
लह लहाट करतो ततकाल, अति सुंदर रसरूप रसाल ॥१६॥

स्वप्न फल—

प्रात समैं राजा ढिग जाय, सुपिन भेद भाखे समुझाय।
नृप बोले रानी सुनि बात, निश्चै होय हमारी घात ॥१७॥

अष्ट लाभ हैं तुमकौ सहीं, लेहि हौ सुत राजा अतिमहीं।
सुनि करि नृप वियोग नृपनारि, भई सोक जुत अर्थ विचारि ॥१८॥

राजा सुभ वचननि तैं पोपि, सोक रहित कोनी अति तोषि।
कैयक दिवस वीतिया अवै, रह्यो गर्भ रानी कौ तवै ॥१९॥

चय करि सुर्ग थकी सुरमहा, उयर मझार वास जिह लहा।
जैसे सरद विषै सर मांहि, राज हंस थिरता जु धराहि ॥२०॥

गंधोत्कट वणिक् के पुत्र का अभाव—

और सुनौं इक वात रसाल, इक गंधोत्कट वणिक्क विसाल।
अति धनवंत महा मतिवंत, ताहि पुरि निवसै गुणवंत ।।२१।।

एक दिवस वड भाग प्रभाव, देखे सीलगुप्त मुनिराव।
नाम 'मनोहर' वन है एक, तहाँ विराजे परम विवेक ।।२२।।

तीन ज्ञान धारक जगनाव, तिनकौं नमि पूछ्यौ निज भाव।
हे प्रभु, मेरे सुत वहु भये, अलप आय हूँ मरि मरि गये ।।२३।।

हुइहैं दीरघ आयु हु कोइ, मुनि बौले, अद्भुत सुत होइ।
मन धरि वात सेठ इक सुनौं, पाप पुन्य के नाटक सुनौं ।।२४।।

पुत्र प्राप्ति के लिये भविष्यवाणी—

पुत्र होयगौ तुम्हरे अबै, ततखिण मृत्यु होयगौ तबै।
तुम जै हौ नांषन वन ठांम, तहां पाय हौ सुत गुणधाम ।।२५।।

महा मंडलिक नृपपद धार, अति विद्यानिधि अति अविकार।
सकल त्यागि भव भाव महंत, तद्भव मुकत होई सो संत ।।२६।।

ये मुनि वचन सेठ कौं कहे, ते इक जखिणी नें उर गहे।
सुत अर माता कौ उपगार, करिवा गई भूप के द्वार ।।२७।।

राज लोक मैं पहुँचौ सोइ, रानी की अति वल्लभ होय।
गरुड यंत्र तैं रक्षा करी, धर्मवंत सेवा चित धरी ।।२८।।

एक समय मधुरितु परताप, फूले तरवर हर संताप।
काहू दिवस राज दरवार, प्रोहित आयो प्रात मझार ।।२६।।

राजा सत्यन्धर की उदासीनता—

आभूषण रहिता पटरानि, देखी विजया गुण की खांनि।
पूछ्यौ कहां विराजैं राव, मेरै नृप दरसन कौ भाव ।।३०।।

रांनी भाख्यौ पोढे भूप, देख्यो जायन नृप को रूप।
ऐसे वैंन सुने द्विज जवैं, निमत विचारयो मन मैं तवैं ।।३१।।

होय असंगल नृप कै सही, या मांहै कछु संसै नही।
बाहुरि आयो मंत्री गेह, प्रात समै ही करि अति नेह ॥३२॥

राज पुरोहित द्वारा काष्टांगार को भड़काना—

प्रोहित स्वामी-धर्म तें गयौ, ले एकांत कहत यों भयो।
काष्टांगारिक सुनि मुझ वात, करि तू तुरत राव कौं घात ॥३३॥

तेरैं राज होय तहकीक, मेरौ वचन न मांनि अलीक।
सुनि करि मंत्री प्रोहित वैंन, कांन मूंदि नीचे करि नैंन ॥३४॥

बोल्यो जोगि नही इह रीति, तुम भाषी सो बड़ी अनीति।
मैं जु करत हो बोछे कांम, करि किरपा नरपति गुणधांम ॥३५॥

मो कौ आप बराबरि कियौं, अति दुर्ल्लभ मंत्री पद दियो।
तब बोल्यो प्रोहित जडमति, मेरो वचन झूंठ नहिं रती ॥३६॥

नृप सुत करिहै तेरो अंत, तातैं जतन करौ बुधिवंत।
अैसे कहि प्रोहित घर गयो, पाप प्रभाव रोग अति भयो ॥३७॥

दिन तीजैं नर देही त्यागि, नरकि गयो द्विज अघपथ लागि।
ताके वचन धारि परधान, आप मरण तै डरयो अयांन ॥३८॥

काष्टांगार द्वारा विद्रोह—

नृप मारण की इच्छा धरी, धरम-करम की परिणति हरी।
द्वै सहस्र भट अपने किये, वहुत द्रव्य दे निज मे लिये ॥३९॥

घेरयो जाय राजदरवार, तब भूपति नै किये विचार।
गरुड यंत्र करि रांनी काढि, लरिवा आयो आप गुणाढि ॥४०॥

नृप दरसन करि कैयक भटा, काष्टांगारिक दल तैं फटा।
तिनकौं लारलेय नृप लरयो, भागौ मंत्री मन मैं डरयो ॥४१॥

सत्यन्धर की मृत्यु—

तब मंत्री सुत सेना लाय, मिल्यो तात सौ तुरतहि आय।
पिता पुत्र दोऊ इक होय, हत्यो जुद्ध मैं भूपति सोइ ॥४२॥

काष्टांगारिक राजा भयो, कृतघन स्वामि धर्म तैं गयो।
जैसैं सठ करि सविष अहार, चाहै भूख तनौं परिहार ।।४३।।
जिम कोई करि कपटी मित, चाहै जड़मति भयो नचिंत।
ज्यौं हिंसक मत धरि खल होइ, चाहै सुगति सु कैसै होय ।।४४।।
तैसैं मंत्री अधम अयांन, लियो राज तजि धर्म विधांन।
स्वामि द्रोह सौ और न पाप, पापी लहैं नरक संताप ।।४५।।

विजया रानी की रक्षा—

गरुड़ यंत्र परि करि असवार, जक्षिणी ह्वै रानी की लार।
लेय गई जु मसांणनि मांहि, रोवत राखी संसै नाहि ।।४६।।

पुत्रोत्पत्ति—

करी रात्रि कौं रक्षा महा, तहां पुत्र नैं जनम जु लहा।
महा मनोहर रूप रसाल, मांनौं ऊग्यो चंद्र विसाल ।।४७।।
रानी कै नृप कौ जु वियोग, पति विछोह सौ और न सोग।
तातैं उछव कछु नहि कियो, वारवार भरि आवै हियौ ।।४८।।
तुरत उठायो जखिणी बाल, रतन दीप जोये ततकाल।
देखी रांनी बिमनो इसी, दौं करि जरी लता ह्वै जिसी ।।४९।।

यक्षिणी द्वारा उद्बोधन—

तब जखिणि दीयो उपदेश, सुनि हे रानी धर्म जिनेस।
सब संबंध विनश्वर जानि, सब थानक दुस्थांनक मांनि ।।५०।।
धन जोवन क्षण भंगुर देह, दीप सिखा सम जीतव एह।
अर इह काय असुचि कौ ठांम, यासौं प्रीति तजैं गुणधाम ।।५१।।
राज जगत मैं जानौं इसौ, चपला चमतकार ह्वै जिसौ।
अविग्र पुन्य वीमूढ़ मति देह, सब वस्तुनि स्यौं कियो सनेह ।।५२।।
ते सब जांहि अवसि इह रीति, दाह दायनी जग की प्रीति।
छति वस्तु सौं रति नहि करै, अर अछती की चाह न धरैं ।।५३।।

विनासीक जांनै जग भाव, उत्तम जन कौ इहै स्वभाव ।
सव व्यापक है जाकौं ज्ञान, सो सर्वज्ञ देव भगवान ।।५४।।
तानैं सकल लखी परजाय, कवहू कोई थिर न रहाय ।
काहू सौं करिवौ नही प्रीति, परभ्रम तौ आछी इह रीति ।।५५।।
अर जौ कहूँ प्रीति हू करैं, तौ इह वात हिये मैं धरै ।
वरतमांन अर ह्वैगो जोहू, इन सौं प्रीति होय तौ होहु ।।५६।।
गई वस्तु सौ कैसी प्रीति, वृथा सोक धरिवौ सठ रीति ।
कौंन पुरिष अर कौनुं जु नारि, जीव त्रिलिंग रहित अविकारि ।।५७।।
लखि झूंठौ संसार चरित्र, कर्म जोग संवंध विचित्र ।
चरिम सरोरी सुत इह जांनि, अति परतापी पूजि प्रवांनि ।।५८।।
दुष्ट शत्रु कौ करैं निकंद, तो कौ उपजावे आनन्द ।
करि सनांन लै जोगि अहार, समाधान धरि मन मैं सार ।।५९।।
सोक किये भरतार न मिलैं, काल पदारथ सव कौ गिलै ।
भिन्न भिन्न सवकी गति जांनि, कर्म भेदतैं भेद प्रवानि ।।६०।।
इत्यादिक युक्तिनि समुझाय, सोक रहित कीनी सुत माय ।
आप रही याही कै पासि, महा मित्रता रीति प्रकासि ।।६१।।

गंधोत्कट को मृत पुत्र की प्राप्ति—

दुख मैं कवहु न छांडे संग, इह मित्रनि कौ धर्म अभंग ।
अव आयो गंधोत्कट जहां, मृतग पुत्र नांपै नर तहा ।।६२।।
नांपि आपनी मिरतक वाल, जात हुतौ घर कौं ततकाल ।
सुन्यौ तवै सुस्वर गंभीर, रानी सुत कौ सेठ सुधीर ।।६३।।

जीवंधर की प्राप्ति—

तवै चितारे मुनि के वैन, चित मैं पायो वहुतहि चैन ।
जीवो जीवो वालक महा, पुण्य प्रभाव जनम इह लहा ।।६४।।
हाथ पसारे करि अति नेह, रानी जान्यौं श्रेष्ठी एह ।
दियो पुत्र तव ताकै हाथ, जौ ह्वैहै पिरथी को नाथ ।।६५।।

समुझायो फुनि या विधि ताहि, पालौ सेठ जतन करियाहि ।
काहू पासि भेद मति कहौ, इहैं वात गाढ़ी करि गहौ॥६६॥
यों ही करिहौं निहसंदेह, यों कहि सेठ ले गयो गेह ।
सेठ नारिकौ नंदा नाम, तासौं सेठ खिज्यो गुणधाम ॥६७॥
तो मैं बुद्धि नही है मूलि, कहौं कहां लौं तेरी भूलि ।
विनु परखें ते जीवत मांन, नांखन सौंप्यो पुत्र निधांन ॥६८॥
दीरघ आय मनोहर काय, इहै पुत्र तोकौं सुखदाय ।
लै लै यांहि प्रीति करि पालि, अर अब सौं सब भूलि जुं टालि ॥६९॥
तब हरषी सेठानी महा, अति आदर तें बालक गहा ।
जीतै वाल भांनु को एह, अपराजित बलवंत अछेह ॥७०॥

पुत्रोत्सव

कियो सेठ उछाह अपार, जैसो पुत्र जनम व्योहार ।
करी क्रिया सूत्रोक्ति सबै, धरयो नांम जीवंधर तबै ॥७१॥
धरयो तबै जीवंधर नाम, जासौं सुधरै सबही काम ।
अब विजया जखिणी ले लार, गरुड यंत्र पर ह्वै असवार ॥७२॥
गई पित्रवन तै ततकाल, दंडकवन पहुँची गुणमाल ।
जहां परमती तापस रहैं, धरि आश्रम कंदादिक गहैं ॥७३॥
तहां रही निज नांम छिपाय, पति वियोगनी दुरवलि काय ।
जखिणी शोक हरण कै हेत, रानि कौं उपदेशहि देत ॥७४॥
जे प्राचीन कथा सति रूप, ते याकै ढिग कहै अनूप ।
भाखै इह झूंठौ संसार, साचो जिन मारग भवतार ॥७५॥
जिन जिन मांहि आपदा परी, अर आपद मैं थिरता धरि ।
तिन तिन की परकासै वात, जिम सुनि या सहु सोक विलात ॥७६॥
जति अर श्रावक कौ जो धर्म, सो सहु प्रकट करै विनु भर्म ।
या विधि जीखणी दे उपदेस, करी धर्म जुत याहि विसेस ॥७७॥

छंद वेसरी

अब तुम सुनौं और इक वाता, जा विधि मिलैं अष्ट ही भ्राता।
विजया की द्वै सौकि वखानी, सत्यंधर की ल्हौरी रांनी ॥७८॥
रति इक अवर अनंग पताका, तिनकै पुण्य कर्म परिपाका।
मधुर वकुल द्वै पुत्र विसुद्धा, सुनि जिन धर्म भये प्रतिवुद्धा ॥७९॥
धारे श्रावक व्रत्त सवैही, जिनके धारें मोह दवैही।
अर सेनापति ही राजा कै, नांम विजैमति सुभ मति तांकै ॥८०॥
होती जयावनी सुभ नारी, ताके वेवसेन सुत भारी।
अर प्रोहित हौ सागर नांमा, हुती श्रीमती ताकै भामा ॥८१॥
जांके पुत्र महा परवीना, वुद्धिषेण विद्या लवलीना।
अर इक श्रेष्ठी हौ धनपाला, ताकै श्रीवत्ता सुभचाला ॥८२॥
हुती नारि ताके गुणवंता, पुत्र भये वरदत्त कुलवंता।
अर आगैं मतिसागर नांमा, मंत्री हौ नृप कै अभिरामा ॥८३॥
ताकै नारि अनुपमा रूपा, जाकै मधुमुख पुत्र प्ररूपा।
मधुर वकुल अर ए चउ जोधा, मिलि हूये पट् सुभट प्रवोधा ॥८४॥
षट द्रव्यनि से भासैं भाई, एक क्षेत्र वासी सुखदाई।
रहैं सेठ घरि कला विसुद्धी, जीवधर के सखा सुवुद्धी।
जीवंधर जुत सातौ एही, सत्य सुरूपी परम सनेही ॥८५॥
सप्त तत्व ज्यौ लोक मझारे, सौहैं सातौं अति गुण भारे।
वालकेलि अति चाव कराए, महा परायण प्रीत धराए ॥८६॥
रात्ति दिवस विछुरैं न कवैही, जिनकौ वहुतहि विरद फवैही।
वहुरि सेठ की नारि जु नंदा, ताकैं सुत नंदाढ्य अनंदा ॥८७॥
भयो महाहितकारी वीरा, तव ए आठ भये अतिधीरा।
अष्ट गुणनि से आठौ एही, सव सुरूप सुन्दर शुचि देही ॥८८॥

बालक्रीड़ा एवं तपस्वी से भेंट—

एक दिवस या पुर कै पास, कंवर करत हे केलि विलास ।
लाख तनी गोली करि वाला, खेलत हे रस रूप रसाला ॥८६॥
एक पुरिख तापस कै रूपा, जीवंधर कौं देखि अनूपा ।
पूछन लागौ होय खुश्याला, केती दूर नगर है लाला ॥६०॥
बोले कंवर सबै इह जांनैं, बालक चेलक पंथ पिछानैं ।
तू अति वृद्ध ज्ञान न तोकौं, किती दूर पुर पूछै मोकौं ॥६१॥
तरवर सरवर बाग विसाला, बहुरि देखिए खेलत वाला ।
तहाँ क्यों न लखिये पुरनीरा, संसै कहा राखिये वीरा ॥६२॥
ज्यौं लखि धूम अगनि हूँ जाने, त्यौं बालक लखि पुर परवानैं ।
जीवंधर के सुनिये बैनां, तापस कीये नीचे नैनां ॥६३॥
क्रांति कंवर की अर सब चेष्टा, देखी वृद्ध तापसी श्रेष्ठा ।
अर सुनि सुभसुर सुंदर वांनी, जानी बालक है अति ज्ञानी ॥६४॥
ऐसा[1] मान्य जगत जन नांही, परम पुरुष प्रगटे भू मांही ।
महाराज परकाज सुवारा, चिह्नन करि लखिए गुणभारा ॥६५॥
बहुरि वंस परखन कौं एही, बोल्यो सुनिहो कंवर सनेही ।
भोजन देहु भूख मुझ लागी, तू बड घर सुत है वड़भागी ॥६६॥
तब दैनौं करि भोजन याकौं, लाये लाला कह्यो पिता कौं ।
भोजन तापस कौं दे ताता, तुम हौ दाता जगत विख्याता ॥६७॥
विनै जुक्त सुनि सुत के बैनां, गंधोत्कट पायो अति चैनां ।
धन्य भाग्य अपनें लखि भाई, लियो कंवर को कंठ लगाई ॥६८॥
कह्यो सेठ सुनि प्राण अधारा, हम ए करि हैं लार अहारा ।
तुम पहली जीमौं निहचिंता, जीवंधर जीवनि के मिंता ॥६६॥
करि सनांन जीमैं हम पाछैं, तापस कौंसु जिमांवैं आछैं ।
जनक वचन सुनि भोजन कारन, बैठे जीवंधर जगतारन ॥१००॥

१ मूल पाठ एमा

सकल सखा जुत अद्भुत वालक, अति मन भावन पर दुख टालक।
तहां वाल लीला करि लौटे, रोवत खिजत महागुण मोटे ।।१०१।।
उस्न अन्न हूं जीमौं कैसे, मांसौ वोलें वचन जु असें ।
मा कौ अति विह्वल जव कीनी, तव तापस इह सिक्षा दीनी ।।१०२।।
तो कौं रोवौ जोगि न लाला, तू मंगल मूरति गुणमाला ।
यद्यपि तेरी वय है छोटी, तौं पनि तो मैं मति अति मोटी ।।१०३।।
धीरज आदि गुणनि करि भाई, तू सव जग कौ सिखर दिखाई ।
सुनि तापस के वचन विवेकी, वोले आप भाव करि एकी ।।१०४।।
रोवे के गुन तुम नहि जांनौ, मेरी वात हिये परवानौ ।
जाय सलेखम जो दुख दाई, नेत्र विमल ह्वै अति अधिकाई ।।१०५।।
तितै अहार हु सीतल होई, यामैं तौ औगुन नहि कोई।
इन वचननि तापस सुख पायो, अर माता कौ हियो सिहायो ।।१०६।।
सकल सखा जुत पुत्र जिमाए, पाछे श्रेष्ठी की पधराए।
तापस कौं अति तिरपत कीयो, आछी विधि तैं भोजन दीयो ।।१०७।।

तव तापस वोल्यो सुभ वैना, कवर देखि हरखे मुझ नैना ।।१०८।।
देखि जोगि ता मोहित हूवो, भयो जाय नहि यातें जूवो ।
जौ तुम आज्ञा द्यो सुखदाता, तौ मैं याहि पढाऊं ताता ।।१०९।।
सूत्र समुद के जल तैं याकी, धोऊं सनमति सुगुण भरा को।
सुनि करि वोले सेठ प्रवीनां, मैं हौ जिन मारग आधीनां ।।११०।।
आंनमती कौ सिर नहि नांऊं, आंन धर्म के पासि न जाऊं ।
नमसकार विन तूं अभिमांनी, दुख पावें मन माहि निदानी ।।१११।।
तव वोल्यो तापस सुभ वैंना, वात हमारी सुनि दिढ जैना ।
नगर सिंहपुर कौ मै भूपा, आरिजवर्मा नाम परूपा ।।११२।।
वीरनंदि पै मुनि व्रत लीयो, धृतिषेण सुतकौ नृप कीयो ।
सम्यक सहित मुनीसर व्रत्ता, पाले जगतें होय निवृत्ता ।।११३।।

पछैं दाह जुर उपज्यो मोकौं, कहौं कहांलौ वेदन तोकौं।
तब मैं भयो भिष्ट आचारा, चारित रहित सांग इह धारा ।।११४।।

जिनमत की श्रद्धा है मेरे, जैसी उर मैं श्रद्धा तेरे ।
धर्म भ्रात मोकौं तुम जांनौ, परमत कौ संदेह न आंनौ ।।११५।।

समाचार तांके सुनि सारा, परख्यो ताकौं वहु परकारा।
तब पढ़िवा सौंप्यो सिवगामी, ताकै ढ़िग जीवंधर स्वामी ।।११६।।

विद्याध्ययन—

अर सौंपे याके सब मित्रा, जे सब वातनि मांहि विचित्रा।
सो समदिष्टी इनकौं लैकैं, कीये पंडित विद्या दैकैं ।।११७।।

शस्त्र शास्त्र आदिक वहु विद्या, छंदादिक सहु पद्यर गद्या।
कुंवर पढ़ाए महा सुवुद्धी, थोड़े दिन में भये प्रवुद्धी ।।११८।।

ज्यौं दीपति करि सूरिज सौहे, त्यौं विद्या करिए मन मोहे।
वालदसातैं जोवन मांहो, आये जीवंधर सक नांही ।।११९।।

तब आरिजवर्मा सुखदाई, तजि परभेष हुवो मुनिराई ।
गहि निज ध्यांन लह्यो शिवधामा, जहां विराजै केवल रामा ।।१२०।।

अब तुम सुनौ कंवर परतापा, नगर तनौ मेट्यो संतापा।
महा सुभट वर वीर सु धीरा, पर जीवनि की हरइ जु पीरा ।।१२१।।

दोहा

कालकूट भील द्वारा नगर में उत्पात—

कालकूट नामा कुधी, मुखिया भीलनि मांहि ।
पापी प्रगट्यो ता समैं, जाकै करुणा नांहि ।।१२२।।

अति कारौ अति कुटिल जो, वहै अकारौ सोइ ।
सुनते जाकौ नाम ही, धीरज धरै न कोइ ।।१२३।।

धनुष वांन धारयां रहै, राती आंखि विरूप ।
चढ़ी है र भ्रकुटी सदा, रुद्र ध्यांन कौ रूप ।।१२४।।

अश्व पूंछ से मूंछ के, वाल कठोर महांन ।
देख्यो जाय न दृष्टची, दुरजन पाप निधांन ।।१२५।।

आय परै जव गांव परि, थांभि सकै नहिं कोय ।
लूटै धन पिरथी तनौ, संक धरै नहि सोय ।।१२६।।

काल कूट विष सारिखौ, काल कूट इह भील ।
अति कुसील अति नीच नर, दीखै महा कुचील ।।१२७।।

जानि जेक इह तिमर ही, धरि मानुष की काय ।
रवि किरणनि करि डरि कुधी, विचरै नांम छिपाय ।।१२८।।

निरदय सेना जा कनें, सींगी नाद करंत ।
अभख अहारी गौ हतक, करै पसुनिकौ अंत ।।१२९।।

ज्यौं तमाल वृक्षांनि कौ, बाग होय अति स्याम ।
त्यौं कारौ भीलांनि कौ, दल आयौ अघ धाम ।।१३०।।

डरे नगर के लोक सव, देखि भील कौ जोर ।
नहीं जानिये ह्वै कहा, उपज्यो धरि धरि सोर ।।१३१।।

घेरी गाय सुनग्र की, घेरे पसू अछेह ।
तव काष्टांगारिक नृपति, करी घोषणा एह ।।१३२।।

जो लरि दुष्ट किराततैं, गाय छुड़ावै कोय ।
सो मेरी गोदावरी, पुत्री कौ पति होय ।।१३३।।

जीवंधर द्वारा उपद्रव का दमन—

इहै घोषणा सुनि सुधि, जीवंधर सुकुमार ।
सात सखा जुत साह सुत, ले आयुध रण सार ।।१३४।।

चले तुरत भीलांनि परि, ज्यौं तम परि रविधांम ।
इनकै पीछैं भूप सुत, कालांगारिक नांम ।।१३५।।

सोऊ चाल्यो देखिवा, इन कौं युद्ध विसाल ।
लरे सेठ सुत भील सौं, जीवंधर गुणमाल ॥१३६॥
आठौं भाई एक ह्वै, परे भील दल मांहि ।
बांण चलाये या विधी, जाकरि दुष्ट हटांहि ॥१३७॥
रण विद्या मैं निपुन ए, धनुरवेद के मूल ।
सर सांधे अति सीघ्र ही, लखि न सकैं प्रतिकूल ॥१३८॥
आंवन दें नहि बांन पर, आवत बाँण कटांहि ।
चोट चुकावें पारकी, पर कौं चोट करांहि ॥१३९॥
रोकैं अपने बांन तैं, पर के बांन अनेक ।
जाय संचरै पर सिरैं, धारैं जुद्ध विवेक ॥१४०॥
या विधि रण करि रिपुनि कौं, जीति छुडाए जीव ।
जीवंधर को लोक में, प्रकटी कला अतीव ॥१४१॥
ज्यौं दुरनय कौं दलि महा, जय पावै नय सार ।
त्यौं दल मलि दल दुष्ट कौं, जीत्यो साहु कुमार ॥१४२॥
वरचो विजै लखिमी प्रगट, आयो नगर मझार ।
अपनें जस करि दस दिसा, पूरवतौ अविकार ॥१४३॥
कुंद पहुप अर हंस पख, जा सम उज्जल नांहि ।
ऐसौं उज्जल परम जस, प्रगट्यो पिरथी मांहि ॥१४४॥
देह कंवर की आंव तरु, पहुप सूर पण रूप ।
कीरति भई सुगंधता, अद्भुत अतुल अनूप ॥१४५॥
लोक नेत्र भमरा भये, परें अत्रिप्ता होय ।
या विधि आये घर विषें, लोक वेढिया सोय ॥१४६॥
राज पुरोहित भूप पैं, कही वात परकासि ।
कंवर लार ह्वै साहु सुत, लरे बहुत गुणरासि ॥१४७॥
तव बुलाय नृप पूछिया, तुम आठनि मैं कौंन ।
जीत्यो भील गणांनितैं, सो भाखौ तजि मौंन ॥१४८॥

नंदाढ्य के साथ गोदावरी का विवाह—

एक वाक्य बोले सवै, लखि जीवंधर सैंन ।
जीत्यो है नंदाढ्य इह, जाके मृग से नैंन ।।१४६।।
तब विवाह विधि करि नृपति, परणायो नंदाढ्य ।
दीनी पुत्री आपनीं, गोदावरी गुणाढ्य ।।१५०।।

इति श्री जीवंधरस्वामिचरित्रे महापुराणानुसारेण बालावबोध भाषायां बाललीला-विद्याभ्यास भील-विजय-गौविमोचन नंदाढ्य-विवाह-प्ररूपणो नाम प्रथमोध्यायः ।।१।।

द्वितीय अध्याय

अरिल छन्द

गगनवल्लभ के विद्याधर राजा रानी वर्णन—

सुनौं और इक बात महारस की भरी,
भरत क्षेत्र वैताढ्य श्रेणि दक्षण परी ।
अमर नगर सम नगर गगनवल्लभ जहां,
विद्याधर भूपाल गरूडवेगो तहां ।।१।।
भाइनि काढ़यो सोइ थांन तैं भूपती,
तब तिन कियो विचार रहन कौ सुभमती ।
रतनदीप कै मांहि नांम मनु जो दयो,
परवत देखि मनोगि चित्त हरषित भयो ।।२।।
जहां वसायो नगर नांम रमणीय जो,
तहां रह्यो खग भूप क्षांति रस पीय जो ।
ताकै नारि स्वरूप धारिणी नांम है,
सुता नांम गंधर्वदत्ता गुणधांम है ।।३।।

एक दिवस गंधर्वदत्ता उपवासिया,
जाय देहुरै पूजि देव गुण रासिया ।
आय पिता कौं दई आसिका सुभकरी,
देखी खेचरराय ताहि जोवन भरी ।।४।।

तब पूछ्यो परधान नांममति सागरा,
देहि कौंन कौं याहि कहो गुण आगरा ।
तब बोल्यो परधांन सुनौं भूपाल जो,
मंदिरगिरहूँ गयो सकल दुख टालजी ।।५।।

नंदन वन कै मांहि पूर्व दिसि देहुरा ।
तहां वंदिया देव जगत के सेहुरा ।
दरसन कारणि नांम विपुलमति चारणा,
आये हे जोगीस जगत के तारणा ।।६।।

करि प्रणांम मै सुन्यों धर्म जिनराय कौं,
जगत पूजि जग पार करण सुखदाय कौ ।
बहुरि पूछियो एह कहो जग तातजी,
मेरे नृप की सुता रूप विख्यात जी ।।७।।

ताहि कौ पति ह्वै कौंन तबै मुनि बोलिया,
मुझ परि होय दयाल अवधि द्रिग खोलिया ।

गंधर्वदत्ता के विवाह की भविष्यवाणी—

भरत क्षेत्र कै मांहि देस हैमांगदा,
तहां राजपुर नगर हरै सुरपुर मदा ।।८।।

सत्यंधर भूपाल सत्य भूषण धरा,
ताकै विजया नांम महारांनी परा ।
तिन कौ सुत मतिवांन वरै तांकों सही,
कौन रीति करि सोहु धारि तू उर मही ।।९।।

तेरे नृप की सुता धारिहै धारणा,
जो नर वीन वजाय होय चित हारणा ।
सो वहु गुण कौ नाथ हाथ मेरौ गहै,
और जगत कै मांहि मोहि कोइ न लहै ।।१०।।
सुनि परतज्ञा एह आय हैं वहु नरा,
वीन स्वयंवर मांहि भूचरा खेचरा ।
कोई ताहि रिझाय सकै नहि नागरा,
सत्यंधर कौ पूत गुणनिको सागरा ।।११।।
वीन वजाय रिझाय ताहि परनैं सही.
हौनहार ए वात सकल मोसौं कहीं ।
ज्यों मो कौ समुझाय कह्यौ मुनिरायजी,
त्यों मैं तुम सौं कह्यो सु औसर पायजी ।।१२।।
मुनि मंत्री के वैन सोच करि भूपती,
वोल्यो सुनि मंत्री सचित्त धरि सुभमति ।
ताको आंवन इहां होइ किस रीति सौं,
कैसे सो गुणवांन विवाहै प्रीति सौ ।।१३।।
प्रकट कह्यो परधांन भूपपै यों तवै,
कह्यो मोहि संजोग साधुन यों सवै ।
नगर 'राजपुर' मांहि महा धरमातमा,
'वृषभदास' इक सेठ दास परमातमा ।।१४।।
जाकै सुन्दर नारि नांम 'पद्मावती',
ताकै सुत 'जिनदत्त' सकल ए जिनमती ।
एक दिवस पुर पासि प्रीतिवर्द्धन वना,
तहाँ विराजैं आय केवली निजधना ।।१५।।
सागरसेन सु नांम ज्ञांन के सागरा
त्रिभुवन गुरु जगदीस गुणनिके आगरा ।

पिता सहित जिनदत्त पूजिवा आइ है,
दे परदक्षणा जोरि हाथ सिरनाइ है ।।१६।।
गरुडवेग हू जहां जायगौ दरसनें,
देखि तहां जिनदत्त भक्ति रस सरसनैं ।
करिहै तासौं प्रीति धर्म अनुराग सौं,
जानें गौ इह प्रीति भई वड भाग सौं ।।१७।।
खग मैं वामैं भेद भाव रहि है नहीं,
हौंनहार इह बात अलप दिन मै सही ।
ताही तैं इह काज सरैगो व्याह कौ,
तांही कै पुर व्याह होय उछाह कौ ।।१८।।
ए मुनि भाषें वैंन मोन खैं नाथ जो,
ते मैं तोसौं कहै सकल वड़ हाथ जी ।
मुनि भाषी सो भई प्रीति जिनदत्त सौं,
भेद रह्यो नहि कोई जैनमत रत्त सौं ।।१६।।
अब तू सुनि जा भांति मिलै संजोग जी,
वृषभदास वड भाग गह्यो मुनि जोग जी ।
जिनदत्तहि सब सौंप साध गुणपाल पैं,
दिक्षा लीनी देव सकल अघटाल पैं ।।२०।।
बहुरि सुव्रता पासि त्यागि जग की मती,
भई अर्यका सेठ नारि पदमावती ।
जे कुलवंती नारि पतिव्रत धारिणी,
तिनकी एई रीति कही सुभकारिणी ।।२१।।
अब जिनदत्त सपूत पाय पद तात कौं,
परकासै निति धर्म घातिया घातकौ ।
अतुल द्रिव्य कौ ईस सीस सेठांनि कौ,
सिख्या दायक धीर सुगुर जेठानि कौ ।।२२।।

सो व्योपार निमित्त आइहै ह्यां प्रभू,
रतन दीप के मांहि रतन वहुते विभू।
ताही तैं इह काज सिद्ध ह्वैगौ महा,
मतिसागर ए वात भाषि चुप ह्वै रहा ॥२३॥
कैयक दिन में तहां वणिकपति आइयो,
खुसी हुवो खग भूप ताहि उर लाइयो।
पाहुन गति अति करी रीति पाली सवै,
करि अति चित्त प्रसन्न वात भाषी तवै ॥२४॥
तेरै मेरै भेद रह्यो नांही भया,
तन मन जन घन धांम एक ह्वै परणया।
मेरी तेरी सुता दोय नांही गनी,
तेरै पुर परणाय व्याह कौ ह्वै धनी ॥२५॥
वीन वजाय रिझाय याहि जीतै जिकौ,
वर पुत्री कौ होय धीर निश्चै तिको।
ए सुनि खग के वैन सेठ जिनदत्त जो,
मिथ्राई प्रतिपाल धर्म मैं रत्त जो ॥२६॥
निज पुत्री सम जांनि विद्याधर की सुता,
लेय गयो निज नगर वहुत खग संजुता।
रच्यो स्वयंवर गेह मनोहर वन महैं,
जाकी सोभा देखि देव अचिरज गहैं ॥२७॥
वहुत कला में निपुन भूचरा खेचरा,
आये अति सुकुमार वीन मैं तत्परा।
प्रथमहि पूजा करी देव जिनराय की,
महा मंगलाचार करण सुखदाय की ॥२८॥
जव आये सव सुघर स्वयंवर साल मैं,
दीपै अधिकी कान्ति जिनौं के भाल मैं।

तब आई गंधर्वदत्ता गुणरासिका,
लैकें वीन प्रवीन महारस भासिका ।।२६।।
नांम सुघोषा वीन सुलक्षण की भरी,
ताके तारनि मांहि सुवरसै रसभरी ।
बीन बजाई शुद्ध जबै विद्याधरी,
हुते वीन परवीन तिनौं की सुधि हरी ।।३०।।
जानी इह गंधर्व सूत्र की मूरती,
अर इह सब संगीत कला की सूरती ।
जीति सक्यो नहीं कोई वीन मैं नागरा,
सब कौं जीति सुजान हियै गुण आगरा ।।३१।।

जीवंधर की वीणा प्रतियोगिता में विजय—

तबै जीतिवा याहि धीर जीवंधरा,
सकल कला परवीन वीन मैं तत्परा ।
आये सभा मझार सार गुण के भरे,
पक्षपात सौं रहित तिमैं साखी करे ।।३२।।
अधिकारीनि सौं कह्यौ देहु वीणा हमैं,
जिनके तार बजाय चित्त अति ही रमैं ।
वीन च्यारि तिन ल्याय चतुर कै ढिग धरी,
बोल्यो तब परवीन वीन दूषण भरी ।।३३।।
केस रोम लव आदि इनी मैं औगुना,
हम कौं दै ए वीन राग चाहौ सुना ।
यौं तिन सौं कहि सौंपि दई अर बोलिया,
सुनि हो नभ-चर सुता गांठ उर खोलिया ।।३४।।
जो तू मछर रहित महागुण की भरी,
तौ तेरी दै वीन बजाऊं चित धरी ।

तब अति होय प्रसन्न विद्याधर की सुता,
दई सुघोषा वीन सुद्ध तारनि जुता ।।३५।।
लैकै बीन प्रवीन बजाई रस भरी,
राग सूत्र अनुसारि लगाई रंग झरी ।
काढ़े सुर गंभीर गीत संजुत महा,
मधुर मनोहर रूप सुजस जाय न कहा ।।३६।।
सुनि करि चित्रत रहे भूचरा खेचरा,
मृग मोहित व्है महाराग मैं चित धरा ।
या विद्या करि हुई कंवर की कीरती,
जांनी सब ससार राग मैं कीमती ।।।३७।
धन्य धन्य ए वचन तेहि पहुपा भये,
तिन करि पूजे कुमर पंडितनि सिर नये ।
हरघो गयो सुनि वीन चित्त कंवरी तनौ,
लगे कांम के वान भेदियो उर घनौ ।।३८।।
माला घाली कंठि कंवर कै खग सुता,
सीलवंति गुणवंति रूप करि अद्‌भुता ।
कहा कहा नहि होय पुण्य परभाव सौं,
तातें धारौ पुण्य भव्य सुभ भाव सौ ।।३९।।
जैसे दिन मैं दीप दिपै नहि भानु पै,
तैसैं पर नर भये कंवर बहु जांन पैं ।
भासैं अति दैदीपमान निज लोक जे,
जीवंधर परताप धरै गुन थोक जे ।।४०।।
थकित भई लख रूप लाल की खेचरी,
एक रूप इक भाव होय करि ढिग खरी ।
वीन सुघोषा हेत पाइयो सुभपती,
करी वीन की तवै खुसी व्है थुति अती।।४१।।

सत्य सु घोषा नांम वीन तेरी सही,
वड़े वंसतै भई आप तोकौं चही ।
मधुरा अति रस तार चित्त की हारिणी,
कीयो कंवर मिलाप तैंहि सुखकारिणी ।।४२।।

अति प्रवीन तू सखी निपुन दूती महा,
तेरैई परसाद गुणपती पति लहा ।
ह्यां तौ अतिरस भयो सुनौं अव सज्जनां,
काष्टांगारिक पूत सु प्रे रचो दुरजनां ।।४३।।

हरणे कौं गंधर्वदत्ता कौं जड़मती,
काष्टांगारिक नाम कियो उद्यम अती ।
तव कुमर इह जांनि भये असवार जी,
जय गिर गज परि आप सांवता लारजी ।४४।।

तवै तात गंधर्वदत्ता कौं नभचरा,
गरुड़वेग सुभ नांम वुद्धि मैं ततपरा ।
जाय परचो मध्यस्थ दुहूँ के सुभमती,
अति उपाय परवीन विद्याधर कौ पती ।।४५।।

गंधर्वदत्ता के साथ जीवंधर का विवाह—

शांत कियो दल शत्रु रारि मेटी सवै,
अति उछाह तै व्याह हुवो पुर मैं तवै ।
जीवंधर कौं देय पुत्रिका आपनीं,
हुवो अति निहचिंत खेचरा कौ धनीं ।।४६।।

दोहा

रहै कंवारी कन्यका, व्याह जोगि घर मांहि ।
मात तात कौं दूसरी, ता सम चिंता नांहि ।।४७।।

पुत्री परणावन समा, नहिं निचिंतता और।
तातैं भयो निचिंत अति, गरुड़वेग खग मौर ॥४८॥
जीवंधर अर खग सुता, वढ़यो परसपर नेह।
जिनके रस सिंगार कौं, कहत न आवै छेह ॥४६॥
रति स्वरूप रामा इहै, काम स्वरूप कुमार।
वय किसौर नागर नवल, क्यौं न बढ़ै सिंगार ॥५०॥
सम स्वरूप सम गुन सवै, सम विद्या सम सील।
क्यौं न परसपर प्रीति ह्वै, चित्त एक द्वय डील ॥५१॥

इति गंधर्वदत्ता विवाह निरूपणम् ॥

चौपई

अव आई मधु[1] रितु अति चाव, मदन वरधनी मोद सु भाव।
फूले तर वाजी सुभ वाय, प्रगटी परिमल अति अधिकाय ॥५२॥
वन सुर मलय नांम विख्यात, नंदन वन की तुल्य लखात।
तहां चले नरपति अति रंग, चाले नगर लोक नृप संग ॥५३॥
निज निज संपति प्रगट दिखाय, सुख कारण ले वहु समुदाय।
अति उछव उपज्यो वन मांहि, जाहि लखें सव सोक नसांहि ॥५४॥
इक वैश्रवणदत्त है साहु, जाकै इनि दिनि वहुत उछाहु।
चूतमंजरी जाकै नारि, रूपवती पति आज्ञाकारि ॥५५॥
ताकै पुत्री सुरमजरी, अति सुंदर चतुराई भरी।
स्याम लता दासी जा कनैं, सुरमंजरि के गुण अति भनें ॥५६॥
लै आई चंद्रोदय नांम, चूरणवास महा गुण धांम।
जहां लखै वहुजन समुदाय, तहां वचन यों भाषै जाय ॥५७॥
या सम और न कोई सुगंध, जांकौ पाय भमर ह्वै अंध।
यों कहि इत उत फिरती फिरै, सव गुण मैं मुझ स्वामिनि सिरैं ॥५८॥

---

१ मूलपाठ रति

बहुरि कुमारदत्त इक साह, विमला नारि तनों जो नाह।
गुणमाला ताकै सुभ सुता, रूपवती बहु गुण करि जुता ।।५९।।
ताकै दासी विद्युतलता, मानवती चतुराई रता ।
सोहू लाई चूरणवास, सूर्योदय इह नाम प्रकास ।।६०।।
इह हू पंडित सभा मझार, करै प्रसंसा विविध प्रकार।
हमरे चूरण वास समान, सुर्ग विषै हू नांहि बखांन ।।६१।।
सकल कला परवीन सु जांनि, मुझ स्वामिनि सी और न मांनि ।
भले भौंह अर मृग से नैन, यों दासी बोलै मधु बैन ।।६२।।
भमर भमैया परित हकीक, मेरे वचन न होय अलीक।
स्याम लता अर विद्युत लता, निज निज स्वामिनि गुण मैं रता ।।६३।।

सुगंध परीक्षा—

दोऊ दासी मछर भरी, करैं विवाद सभा मैं खरी ।
हुते सुगंध परखवा घनें, बनें ठनें अतिरस के सनें ।।६४।।
कोऊ परखि सक्यो न सुगंध, दोऊ दीसैं एक अबंध।
अधिक बोछ जान्यों नहि परैं, तब जीवंधर परख जु करै ।।६५।।
परखि दुहूँ कौं बोले लाल, चंद्रोदय है गंध विसाल ।
जौ नहि मांनौं मेरे वैन, तो देखौ परतखि निज नैन ।।६६।।
यों कहि मसलि हाथ तैं सही, दोऊ चूरण डारे मही ।
चंद्रोदय परि भ्रमर जु आय, लागे अति सुगंध परभाय ।।६७।।
तबै हुते जेते मतिवांन, तिननैं बात करी परमांन ।
सबनि सिराह्यो चंद्रोदयो, तब विवाद सारौ मिटि गयो ।।६८।।
सदा करत ही विद्यावाद, दोऊ धारत हो उदमाद ।
तब ते वाद दुहुनि कौ गयो, दोऊ कन्या अति हित भयो ।।६९।।
गंध परखवा दूजौ नांहि, जीवंधर सौ धरणी मांहि ।
यों कहि सबनि प्रसंसा करी, इन की देह गुणनिसौं भरी ।।७०।।

ताही समै और इक वात, भई सोहु धारौ विख्यात ।
निज इच्छा सों कूकर एक, क्रीडा करत हुतौ अविवेक ।।७१।।

जीवधर द्वारा कुत्ते को णमोकार मन्त्र सुनाना—

दुष्ट वालका लार जु परे, लकरी लोढी मारण करे ।
दौरचौ कूकर अति ही डरचो, औडे द्रह माही गिरि परचो ।।७२।।
प्राण छाडि वे सनमुख भयो, सुनिकै कुमर कढाई हि लयो ।
जान्यो इह जीवै नहि कोइ, याको मरण अवारहि होय ।।७२।।
तव ताके काननि में आप, दियो मन्त्र जो नासै पाप ।
नमोकार सौ मन्त्र न और, इहै मन्त्र सव श्रुतको मौर ।।७३।।

यक्ष मित्रता—

धारचो कूकर मन मैं एह, सुभ भावनि सौं त्यागी देह ।
यक्ष सुदरसन नामा भयो, महामन्त्र तै अघ सव गयो ।।७४।।
चन्द्रोदय गिरि विषै निवास, देवनि कौं पूरव भवभास ।
जक्ष चितारि सकल परसग, आयो कवर पासि अतिरग ।।७५।।
कहत भयो हो सुगुर सुजान, तुव परसाद लह्यो सुभ थान ।
पाई अति विभूति मैं नाथ, करि किरपा तै पकरचो हाथ ।।७६।।
दीयो महामन्त्र तै सही, जाकी महिमा जाय न कही ।
याहि देखि सव अचिरज रहे, नमोकार के गुन सरदहे ।।७७।।
जक्ष किलन्न महा मतिवान, करी कवर की पूज विधान ।
दिये दिव्य आभरण अमोल, अर मित्राई कही अडोल ।।७८।।
करी वीनती वारवार, मोहि गनौ अपनौ निरधार ।
अव सौ हरख-विषादनि माहि, सदा चितारौ ससै नाहि ।।७९।।
नमसकार करि अपने धाम, गयो जक्ष गावत गुण ग्राम ।
विनु कारण जे पर उपगार, करै तेहि पावै फलसार ।।८०।।

राजा के हाथी का विगड़ना—

वन की क्रीड़ा करि नर नारि, आवत है सव नगर मझारि ।
नृप कौं हसती गंधमहंत, असनिवेग नामा वलवंत ।।८१।।

बिभक्यो लोक सवद तें महा, अति ही मद करि छकि जो रहा ।
काहू पें न निवारयो जाय, वहु प्रचंड अति दीरघ काय ।।८२।।

सुरमंजरी को वचाना—

सुरमंजरि के रथ परि गजा, दौरयो खौके संक ही भजा ।
जीवंधर तव आये धाय, जिनतें गोपि न कोइ उपाय ।।८३।।

गज शिक्षा ग्रंथनि परवांन, गज सौं लागे क्रीड सुजांन ।
करे परिभ्रम तीसर दोय, तामैं हस्ती सिथिल जु होय ।।८४।

इन कौं खेद होई नहि कवै, इन तें सुर नर खग तिर दवै ।
वसि करि हाथी वांध्यो ठान, सांवत सकल कला कैं जांन ।।८५।।

गज ग्रंथनि मैं लखि विज्ञांन, करन लगे सव सुजस वखांन ।
आये कंवर आपनैं गेह, सुर मंजरि कैं उपज्यो नेह ।।८६।।

जीवंधर के प्रति सुरमंजरी की आसक्ति—

लखि करि जीवंधर कौ रूप, भई कन्यका काम सुरूप ।
ताकी चेष्टा लखि करि जवै, मात तात नैं जांनी सवै ।।८७।।

या पुत्री कै निश्चै इहै, जीवंधर मेरौ कर गहै ।
तव वैश्रवणदत्त करि नेह, आयो गंधोतकट कैं गेह ।।
करी वीनती वे कर जोरि, वहुरि आपनौं सीस निहोरि ।।८८।।

सुनौं सैठपति मेरे वैंन, जीवंधर जग कौं सुख दैन ।
इह तेरौ सुत अद्‌भुत रूप, मेरै परणौं अतुल अनूप ।।८९।।

सुरमंजरी के साथ विवाह—

करि तू मोहि आपनौं दास, तू किरपानिधि सुगुण निवास ।
तव वोले गंधोतकट साह, या सम और जु कौंन उछाह ।।९०।।

करी प्रमांण बात मैं एह, मेरौ सुत परणौं तुव गेह।
तव वैश्रवणदत्त निज सुता, सुर मजरि जो वहुगुण जुता ॥६१॥

तुरत हि भली महूरत पाय, जीवंधर कूं दी परणाय ॥६२॥
भरी रंग रस सुर मंजरी, प्रीतम सौं अति प्रीति जु धरी।
सूरापन अर अति सोभाग, जीवंधर सौ नहि वड़भाग ॥६३॥

काष्टांगार का षड़यंत्र—

करैं निरंतर कीरति सवै, काष्टांगारिक कोप्यो तवै।
मेरौ हस्ती गंध अनूप, असनिवेग हाथिनि को भूप ॥६४॥
पीस्यो ताहि मान मद हरचो, कुधी वनिक सुत गरवै भरचो।
कुल की रीति तजी मति अंध, सीख्यो राजनि के परवंध ॥६५॥
वनियनिकी इह रीति अनादि, हरडै सूंठि आंवला आदि।
वेचैं और मोलि ले सही, इन सौ रीति और ही गही ॥६६॥
करै जाति माफिक जो काम, तासौं रहै तात कौ नाम।
इह कुल खंपण कुवुधि मुरूप, मन मैं भयो रहै सुतभूप ॥६६॥
तव तेज्योपुर को रछिपाल, चडदंड नामा कुटवाल।
तासौं भाष्यो काष्टांगारि, जीवंधर को तुरतहि मारि ॥६८॥
है इह वहुत कुचेष्टा भरचो, धन जोवन छकि वहु वहि परचो।
इह नृप आज्ञा सुनि कुटवाल, लेकरि अपने सुभट विसाल ॥६६॥
सजि वजि दौरचो काल समांन, जीवंधर परि लेवा प्रांन।
तवै साह सुत सुनि इह वात, लेकरि साथि भ्रात निज सात ॥१००॥
आठौं भाई आयुध भरे, करि साहस तलरव परिपरे।
तुरत भगाय दियो कुटवाल, जीते जीवंधर गुणमाल ॥१०१॥
वहुरि कोप करि काष्टांगारि, भेजे वहुत सुभट रण कारि।
तव दयाल ह्वै मन मैं एह, धारी जीवंधर गुण गेह ॥१०२॥

कहा रंक ए मौसौं लरैं, मेरे वांणनि तैं सब मरैं ।
पनि हिंसा सौ और न पाप, जीवनि कौं करणौ न सताप ।।१०३।।

तातैं कौइ उपाय विचारि, मेटौं पाप कारिणी रारि ।
करौं शांत या सठ कौं सही, तब सुमरयो उर में सुर वही ।।१०४।।

जो अपनौं निज मित्र विसाल, जक्ष सुदरसन प्रीति रसाल ।
आयो तुरत महा बलवांन, सकल रारि मेटी मतिवांन ।।१०५।।

अर जबि करी वीनती एह, एक बार लखिए मुझ गेह ।

जीवंधर का चन्द्रोदय पर्वत पर जाना—

चंद्रोदय परवत सुभथांन, तुव परसाद लह्यो गुणवांन ।।१०६।।

तव जीवंधर जग सुखदैन, जखि कौं सुख देवे मृगनैंन ।
ताकी बात करी परमांन, तव वह लेय गयो निज थांन ।।१०७।।

नाम विजैगिर हस्ति चढ़ाय, इह मित्रनि की रीति कहाय ।
मित्रनि कौं पधरावै गेह, दे सुभ वस्तु करै अति नेह ।।१०८।।

किनही नहि जांनी इह बात, मात तात अर सातौं भ्रात ।
करन लगे आकुलता महा, बिना कंवर नहि थिरता गहा ।।१०९।।

जैसे नव पल्लव लहि वाय, अति ही हौंहि चलाचल काय ।
तैसैं निज जन अथिरे जु भये, हमहि जतायें विनु कित गये ।।११०।।

तव गंधर्वदत्ता खग सुता, अति विद्या निधि अति गुण जुता ।
निमल ग्यांन तैं जांनी बात, कंवरै नांही कछू उतपात ।।१११।।

रही निराकुल चित्त सयांन, समुझाये निज जनहित वांन ।
कंवर लाभ ले आवैं सही, या मांहै कछु संसै नहीं ।।११२।।

कवहू मैं जांनौं गति कोय, रहौ हरख सौं थिर चित होय ।
तव थाके गनि वचन-प्रमांन, सवनि लह्यो संतोष निधांन ।।११३।।

जीवंधर जखि कै घरि जाय, कैयक दिवस रहे सुखपाय ।
वहुरि भयो चलिवे कौं चित्त, अभिप्राय तव जान्यौं मित्त ।।११४।।

दोहा

काम मुद्रिका प्राप्ति—

काम रूपिणी मुद्रिका, महाक्रांति कौ रूप ।
सकल अरथ साधन करी, दीनी अतुल अनूप ।।११५।।
अर उतारि परवत थकी, किती दूरि पहुँचाय ।
जांनी इनकौं भै नहीं, लाभ होंहि अधिकाय ।।११६।।
तबै सीख करि घरि गयो, जक्ष प्रीति प्रतिपाल ।
शील कंवर के चरण जुग, जीवनि के दुखटाल ।।११७।।

इति श्री जीवधर स्वामी चरित्रे महापुराणानुसारेण बालावबोध भाषायां, 'वीन प्रवीनता', 'गंधर्वदत्ता विवाह', 'सुगंध परीक्षा', स्वानोपगार यक्षमित्रता, गंधहस्ती विजय, सुरमंजरी विवाह, कीर्ति प्रकाश, काष्टांगारिक कोपरणोद्यम, यक्षागमन युद्धप्रशांति यक्षग्रहेगमन काममुद्रिकालाभ निरूपणो नाम द्वितीयोध्यायः ।।

तीसरा अध्याय

छन्द-चालि

अब चले कंवर गुण पूरा, पहुंचे केतीयक दूरा ।
इक नगर नांम 'चंद्राभा', दीखै जाकी बहु आभा ।।१।।
अति धोले उजले गेहा, व्है सरद चांदनी जेहा ।
राजा 'धनपत्ति' पुर स्वांमी, सो लोकपाल सौ नांमी ।।२।।

पदमोत्तमा को विषधर द्वारा डसना—

अर है 'तिलोतमा' रांनी, राजा कै रूप निधांनी ।
शुभ 'पदम' उत्तमा पुत्ती, अति सुंदर बहुगुण जुत्ती ।।३।।
इक दिवस गई ही वन में, क्रीडा कौ चाव जु मन में ।
सो डसी दुष्ट विषधरनें, जब सोच हुवो नरवर नें ।।४।।

तब करी घोषणा पुर में, इह निश्चै धारी उर में ।
जो याके प्राण उबारै, मणि मंत्रौषध परकारै ॥५॥

ताकौं एही परणाऊं, अर सीस आपनौं नांऊं ।
फुनि आधौ राज हु तांकौ, जो नर विष टारै यांकौ ॥६॥

तब सब आये विष झारा, लखि लोभ बहुत परकारा ।
पनि विष नहि हुवा दूरा, पचि पचि हारे गुन पूरा ॥७॥

तब नृप कै उपज्यौं सौका, दौरे सब दिसि अति लोका ।
ढूंढन विषहारी नर कौं, लखि जीवंधर ततपर कौं ॥८॥

पूछन लागी तुम मांही, विषहर विद्या अकनांही ।
देखे अति आकुल लोका, तब बोले तत्व विलोका ॥९॥

कछु इक विद्या है भाई, पूरण विद्या जिनराई ।
सुनि सबद महा संतुष्टा, ले गये जांनि गुन पुष्टा ॥१०॥

इह नाग मंत्र मैं निपुना, सब ही बातनि में सुगुना ।
तौपनि चित यौ वह जक्षा, जो राखै अपनी पक्षा ॥११॥

नृप पुत्री निरविष कीनी, जिन मंत्र औषदी दीनी ।
तब राजा हुवो राजी, जानी ए नर परकाजी ॥१२॥

अति कांति पराक्रमधारी, लक्षण करि लखिए भारी ।
ए राजवंस बरबीरा, निश्चै नर नायक धीरा ॥१३॥

तब निज पुत्री परणाई, अर बहुतहि प्रीति जनाई ।
फुनि अरध राज हू दीयो, निज वचन सत्य नृप कीयो ॥१४॥

कन्या के भ्रात बत्तीसा, अति ही सज्जन गुण ईसा ।
सब लौकपाल प्रमुखाजे, जीवंधर सौं सुमुषाजे ॥१५॥

विनयादिक गुण लखि तिनमैं, जीवंधर राजी मन मैं ।
कैयक दिन क्रीड़ा कीनी, सबही कौं साता दीनी ॥१६॥

अब ह्यां तैं आगैं चाले, अतुली वल निसि कौं पाले ।
काहू सौं नांहि जतायो, एकाकी गमन करायो ।।१७।।
कितीयक कोसनि पहुँचे जी, जीवंधर श्रीवर से जी ।
इक खेम नगर सुर पुर सौं, सब ही वातनि अति सरसौं ।।१८।।
इक वन है पुर तैं नीरा, देखत ही मेटैं पीरा ।
जो नाम मनौरम कहिया, अति सुंदर तरवर सहिया ।।१९।।

सहस्त्रकूट चैत्यालय के कपाट खुलना—

तामैं जिन मंदिर सोहै, सो सहस सिखर मन मोहै ।
लखि जीवंधर जिन गेहा, कीयो वंदन धरि नेहा ।।२०।।
दे तीन प्रदक्षरा भाई, दरसन कौ भाव धराई ।
देवल के पाट विसाला, ते खुले सहज ततकाला ।।२१।।
हूवो दरसन जिनवर कौ, भवतारन त्रिभुवन गुर कौ ।
जिन सत्तवन करनैं लागौ, अति भक्त शात रस पागौ ।।२२।।
फूल्यो चंपा इक जब ही, दरसातौ राग अधिक ही ।
कोकिल चुप होय रहे हे, मधु रति कौ विरह गहे हे ।।२३।।
ते लगे बोलनैं मधुरा, सुनि करि राजी ह्वै सुघरा ।
अर जिन मंदिर कै निकटा, इक सरवर अति ही सुघटा ।।२४।।
सो निर्मल जल करि पूरौ, हूवो आतप चक चूरौ ।
मांनी फटिक द्रव भरियो, गुन निपुन नरनि कौ करियौ ।।२५।।
तामैं फूले ततकाला, कमलादिक गंध विसाला ।
अति भमर करैं गुंजारा, लखतां ह्वैं हरष अपारा ।।२६।।
करिकैं जु सनान विसुद्धी, ले आठौ द्रव्य सुबुद्धी ।
जिनवर कौं पूजि सुग्यांनी, थुति करन लगौ गुरा खांनी ।।२७।।
ता खेमनगर कौ वासी, इक समुद सेठ जस रासी ।
जाकै निरवृति सेठांनी, ताकै पुत्री मतिवांनी ।।२८।।

सो खेमसुंदरी नामा, मांनी लखिमी गुण धामा।
इक दिन विनयंधर स्वामी, मुनि ज्ञान ध्यांन विसरांमी ।।२९।।

तिनकौं कन्या के ताता, पूछ्यो लखि कै अति ग्याता।
मेरी पुत्री कुन परनें, तव महा पुरुष यों वरनें ।।३०।।

चंपो फूलै ततकाला, ह्वै कोकिल सवद रसाला।
फुनि पाट जिनालय उघरैं, जय जय रव जव वह उचरैं ।।३१।।

अर फूलैं कमल सु वासा, ए सकल चिह्न जे भासा।
जाके आवे तें होवै, जा करि दुखिया दुख खोवै ।।३२।।

सो व्याहै तेरी कन्या, इक पुरुख धारिणी धन्या।
तव ही ते राखे पुरुषा, जे करैं सुवर की परखा ।।३३।।

ते रहत हुते या वन मैं, लखि सुनर खुशी ह्वै मन मैं।
तिन जाय ततक्षण भाई, श्रेष्ठी कौ दई वधाई ।।३४।।

जे चिह्न वताए गुरनें, ते प्रगटे पाय चतुरनें।
तव सुनि सुख पायो अति ही, सो जांमैं श्री जिनपति ही ।।३५।।

वहु दई वधाई तिनकौं, अर चल्यो मनोरम वन कौं।
नहि मुनि के वचन अलीका, इह जांनी जिन तह कीका ।।३६।।

क्षेमसुन्दरी विवाह—

लखि जीवंधर कौ रूपा, जान्यौं इह पुरुष अनूपा।
तव निज पुत्री परणाई, अर हित की रीति जनाई ।।३७।।

फुनि करी वीनती एका, सुनियें चितधारि विवेका।
इक नगर राजपुर नामा, सत्यंधर नृप गुण धामा ।।३८।।

हम कियो तहां निवासा, सो नगर वहुत सुखरासा।
व्हां चैन वहुत ही पायो, सत्यंधर राज सुहायो ।।३९।।

इह धनुष वहुरि ए वांना, हमसौं करि नेह निवांना।
दीनें सत्यंधर नृपनें, तिनसौं अति प्रीति जु अपनें ।।४८।।

एहैं तुम लायक नीकें, राखौ दीनें नृप तीकें।
तब राखें जीवंधर नें, अति जुद्ध कला ततपर नें ॥४१॥

ह्वै अति संतुष्ट गुञानी, कैयक दिन थिरना ठांनी।
सुख सौं निवसें ससुरा कै, अति सज्जन भाव भराकै ॥४२॥

कबहुक विद्याधर पुत्री, अति विद्या रूप विचित्री।
गधर्वदत्ता गुणधामा, जाकै पति ही विसरामा ॥४३॥

करि प्रिय दरसन कौं भावा, आई विद्या परभावा।
लखि वल्लभकौं वहु सुखिया, हरखित कीनी निज अखिया ॥४४॥

विनु मिलें गई फुनि घर कौं, आवौ न जतायो वरकौं।
घर हूँ तें परछन आई, ह्यां हूं तें परछन जाई ॥४५॥

जानौ ए हित की रीती, जिन कै उर प्रेम प्रतीती।
देखैं प्रीतम उछाहा, नहि और बसत की चाहा ॥४६॥

शुभ खेमसुंदरी गेहा, तिष्टे सुंदर धरि नेहा।
कैयक दिन रहि गुणवंता, जीवंधर जगत महंता ॥४७॥

काहू कौ नांहि जनायो, पर द्रव्य नही अपनायो।
लै धनुष बांन वरवीरा, निसि कौं उठि चाले धीरा ॥४८॥

है सुजन नांम इक देसा, हेमाभ नगर सुभ भेसा।
दृढ़मित्र नांम है राजा, जाकै निति उत्तम काजा ॥४९॥

नलिना रांनी गुणधामा, पुत्री हेमाभा नामा।
जाके जनमत ही निमती, यौं कहत भयो इक सुमती ॥५०॥

है नाम मनोहर वन जो, अति हरै लोक कौ मन जो।
तां भीतरि वहुत विसाला, आयुध अभ्यास जु साला ॥५१॥

अति करैं धनुप अभ्यासा, वहु सस्त्र सूत्र अभ्यासा।
जा धनुषधार कौ वाह्यो, अति सीघ्र हि जाय उमाह्यो ॥५२॥

सर लागि निसांनैं भाई, ततखिण पाछौ ही आई।
जा ही मारग करि जावै, ताही मारग फुनि आवै ॥५३॥

इह हाथ तनी जु सफाई, सर अति हि वेग देजाई।
लखि फरसि करै नहि छेदा, है वांहन ही मैं भेदा ॥५४॥

इह होय वल्लभा ताकी, सर श्रुत मैं अति मति जाकी।
है वाला अति हि सुलषरणा, है कुलकी कीरति रखरणा ॥५५॥

या विधि कौ सुनि आदेसा, आये सावंत विसेसा।
धरि हेमाभा को आसा, लागे करने अभ्यासा ॥५६॥

जीवंधर हूं व्हां आये, लखि रूप सवनि सुख पाये।
जब वोले धनुष धरैया, तुम हूं कछु जांनौं भैया ॥५७॥

सुनि कहत भये सुकुमारा, हम हूं कछु इक इह धारा।
तब कह्यो सवनि सरवाही, जो तुमरै चित्त उमाहौ ॥५८॥

वेधौ निसांनौं वीरा, उर संक न आंनौ धीरा।
तब धनुष चढ़ाय चलायो, सर कंवर सवनि दरसायो ॥५९॥

सो लागि निसांनें भाई, ततखिण पाछौ ही आई।
तब तहां हुते नृप लोका, तिन सब व्रत्तांत विलोका ॥६०॥

ते दौरि गये नृप पासे, हरषित व्है सवद प्रकासे।
सुनि करि नृप वहु सुख पायो, तिनकौ दारिद्र नसायो ॥६१॥

निज पुत्री जीवंधर कौं, परणाई गुण ततपर कौं।
अति उछव कीयो राजा, भेले करि सर्व समाजा ॥६२॥

राजा कै पुत्र सपुत्ता, सव ही सज्जन गुण जुत्ता।
है वड़े कंवर 'गुणमित्रा', दूजे 'वहुमित्र' विचित्रा ॥६३॥

तीजे कौ नांम 'सुमित्रा', चौथे 'धनमित्र' पवित्रा।
इत्यादि अनेक कुमारा, 'जीवंधर' सौं हित धारा ॥६४॥

जिन सबकौं कला समस्ता, जीवंधर दई प्रसस्ता ।
तिन ही के पुण्य प्रभावा, तिष्ठे गुन निपुन सुभावा ॥६५॥
ए जाही ठौंहर जांवें, ता ठौहर सब सुख पावें ।
अब सुनी बात इक भाई, गंधर्वदत्ता सुखदाई ॥६६॥
जीवंधर कौ लखि जावै, सबसौं परछन्न हि आवै ।
इच्छा ह्वै मन को जबही, देखै निज पति कौं तबही ॥६७॥
नहि पति कौ ह्वै सुधि याकी, नहि और लखै गति ताकी ।
अति सीघ्र हि घर तैं आवै, अर तुरत हि पाछी जावै ॥६८॥
इक दिवस लखी देवर नै, नंदाढ्य महामति घर नैं ।
तब पूछ्यो तू कित जावै, काहू कौ नांहि जतावै ॥६९॥
हम हूं कौं ले चलि माई, जा दिसि तू गमन कराई ।
तब बोली खेचर पुत्ती, अति विद्या गुण करि जुत्ती ॥७०॥
जो तेरी इछा बीरा, सौ सुनि तू इक चित धीरा ।
जा दिसि कौ मेरौ गमना, ता दिसि तू पहुँचै सुमना ॥७१॥
देवाधिष्ठित गुणधामा, इह समर तरंगणि नामा ।
सज्या है अति सुखदाई, या परि विधि पूर्वक भाई ॥७२॥
निज बड़ भाई कौं ध्याये, करि सयन तहां तू जाये ।
इह सुनि भावज के बचना, ताही विधि कीनी रचना ॥७३॥
सज्या परि सूते निसि कौ, चित धरि भाई की दिसि कौं ।
तब ही जु भोगिनी तुरता, विद्या अति सकतिनि जुगता ॥७४॥
सज्या जुत भाई पासे, ले गई महा गुण रासे ।
जब मिले परसपर दोऊ, इक जिन मारग के जोऊ ॥७५॥
मुख पूछि उभै हितरासी, हूये इक ठौंहर वासी ।
प्यारे भाईनि कौ मिलिबौ, या सम नहि मन कौ खिलिबौ ॥७६॥
अब याही देस मझारा, इक नगर सोभपुर भारा ।
दृढ़मित्र भूपाल पवित्रा, ताकै निज भ्रात सुमित्रा ॥७७॥

जाकै 'वसुंधरा' रानी, पुत्री 'श्रीचंद्रा' जांनी ।
सो नवयोवन वुद्धिवंती, अति रूपवती गुणवंती ॥७८॥
इक दिन निज घर आंगन मैं, देखे क्रीडत हित मन मै ।
द्वै जाति परेवा भारी, जिन मै इक नर, इक नारी ॥७९॥
तिनकौं लखि मुरछा आई, जाती समरण उपजाई ।
तव हुती सहैली पासे, ते भई सकल दुख रासे ॥८०॥
चंदन खस सीतल पानी, विभनादि भवकि मतिवांनी ।
संवोधि ताहि सुभ वचनां, मेटी मुरछा की रचनां ॥८१॥
सुनि मात-पिता सुखदाई, कन्या की सखी वुलाई ।
जो अलक सुंदरी नामा, अति चातुरता गुणधामा ॥८२॥
है तिलक चंद्रिका कोया, पुत्री अति चेतन हीया ।
तासौं भाष्यो हे सुमती, तो ढ़िग उपजै नहि कुमती ॥८३॥
पुत्री की प्राण समाना, है सखी महा गुणवांना ।
करि मुरछा कौ उपचारा, तू पूछि सकल परकारा ॥८४॥
तव इह कन्या पैं जाये, पूछन लागी समुझाये ।
तू देवांगन सी कन्या, कहि मुरछा कारण धन्या ॥८५॥
जव श्रीचंद्रा यों वोली, तो मां है वुद्धि अतोली ।
इह नांहि कछू कहवा की, अति परछन वात हिया की ॥८६॥
तौ पनि मैं तो सौ भाषौं, कछु भाव छिपाव न राखौं ।
प्राणनि सौं अधिकी प्यारी, तू कवहु न मोसौं न्यारी ॥८७॥
करि समाधांन चित सुनि तू, मेरे मुख की सव धुनि तू ।
निज पूरव भव संवंधा, भाषौं सव ही परवंधा ॥८८॥
मुहि उपज्यो जाती समरा, उर धरि तू विवरा हमरा ।
ऐसैं कहि वात सुनाई, करि भिन्न भिन्न समझाई ॥८९॥
इह सुनि व्रत्तांत जु जव ही, उर मैं अवधार्यो सव ही ।
तव ही जु गई तजि ता पैं, कन्या के मात पिता पैं ॥९०॥

जा विधि कन्या पैं सुनियों, ताही विधि इन पैं भनियों।
या भवथी पहली तीजे, भव सौ ले वात सुनीजै ॥९१॥

सोरठा

पूर्व भव वर्णन—

हेमांगद इक देश, जहां राजपुर नगर है ।
वरिणक वंस सु भेस, रतन तेज निवसैं तहां ॥९२॥

जाकै नारि सुजांन, नाम रतनमाला सही।
ताकै रूप निधान, नाम अनुपमा पुत्रिका ॥९३॥

गुरण करि अनुपम होई, नही नांम अनुपमा ।
रमा उमा सी सोई, सुन्दर सनमति धारिणी ॥९४॥

ताही नगर मभार, कनकतेज इक सेठ है ।
जाकै रूप अपार, नारि चन्द्रमाला कही ॥९५॥

ताकै सुवरण तेज, पुत्र दुरमती दुरविधो।
जाकै सुभ मैं जेज, असुभ काज मैं सीघ्रता ॥९६॥

पहली जानै नांहि, औगुन सुवरण तेज के ।
रतनतेज मन मांहि, तबै अनुपमा की सही ॥९७॥

करी हुती सुभ जांनि, सेठ सगाई मूढ़ सौं।
पछैं लक्षण पहचानि, करी अवज्ञा सठतनी ॥९८॥

मरिग व्योहारी साह, ताही पुरि गुणमित्र जो ।
करिकैं अधिक उछाह, ताहि दई परणाय सो ॥९९॥

लहि पतिसौं संजोग, अलप काल ही सुख भयो।
तुरत हि हुवो वियोग, जल जात्रा चाल्यो पति ॥१००॥

रतन विसाहन काज, बैठौ साह जिहाज मैं।
बूड़ो वड़ी जिहाज, परी आय जल भवरण मै ॥१०१॥

मरण धनीं कौ जांनि, दुखित भई अति अनुपमा।
महा रूप की खांनि, पति बूड़न ठौहर गई ॥१०२॥
बूडी जल मै जाय, महा मोह परभाव तैं।
भव भव अति दुखदाय, मोह समान न शत्रु को ॥१०३॥
नगर राजपुर मांहि, गंधोतकट सुभ सेठ है।
जा मैं औगुन नांहि, गुन अनेक करि जो भरयो ॥१०४॥
ताके गेह मझार, जनम परेवा को लह्यो।
दोऊ अति हित धार, इक नर इक नारी भई ॥१०५॥
पवनवेग सुभ नाम, भयो कवूतर गुण मिलर।
रतिवेगा अभिरांम, भई परेवी अनुपमा ॥१०६॥
गंधोतकट के पूत, सीखें गुरु पैं अक्षरा।
ए धारैं सव सूत, दोऊ तिन पैं जाय कैं ॥१०७॥
श्रावक व्रत्त प्रवीन, सेठ सेठनी सुभमती।
जिन आज्ञा आधीन, तिनकौं लखिए सुरझिया ॥१०८॥
भये शांति मति धीर, पंषी ही के जनम मैं।
नदी गंग कौ नीर, तिसौ ऊजलौ मन भयो ॥१०९॥
अति हि परसपर नेह, धर्म सनेही अव भये।
वसैं सेठ कै गेह, परम प्रीति के पात्र ए ॥११०॥
सुवरणतेज अयांन, वैर भाव धरि जुगल सौं।
मूवो पाप निधांन, हूवो दुष्ट विलाव सो ॥१११॥
कवहुक इनकौं देखि, महा निरदई पापधी।
अपनौं औसर पेखि, पकरी रतिवेग सुभा ॥११२॥
ग्रसैं राहु ज्यौं क्रूर, चन्द्रकला कौं दुष्ट धी।
त्यौं विलाव अघपूर, ग्रसी कवूतर की तिया ॥११३॥
तवै कवूतर जान, अति ही भिरयो विलाव तैं।
नख पक्षादिक घात, करिकै नारि छुडाय ली ॥११४॥

पकरै पापी याहि, ते तैलोक जु आइया ।
अति हि डरायो ताहि, गयो भागि अति नीच जो ।।११५।।
इक दिनि पापिनि पासि, रची पार ध्यावन विषै ।
तामैं सो गुणरासि, आय गयो परवी व्रती ।।११६।।
रतिवेगा धरि आय, दरसाइ लिखि चूंच सौं ।
तजी कवूतर काय, निरचै धारी सज्जना ।।११७।।
करी दिलासा साह, सवनि सतोषी पक्षणी ।
अति उपज्यो पतिदाह, त्यागे प्राण कवूतरी ।।११८।।
सो जिनधर्म प्रभाव, श्रीचद्रा पुत्री भई ।
तुम्हरै सरल सुभाव, महा गुणवती मतिवती ।।११९।।
आजि क्रीडते देखि, सुघट परेवा दपती ।
निज पूरव भव पेखि, पाय मूरछा भैं परी ।।१२०।।
मो सौ निह सदेह, भासी परभव वारता ।
मैं तुम आगै एह, कही जथारथ नाथ जी ।।१२१।।
अलक सुंदरी वैन, सुनि करि चितातुर भये ।
क्यौं लहिये सुख दन, पूरव भव पति पुत्रिकौ ।।१२२।।
ता विनु या भव माहि, नहि परनै इह सुभमती ।
या कै वाछा नाहि, और पुरप की चित्त मैं ।।१२३।।
पूरव भव व्रत्तांत, श्रीचद्रा को पट्ट मैं ।
लिखवायो अति कात, तवै सुमित्र सु बुद्धि नै ।।१२४।।
रगतेज इक नाम, नटवर गनि मैं अधिक जो ।
मदन लता एक धाम, नटनी नृत्य प्रवीन सो ।।१२५।।
तिन को करि सनमान, दानादिक वहु देय कें ।
सौप्यो पट्ट निधान, सव व्योरौ समुजाय कें ।।१२६।।
नट नटनी पट लेय, पुहपक वन मैं जाय कै ।
फैलायो चित देय, नाचन लागे रीति सौ ।।१२७।।

देखें लोक अनेक, देखि देखि व्हैं अति खुसी।
ताहि वन मैं एक, महा मुनीसुर दिढ़वृती ॥१२८॥
हुते ध्यान लवलीन, ज्ञान परायण पूरणा।
मन उनमन तन खीन, नाम समाविगुप्त जे ॥१२९॥
अर ताही वन मांहि, क्रीडा कौं कन्या पिता।
आयो हो सक नांहि, तहां भेटिया मुनिवरा ॥१३०॥
तीन प्रदक्षण देय, करि वंदन कर जोरि कैं।
जा करि शिव सुखलेय, सो जिन धर्म सुन्यों सुधी ॥१३१॥
सुरग मुकति दातार, धर्म समान न वस्तु को।
जे आतम ध्यातार, ते हो धर्म धरें सही ॥१३२॥
सुनि कैं धर्म सुरूप, पूछयो राय सुमित्र नें।
हे मुनिगण के भूप, कहौ क्रिरपा करि श्री गुरु ॥१३३॥
पूरव भव भरतार, मेरी पुत्री कौ प्रभू।
कौंन सु खेत्र मझार, तिष्टै कौंन दसा धरचा ॥१३४॥
तब बोले मुनिराय, अवधि ज्ञान लोचन महा।
सुनौ सुचित्त लगाय, नगर नाम हेमाभपुर ॥१३५॥
तिष्ठै तहां अनूप, वणिक पुत्र सावंत जो।
जोवन-वंत सुरुप, लखिमीधर भाई नथै ॥१३६॥

छंदबद्ध दोहा

ए सुनि मुनि के वचन विसाला, हरष्यो राव सुमित्रा।
ताही क्षण पुत्री कौं लै करि, चाल्यो बुद्धि विचित्रा ॥१३७॥
संग लये नट नटिनी दोऊ, लये परिग्रह लारा।
पहुच्यो पुर हेमाभ सितावी, जहां पुत्रि भरतारा ॥१३८॥
जाय तहां अर नृत्य नचायो, लोक देखनै आया।
लोक लार नंदाढि हु आया, पट मैं चित्त लगाया ॥१३९॥

उपज्यो जाती समरण याकौ, तुरत मूरछा होई।
सीत क्रिया करि सज्जन लोका, महा मूरछा खोई ।।१४०।।
पूछ्यो जीवंधर नै कारण, मुरछा कौ भाई सौ।
तब नदाढ़ि पट्ट कौ लिखियो, भाष्यो सुखदाई सौ ।।१४१।।
सो गुणमित्र अनुपमा भरता, पाय कवूतर काया।
भयो रावरौ ल्हौरौ भाई, कुल श्रावक कै आया ।।१४२।।
सुनि करि खुसी भयौ जीवधर, थप्यो व्याह सुखदेवा।
प्रथम हि मंगल कारण महती, रची जिनेसुर सेवा ।।१४३।।
सुनौ और व्रत्तांत जु भाई, हरि विक्रम इक नामा।
भीलनि कौ नायक नामी जो, जाकै वहुत हि गामा ।।१४४।।
सो भाइनि के भै तै भागौ, छांडी धरा पुरांनी।
आय कपिछ्य नांम वन मांही, थिरता अपनी ठांनी ।।१४५।।
नाम विसागिर परवत ऊपरि, वनगिर नगर बसायो।
जाकै नारि सुंदरी नामा, सुत वनराज कहायो ।।१४६।।
हरि विक्रम कै प्यारे चाकर, वट वृक्ष जु अर मित्रा।
चित्रसेन फुनि सैधव नामा, वहुरि अरिजय चित्रा ।।१४७।।
शत्रु मर्दनो अति वलवता, ए छह मुखिया गनियां।
अर वनराज पुत्र कै दोई, सखा एक चित भनियां ।।१४८।।
लोहजघ अर है श्रीषेण जु, एक दिवस ए दोई।
नगर सोभपुर गये देखिवा, श्रीचद्रा तिन जोई ।।१४९।।
खेलत ही उपवन कै माहि, वहुत सहैली सगा।
लखि कै याकौ रूप अनुपम, देविनि कौ सौ अंगा ।।१५०।।
करत प्रसंसा जात हुते ए, दाटे घोट कपालां।
ते धारनि कौ पानी पांवन, आये नदी नाला ।।१५१।।
दोऊ भील रोस धरि मन मै, गये आपनै थानै।
वात वनराज कनारे, हरि विक्रम नहि जांनै ।।१५२।।

सुंदर रूप क्रांतिधर कन्या, हम दीखी अद्‌भूता।
अैसी और नहीं मंडल मैं, सुनि किरातपति पूता ॥१५३॥
भयो महा कामातुर पापी, जो अन्याय सुरूपा।
सुवरण तेज वहुरि मंजारा, सो वनराज परूपा ॥१५४॥
पूरव जनम हुती जु सगाई, अव अति आतुर हूवो।
काहू भांति ताहि तुम ल्यावो, दीयो तिनकौं दूवो ॥१५५॥
ते अति जोर चोर अघपूरा, लोहजंघ श्रीषेण।
ले करिकै यक सांवत लारैं, आये कन्या लेण ॥१५६॥
कन्या की सोवनसाला जो, ताहि ठोक करि पापी।
लाय सुरंग सोवती कन्या, लेय गये संतापी ॥१५७॥
डारि गये इक लिखि कैं पत्रा, नाम करण कौं एई।
पहुँचे तुरत भीलपति सुतपैं, राति विषै ही लेई ॥१५८॥
ससि रेखा जुत सनि मंगल ज्यौं, श्रीचंद्रा जुत दोऊ।
लखि करि खुसी भयो वनपति सुत, जोवन छक मति खोऊ ॥१५९॥
प्रात समै वह वांच्यो पत्रा, जांनी भीलां लीनी।
किंनर मित्तर यक्ष मित्र नैं, तवै चढ़ाई कीनी ॥१६०॥
कन्या के भाई ए जोधा, पठए राव सुमित्रा।
तुरत जाय भीलन सौं लरिवा, लागे जुद्ध विचित्रा ॥१६१॥
लोहजघ अर श्रीषेण जु द्वै, लरे वहुत कवरनिसौं।
हारि गये राजा के पुत्रा, जीति सके नहि इनिसौं ॥१६२॥
श्रीचंद्रा ले मौंन जु वैठो, विनु दरसन जिनराई।
अर विनु देखें नगर सोमपुर, भोजन करौं न काई ॥१६३॥
लखि कैं याकौं विरकत चित्ता, वनपति सुत वहु दूती।
तेडी अर तिनपै यों भाषी, याहि करौ रस गूती ॥१६४॥
तव दै आई श्रीचंद्रा ढिग, साम भेद वहु जानैं।
वोलि महासती सौं पापिनि, तू क्यौं चिंता आंनैं ॥१६५॥

करि जु सनान पहरि सुभ कपरा, धारि विभूषण वाई।
फूल माल लै चरचि सुगंधा, लै भोजन सुखदाई ॥१६६॥

करहु सुखनि की वात जु हमसौं, मिनख जनम फल एई।
भोग विमुख मति नरभव खोवै, नव जोवन सुखसेई ॥१६७॥

जौंनि अनेक विषै इह दुल्लभ, ताहू मैं इह रूपा।
नांही वर वनराज सारिखो, पुरुषनि मांहि अनूपा ॥१६८॥

करि अंगीकृत वनपति सुत कौं, चांदिनि ज्यौं चंदर कौं।
आदि चक्रिकौं राजभूति ज्यौं, सची जथा इंदर कौं ॥१६९॥

जैसें भूषण कलप वृक्ष सौं, लपटि रहैं आभरणा।
त्यौं वनराज कंवर सौं सुंदरि, तन मन एकीकरणा ॥१७०॥

लहि करि चिंतामणि कौं सुवुधी, कौन हाथ सौं डारै।
इत्यादिक दूतिनि के वचना, कन्या का मन धारै ॥१७१॥

जब वनराज दिखायो भै अति, सुनी तात ए वातैं।
तब तिह दाख्यो पुत्र कुवुद्धी, करै न अधिकी घातैं ॥१७२॥

अपनी पुत्रिनि भेली राखी, दीनी अधिक दिलासा।
इह तौ मौन लियां ही बैठी, परमेसुर की दासा ॥१७३॥

अब द्रिढ़मित्र सुमित्र आदि सहु, भेले व्है करि भाई।
सजि वजि सेन लेय कैं अधिकी, आये तुरत चलाई ॥१७४॥

घेरचो नगर भील की सीघ्रहि, भील हु लरिवा आया।
जब जीवंधर जीव दयाला, मन मैं मता उपाया ॥१७५॥

नास होयगो वहु जीवनि कौ, या मैं कछु न भलाई।
तव चितयो मन मांहि सुदरसन, जक्ष महा सुख दाई ॥१७६॥

यादि करत ही आयो जक्षा, ल्याय कन्यका दीनी।
कारिज सिद्धि कियो मित्रनि कौं, किसहि न पीरा कीनी ॥१७७॥

पाप भीत जे प्रांनी ज्ञानी, करि उपाय रण टारैं।
काहू कौंन सतावैं कवही, सहजैं काम सुधारैं ॥१७८॥

काज सिद्धि करि रारि मेटि करि, चले आपनैं थांना ।
फुनि वनराज दुष्ट बुद्धि श्रुति, आयो लरन अयांनां ।।१७६।।

तव ताकौं अति नीच पुरिष लखि, पकरयो जक्ष संयानैं ।
सौंप्यो जीवंधर कौं तव तिन, दीयो वंदी खानैं ।।१८०।।

सेना रम्य सरोवर ऊपरि, किये सेन जुत डेरा ।
भोजन कारण चारण मुनिवर, आये सिव सुख हेरा ।।१८१।।

करि वंदन विधि पूरव भोजन, दीयो जीवंधर नैं ।
पंचाचरिज दान परभावैं, पाये गुण ततपर नैं ।।१८२।।

देखि दांन फल त्यागि चित्तमल, तीनहि जनम प्रवंधा ।
लखे भील सुत या भवतांई, जिते हुते संवंधा ।।१८३।।

पुत्र छुडांवन वल ले आयौ, हरि विक्रम अति प्रवला ।
ताहू कौं पकरयो जषि ततखिण, जखि आगैं जन अवला ।।१८४।।

तव वनराज सवनि पैं भाष्यों, सुनौं सकल ही सुवुधो ।
या भवतैं पहली तीजै भव, हुतौ वणिक सुत कुवुधी ।।१८५।।

सुवरण तेज नाम हौ मेरौ, जिन मारग न पिछान्यों ।
सेये सात विसन मैं अति ही, कीयो मन कौ जान्यों ।।१८६।।

मरि करि मारजार हूं हूवो, इक होती जु परेवी ।
मैं पापी मारन कौं दौरयो, महा दुष्टमति सेवी ।।१८७।।

कवहुक कोई मुनिवर स्वांमी, पठत हुते जिनवांनी ।
तामैं चउगति दुख को वरणन, भाषत हे गुणखांनी ।।१८८।।

सुनि करि वैर भाव मैं त्याग्यो, तजि विलाव की देहा ।
लह्यो भील कै कुल मैं जनमा, या सौं धारयो नेहा ।।१८९।।

सुवरण तेज जनम मैं मेरी, यासौं हुती सगाई ।
इह होती जु अनुपमा नामा, मोहि नही परणाई ।।१९०।।

तातैं नेह भाव तैं मोकौं, उपजी हरण-कुवुद्धी ।
सो सव माफ करौ मुझ चूका, तुम हौ महा सुवुद्धी ।।१९१।।

सुनि करि याके वचन संवनि नैं, जांनी वात प्रमाना ।
पूरव नेह थकी इनि ग्रानी, और न कारण जाना ।।१९२।।

तवै क्रोध तजि भये सांत चित, जीवंधर ततकाला ।
पूछि सुमित्र वहुरि दिढ़मित्रैं, छोडे ग्रटवी पाला ।।१९३।।

हरिविक्रम वनराज दुहू सौं, क्षमा भाव करि भाई ।
घर कौं विदा किये तजि दोषा, जिनमति रीति सिखाई ।।१९४।।

सत पुरषनि कैं धरमिक सौं हित, धरम समान न कोऊ ।
ह्यां तै गये नगर हेमाभ जु, दुखियनि के दुख खोऊ ।।१९५।।

दोय तीन दिन रहे तहां फुनि, नगर सोभपुर ग्राये ।
श्रीचंद्रा नंदाढ्य कंवर कौ, दई तहां परणाये ।।१९६।।

ग्रति विभूति सौं भयो विवाहा, जोरी मिली समाना ।
धन जोवन विद्या गुण पूरा, दोऊ रूप निधांना ।।१९७।।

इति श्री जीवधर-स्वामी-चरित्रे महापुराणानुसारि वालावबोध भाषायां पदमोत्तमा विषापहार, पद्मोत्तमा विवाह, सहस्रकूट चैत्यालय कपाट स्वयमेवोदघटन, क्षेमसुंदरी विवाह, धनुर्वेद प्रवीणता, हेमाभा विवाह, नंदाढ्य मिलन श्रीचंद्रा नंदाढ्य पूर्वभव-वर्णन, श्रीचंद्रा हरण, किरातो परिगमन, किरात बंधन, किरात मोचन, नगर सोभपुरे नंदाढ्य श्रीचंद्रा विवाह वर्णनो नाम तृतीयोध्यायः ।।३।।

चतुर्थ अध्याय

छंद भुजंगीप्रयात

जवै होई चूकी विवाहो विधी सौं,
तवै सीख मांगी हितू भूपती सौं
महावीर जीवंधरा लार भाई,
सु हेमाभ नग्रै चले सुक्खदाई ।।१।।

वडी सेन साथे सुपंथा मझारे,
लख्यो एक तालाव डेरा जु द्वारे।
गये लोक पांनी भरीवा कितेई,
डसे दुष्ट माखीनि पीरे घरोई ।।२।।
सुनी वात स्वामी जवै चित्त मांही,
विचारी निसंदेह मांखी जु नांही।
इहां कारणो और होई सुकोई,
तवै चितयो जक्ष भीरी जु सोई ।।३।।
चित तांहि आयो हितू जक्ष राया,
विडारी महा खेचरी नाम माया।
सही खेचरैं लेय आयो जु पावां,
तवै आप पूछी तिसै सुद्ध भावां ।।४।।
किसै हेत रोक्यो इहै तैं तलावा,
तवै खेचरो भासई आप भावा।

पूर्वभव कथा—

सुनौं भव्य मेरी कथा चित्त लाये,
हमारे हि भागें इहां आप आये ।।५।।
हुती एक माली धनाढ्यो महंता,
पुरे राजनग्रे बसै पुष्पदंता।
'त्रिया' नाम ताकै सुकुसुमश्री है,
सुतो जाति भट्टो सु संगाचरी है ।।६।।
तहां ही वसै जू धनंदत्त नामा,
त्रिया नाम नंदी सती सील धामा।
सुतो नाम चंद्राभ मेरो सखा सो,
सही जैनधर्म जिनधीस दासो ।।७।।

तिसै तू कदाचित्त धर्म स्वरूपा,
दिखातौ हुतौ नाथ कारुण्य रूपा ।
तवै मैं हु स्वामी हुवो धर्म रागी,
तजे जू अभक्षा भयो पुण्यभागी ॥८॥

करे आयु पूरी मुवो हूं प्रभूजी,
लह्यो जन्म विद्याधरौ कौ विभूजी ।
इही खेत्र मांहैं सुवैताडि वासी,
गयो एकदा सिद्ध कूटैं विलासी ॥६॥

लखे चारणा दोय साधू महंता,
विनैवंता होई नमें ज्ञानवंता ।
तिहारे हमारे सुनें भौ तहांजी.
तवै देखने तोहि आयो इहांजी ॥१०॥

इहै ताल रोक्यो दियो नां प्रवेसा,
तवै रावरौ दर्स पायो नरेसा ।
कहीं मै तिहारे सुनौ भौ विवेकी,
कहे औधिज्ञांनी करे चित्त एकी ॥११॥

सही धातकी खंड दीपो दिपै जी,
लखें सोभ जाकी सुरालै छिपैजी ।
जहां पूर्व वैदेह क्षेत्रो विसाला,
तहां पुष्कलावत्य देसो रसाला ॥१२॥

वसै पुंडरीकि नृप नग्री सुथांना,
जयंध्रो नृपो नीतिवांनो सुजाना ।
जयावत्य रांनी जयद्रढ पूता,
सवै जैनधर्मी धरे जे विभूता ॥१३॥

गयो एकदा क्रीडनैं राजपुत्तो,
मनोहार वागैं सखा संघ जुत्तो ।
लख्यो हंसवाला जवै चेटकानै,
तवै ल्याय सौंप्यो कुमारैं तिनानैं ।।१४।।

दोहा

करतौ क्रीड़ा सर विषैं, रहतौ माता पास ।
चैन पावतौ तात पैं, धरतौ महा विलास ।।१५।।
तात मात तैं चेटकां, वृथा विछोह्यो वाल ।
कौतुक कौं लीयो कंवर, चरण चूंच चखि लाल ।।१६।।
पोषन कौ उद्यम कियो, राख्यो नीकी भांति ।
पै या विनु क्षण एक नहि, तात मात कौ सांति ।।१७।।
शोक सहित माता पिता, सवद करैं नभ मांहि ।
वारंवार विलाप के, या मैं संसै नांहि ।।१८।।
तवै चेटकां क्रोध करि, मारयो सर तै हंस ।
पापिनि के परिणाम मैं, होय न करुणा अंस ।।१९।।
भागि गई तव हंसनी, लखि पति कौ परलोक ।
सुनि रांनि ए वात सहु, उर मैं धारयो सोक ।।२०।।
चेटक तैं अति कोप करि, पुरतैं दियो निकासि ।
कंवर थकी हू अति खिजी, जीव दया की रासि ।।२१।।
रे रे पुत्र अयान तैं, कियो निंद्य इह काम ।
कनैं राखि खल चेटका, हुवौ पाप कौ धाम ।।२२।।
अव या वालक कौं सही- मां सौं तुरत मिलाय ।
तव हि जयद्रथ कंवर नैं, दयो ताहि पहुँचाय ।।२३।।
अर वहुत हि करुणा करी, मात वचन उर धारि ।
निंद्यो निज कौं अति तिनैं, दई कुसंगति टारि ।।२४।।

दिवस सोल मैं मात पैं, पहुँच्यो बालक सोई ।
लह्यो हंसनी चैंन जब, निज सुत कौ अवलोय ।।२५।।
चातक कौ चउमास ज्यौ, जलधर धारा जोग ।
करिकै अति तिरपत करै, हरै दाह दुख सोग ।।२६।।
त्यौं बालक कौं मात सौं, जयद्रथ कंवर मिलाय ।
कियो सुखी सब दुख हरयो, जिन आज्ञा उर लाय ।।२७।।
चैत्र मास ज्यौं फूल कौं, करै वेलि सजोग ।
भानु उदै अलि कौं जथा, करै कमलिनी जोग ।।२८।।
त्यौं नृप सुतनै हंस सुत, धरयो हंसिनी पासि ।
पर दुख हरण समांन नहि, और पुण्य की रासि ।।२६।।
कैयक दिन घर मैं रहे, सुख सौ कवर सुजान ।
कबहु कलहि वैराग कौ, कारण अति मतिवांन ।।३०।।
राज भार परिवार तजि, ले सिर परि तप भार ।
परम समाधें देह तजि, लह्यो सुरग सुख सार ।।३१।।
सहस्रार नामा सुरग, सही बारमौ होय ।
अष्टादस सागर तहां, सुख लहि चै करि सोय ।।३२।।
भयो धर्म धो अति चतुर, तू जीवंधर नांम ।
हण्यों हंस चेलांनि नै, करि हिंसा परिणांम ।।३३।।
सो काष्टांगारिक भयो, तिह मारयो तुव तात ।
युद्ध विषै जोधा महा, सत्यंधर सुख दात ।।३४।।
हुतौ जयंधर भूप जो, सौं सत्यंधर जांनि ।
अर षोडस दिन तैं जुदौ, मात थकी सुत आंनि ।।३५।।
राख्यो ताके पाप तैं, षोडस वर्ष वियोग ।
तोहि भयौ निज मात तैं, पाप समान न रोग ।।३६।।
ए विद्याधर के वचन, सुनि जीवंधर जाहि ।
गन्यों आपनौं मित्रवइ, अति परसंस्यो ताहि ।३७।।

तहां थकी फुनि गमन करि, कैयक दिन कै मांहि।
पहुचे पुर हेमाभ ए, सुखसौं काल गमांहि ॥३८॥

छंद वेसरी

जीवंधर की तलाश में छहों भाइयों का प्रस्थान—

अब तुम सुनौं और विरतांता, खग पुत्री जीवंधर कांता।
मधुरादिक षट भाइनि तासौं, पूछी वात छिपी नहि जासौं ॥३९॥
कहु गंधर्वदत्ता सुखदाई, कहां गये हमरे द्वै भाई।
तू सब जांनें विद्या रूपा, पतिव्रता जिनधर्म सुरूपा ॥४०॥
तब बोली विद्याधर पुत्ती, अति परवीन बहुत गुण जुत्ती।
सुजन देस हेमाभ सुनग्रा, बहु नग्रनि मैं सो गनि अग्रा ॥४१॥
तहां विराजै दोऊ भाई, अति सुखिया सब कौं सुखदाई।
तुम चिंता कबहू मति आंनौं, मेरे वचन जथारथ मांनो ॥४२॥
तब ए छहौं परम अनुरागी, चले भ्रात देखन बड भागी।
मात पिता की आज्ञा लैकैं, सब ही कौं सुख साता दैकैं ।४३॥
मारग मैं दंडक वन मांही, आय नीसरे संसै नांही।
देखन कौं तपसिनी आई, अद्भुत रूप देखि सुख पाई ॥४४॥

माता विजया से मिलन—

इनकौं लखि करि विजया माता, पूछयो कहां जाहु सुखदाता।
अर आये किस दिसतें भाई, तब इन वात कही समुझाई ॥४५॥
सुनि करि विजया लहि संतोषा, जानी ए सब ही गुण कोषा।
है मेरे सुत को परिवारा, तब इनसौं वोली व्रतधारा ॥४६॥
आजि इहां वसि करि तुम जावो, अर भाई कौं इत ही लावो।
लखि जीवंधर की सौ रूपा, इन जांनीया अतुल अनूपा ॥४७॥
होइ किधौं जीवंधर माता, धर्म धारिणी अघ की घाता।
तब तिन कह्यो करैं हम योंही, माता तुम आग्या दी ज्योंही ॥४८॥

मिष्ट वचन करि अति संतोषी, चले इहां तै षट ए सोषी ।
मारग मांहि लुटेरा आये, तिनसौं रण करि तुरत भगाये ।।४६।।
अपनी इछा जातहु ते ए, सूरवीर बहु वुद्धि जुते ए ।
आय पहौंचे पुर कै पासे, कहौ वात इक और प्रकासे ।।५०।।
अति हेमाभ नगर कौ साथा, लूटयो भीलनि जांनि अनाथा ।
राजद्वार मैं लोक पुकारे, तव जीवंधर आपु पधारे ।।५१।।
जाय भगाय दये वनपाला, वनियनि कौं धायो सव माला ।
तव करि भील मदति षट भाई, लरे भ्रात सौं अति सुखदाई ।।५२।।

जीवंधर से मिलन—

लखि कै निजं भाई कौं नीरा, नाम पत्र जुत भेज्यो तीरा ।
तव जान्यो जीवंधर एहो, मधुरादिक आये अति नेही ।।५३।।
मिले परसपर आठौं भाई, ए हूँ अर वै पट गुणराई ।
नगरि राजपुर की सहु वालां, जीवधर पै करी विख्यातां ।।५४।।
कैयक दिन ह्यां करि विसरामां, कवरैं लेय चले निजधामां ।
आये दंडक वनवर वीरा, आठौं धीर हरैं पर पीरा ।।५५।।

माता से मिलन—

तहां लखी विजया गुणखांनी, अति विलाप जुत सोक निधांनी ।
सुत सनेह तै आंचल जाके, भरि आये पै करि अति ताके ।।५६।।
अश्रुपात परिपूरण नैंना, अति दुरवल तन सर वीलत वैंना ।
बहु चिंता जुत है संतप्ता, जटी भूत सिर केस विषिप्ता ।।५७।।
नित्य निरंतर उश्ननिसासा, तिन करि विवरण अधर उदासा ।
अति मलीन जाके सव दंता, सर्वाभरण रहित दुखवंता ।।५८।।
ज्यौं प्रद्युमनि कौं रुकमणि माता, त्यौं निज सुत कौं इह सुभ गाता ।
चितवंती निज चित्त मझारा, सुत वियोग कौ दुख अतिभारा ।।५६।।

तब ही आय परचो सुत पांवां, हाथ जोरि सिर नमि सुभ भावां।
दई असीस ताहि तब माता, होहु पुत्र तुम्हरै सुख साता ॥६०॥

अति कल्यांण लहौं तुम लाला, मेरी आंखि तुही गुरणपाला।
उठौ उठौ जग के सुखकारी, धर्मवंत जिनमारग धारी ॥६१॥

असे वचन कहे फुनि बोली, चिरजीवो इह तेरी टोली।
तुव दरसन करि लह्यो अनंदा, टूटि गये सब ही दुख फंदा ॥६२॥

या विधि पुत्र थकी सुभ वांनी, भासत ही विजया बुधि वांनी।
एतै ही आई सो जक्षी, जाकै माता की अति पक्षी ॥६३॥

न्हांन विलेपन सब आभरणा, वस्त्रासन भोजन सुख करणा।
पहुप माल औरहु सुभवस्ता, आठनि कौं दीनी परसस्ता ॥६४॥

कियो साहिमी वछल जानैं, साधी जिन मारग विधि तानैं।
करि सतकार गई निजधामा, धर्मवती अति ही अभिरामा ॥६५॥

साचौ मित्रापन है एही, आपद मैं त्यागै न सनेही।
मात लख्यो इह सुत वड़ भागी, प्रथ्वी कौ नायक गुणरागी ॥६६॥

बुद्धि निधांन पराक्रम धारी, अरिगंजन सज्जन सुखकारी।
तब याकौं एकांत जु लैकैं, समझायो अति सिक्षा दैकैं ॥६७॥

माता द्वारा पूर्व वृतान्त कथन—

सत्यंधर तेरौ निज ताता, नगर राजपुर कौ सुखदाता।
महाराज राजनि कौ राजा, सूरवीर सावंत समाजा ॥६८॥

ताकौ जुद्ध विषैं हति भाई, काष्टांगारिक राज कराई।
सो अति नीच तिहारौ सत्रु, तुम तौ सब जीवनि के मित्रू ॥६९॥

तात तनैं थांनक कौ त्यागा, तुम कौं जोग्य नहीं वड़ भागा।
इह सुनि माता कौ आदेशा, कियो पुत्र परमांन असेसा ॥७०॥

सुनिकैं तातघातअति कोपा, उपज्यो अरिपरि सब सुख लोपा।
तौ पनि दाब्यो हिरदा मांही, काहू सौं प्रगट्यो कछु नांही ॥७१॥

निज मन मैं धारी तव स्वांमी, विनां समै सूरत्व न कांमी ।
सव कारिज कौ साधन काला, काल पाय ह्वै धांन विसाला ।।७२।।

तवै मात सौं अमृत वांनी, वोले पुत्र महा सुखदानी ।
तुव परसाद सकल ह्वै नीकी, तुम चिंता मेटौ निज जीकी ।।७३।।

इह कारिज पूरण ह्वै माई, तव नंदाढ्य तो कनै आई ।
तोहि वुलाऊं तव ह्वै साता, तू माता नर देही दाता ।।७४।।

तव तक ह्यां तिष्ठौ सुखरूपा, सोक रहितधरि ज्ञानअनूपा ।
इह कहि सव सामिग्री मा पैं, अर कछुयक परिवार हु तापैं ।।७५।।

राखि आप चाले वुधिवंता, नगर राजपुर कौं वलवंता ।
पहुचे नगर निकटि जव नाथा, मनैं कियो अपनौं सव साथा ।।७६।।

जीवंधर का राजपुर नगर में प्रवेश—

मेरी आवौ गोपिहि राखौ, काहू पासि कछू मति भाखौ ।
भिन्न भिन्न समझाये लोका, आप विचक्षन अति गुन थोका ।।७७।।

जक्ष मुद्रिका कै परभावा, वणिक भेष धारचो सुभ भावा ।
पैसि नगर मैं आनंद रूपा, कोइक देखी हाट अनूपा ।७८।।

तहां विराजे पुण्य निधांना, भाग्यवंत सावंत सुजाना ।
लह्यो लाभ जव साह अपारा, तव तिन जांनीए गुणधारा ।।७६।।

सागरदत्त नाम है जोई, जाकै अमला नारि जु होई ।
विमला पुत्री अति मतिवंती, रूपवती सो वहु गुणवंती ।।८०।।

विमला के साथ विवाह—

आगैं निमति या विधि भाख्यो, कही सांच संदेह न राख्यो ।
जो नर हाटि विराजै आई, होय लाभ ताकरि अधिकाई ।।८१।।

सो विमला परनै सुभकारी, ए सव वात सेठ उरधारी ।
देखि कवर कौं जांनी एही, विद्या निधि अति सुन्दर देही ।।८२।।

तब इनकौं पुत्री परणाई, दियो दायजौ अति अधिकाई।
कैयक दिन सुसराकै स्वामी, रहे महा सुखसौं विसरांमी ॥८३॥

जीवंधर परिव्राजक के भेष में—

एक दिवस परिव्राजक भेषा, धरि करि जाय भूपकौं देषा।
दे आसीरवाद वडभागी, बोले मोहि भूख वहु लागी ॥८४॥
तातैं तोहि जाचनें आये, दै सुभ भोजन भूख नसाये।
जब काष्टांगारिक अज्ञाना, करी इनौं की वात प्रमांना ॥८५॥
तब जीवंधर सकुन विचारयो, निश्चै अपने उर मैं धारयो।
मेरौ उद्यम जो फल रूपा, ताकौं एही फूल अनूपा ॥८६॥
इह चितवन करि भोजन काजैं, वैठे वड आसन प्रभु राजैं।
ले भोजन निकसे जब धीरा, जब बोले मुखतैं वरवीरा ॥८७॥
वसीकरण चूर्णादिक वस्ता, है मोपैं औषध परसस्ता।
जिनकौ फल परतक्ष जु देखौ, मेरौ वचन सांच तब लेखौ ॥८८॥
जाकी रुचि ह्वै ल्यो ए सोई, इन तैं मनमथ जाग्रत होई ॥८९॥
चाहौ जाहि ताहि वसि कारौ, ए मुझ वचन हिया मैं धारौ ॥९०॥
राजद्वार के लोकनि पासे, ऐसी विधि के वचन प्रकासे।
सुनि करि हंसे सकल ही लोका, इन नैं मदन सूत्र अवलोका ॥९१॥
देखौ वृद्ध निलज्ज महा ए, भेष धार गनियें जु कहाए।
मरण काल अति नीरै आयो, तौ पनि मनमथ मैं मनलायो ॥९२॥
चूरण अंजन गांठि कनारै, वसीकरण मोहण उरधारै।
ऐसै कहि हंसि करि सव बोले, तपसी तोमैं लखण अतोले ॥९३॥
सुनि इक वात हमारी भाई, गुणमाला कन्या अधिकाई।
याही पुर मैं सेठ सुता जो, जोवनवंती रूप जुता जो ॥९४॥
आगैं इक जीवंधर नामा, गंधोत्कट सुत वहु गुण धामा।
तानैं चूरण और सराह्यो, अर गुणमाला कौ विसराह्यो ॥९५॥

तव ते पुरष मात्र थी जाकौं, चित्त उदास भयो अवला कौं।
काहू कौ परणें नहि सोई. वसी करै तू तौ अति होई ।।९६।।
तेरी परसंसा जग मांही, सव ही ले औषध सक नांही।
जेतौ मांगें तेतौ मोला, दे तोकौ ले वस्तु अतोला ।।९७।।
सुनि करि वनकी वांनी भाई, वोले भेष धारण गुणराई।
कहा विधी जीवंधर जानैं, चूरण वास कछू न पिछानैं ।।९८।।
तुम्हरे गांव मांहि इक सोई, तरु नहि जहां इरंडहि जोई।
तव सव वोले होय सकोपा, तू तौ तापस पर गुन लोपा ।।९९।।
नीच पुरिष कौ इहै सुभावा, अपने गुन कौ करै प्रभावा।
कहा जथेष्ठ वके विप्रा, तोकौ हम जानें इह लप्रा ।।१००।।
अपनी थुति अर पर की निंदा, न करै तेई जानि जतिंद्रा।
तू दुश्रुत उद्धत अति गर्वा, जानै मैं ही जानौं सर्वा ।।१०१।।
ए सुनि वचन तापसी भाषै, गुन ह्वैं सो छिपिया नहि राखै।
एक महूरत मैं घट दासी, करो सेठ कन्या इह भासी ।।१०२।।

वृद्ध ब्राह्मण के भेष में गुणमाला के पास जाना—

गयो तुरत गुनमाला गेहा, धरि वूढे वांम्हन की देहा।
ताकी दासी लई वुलाई, तासौं यों भाषी द्विजराई ।।१०३।।
तेरी स्वामिनि कौं कहु जाये, वूढ़े विप्र वारणे आये।
तव दासी गुणमाला पासे, जाय करी द्विज वात प्रकासे ।।१०४।।
स्वेछाचारी वांम्हन आयो, ऐसौ वृद्ध न और लखायो।
तव गुणमाला लयो वुलाये, पूछ्यो विप्र कहां तै आये ।।१०५।।
विप्र कहयो पाछातै आवें, अर आगा कौ पाव धरांवें।
तव सव हसी सहेली ताकी सुनि वोली वाम्हन विरधा को ।।१०६।।
वांम्हन कह्यो हसौ मति कोई विरधापन सवही मैं होई।
गनिका विरधा पन नहि चाहै नव जोवन कौं अतिहि उमाहै ।।१०७।।

वाम्हन तापस कौं तौ एही, आभूषण जांनौं जरदेही ।
तव वोली गुणमाला वाई, किती दूर जावो द्विजराई ।।१०८।।
वांम्हन वोल्यो तीरथ तांई, धर्म हेत आगां कौं जांई ।
वांम्हन कौं लखि सेठ सुतानें, जानी मन मैं बुद्धि जुता नैं ।।१०६।।
इह केवल तन ही करि वृद्धा, मन अर वचन देखतां गृद्धा ।
तव याकौं भोजन दै चोखा, भली भांति करि प्राण जु पोखा ।।११०।।
दै भोजन वोली गुण वित्ता अव तुम जाहु जहां है चित्ता ।
वाम्हन कहयो भली तुम भाषी, भोजन मांहि कमी नहि राखी ।।१११।।
करि परसंसा उठनें लागौ, वृद्धा सुरूप धरयां वड भागौ ।
डिगि करि परयो धरणि मैं सोई, फुनि लाठी गहि उठियो जोई।।११२।।
कान्या की सज्या परि एही, जाय परयो वाम्हन जरदेही ।
तव सव सखी सहैली कोंपी, देखौ इन अति लज्या लोपी ।।११३।।
सज्या थंकी उठावन सारी, दौरि चितधरि रोस अपारी ।
वाम्हन कह्यो सत्य तुम भासी, मैं निरलज्ज राग रस रासी ।।११४।।
लज्या तो नारीगण मांही, सोहै बहुरि पुरिष मैं नांही ।
जो नर हू मैं होवै लाजा, तौ नहि होइ भोग कौ काजा ।।११५।।
ए सुनि वृद्ध वाक्य गुणमाला, जानी इह नहि वृद्ध विसाला ।
रूप पलटनी विद्याधारी, है इह कोई गुण निधि भारी ।।११६।।
इह विचारि वोली वुधिवांना, आये द्विज अपनें मिजमांना ।
कहा दोष सज्या परि एही, पौढे रहौ खीण अति देही ।।११७।।
हमरें सज्या और विछावो, ए सज्या एही ले जावो ।
यों कहि सारी सखी निवारी, वसे राति ह्यां द्विज तन धारी ।।११८।।
निसी कौं वाम्हन मतौ विचारयो, शुद्ध सुरनि करि राग उचारयो ।
महा मधुर रस जनमन हारी, कांननि कौ अति आनंदकारी ।।११६।।
सुनि करि सेठ सुता सुख पायो, अैसौ राग किनी न सुनायो ।
आगै जीवंधर नें रागा, गायो हौ चित धरि अनुरागा ।।१२०।।

जब गधर्वदत्ता तिन व्याही, वाम्हन हूं गावै विधि याही ।
उठि कें प्रात समय गुणमाला, वाम्हन कौ करि विनै विसाला ।।१२१।।
पूछन लागी द्विज पति भाषौ, कौन सास्त्र मैं परचै राखौ ।
बोले विप्र सुनौं मृगनैंना, तुमकौं देखि लह्यो हम चैंना ।।१२२।।
धर्म अर्थ कामादिक सारा, हम अभ्यासे ग्रंथ अपारा ।
धर्म अर्थ ए वृक्ष सुरूपा, काम शास्त्र फल रूप अनूपा ।।१२३।।
ताकौ कछु यक कहौ विचारा, सुनौ कान धरि वचन हमारा ।
पञ्चेन्द्री अर विषय जु पंचा, इनही कौ इह सकल प्रपंचा ।।१२४।।
करकस नरम आदि वसु फर्सा, अर मधुरादिक षट रस सर्सा ।
कर्तृम स्वाभाविक द्वय गंधा, ताके भेद सुगंध दुगधा ।।१२५।।
चेतन और अचेतन वस्तू, कुइ दुरगंध कोई परसस्तू ।
रूप पंच विधि है कृश्नादी, स्वर है सप्त भेद षडगादी ।।१२६।।
जीव अजीव संभवा जांनौ, चौदा दूण विषै परवांनौ ।
इष्ट अनिष्ट गने छप्पन्ना, पुण्य जोगतैं इष्ट उप्पन्ना ।।१२७।।
धर्म थकी ह्वै पुण्य निवंधा, अव तुम सुनो धर्म परबंधा ।
जे अजोग्य विषया अन्याया, तिनकौ त्याग सुधर्म बताया ।।१२८।।
तातैं निपध विषै तजि दक्षा, सेवै न्याय विषै सुभ पक्षा ।
काम शास्त्र के पण्डित तेई, कवहु अजोग्य विषै नहि सेई ।।१२९।।
सुनि करि सेठ सुता यो भाषै, वुधजन सोइ जु असुभ न राषैं ।
हमरैं जो कछु लखौ अजोग्या, सोइ छुडावो पंडित जोग्या ।।१३०।।
देहु जोग्य कौ तुम उपदेसा, करौ आपनी दास विसेसा ।
तव पंडित सव कला सिखाई, याकौं वुद्धि दई अधिकाई ।।१३१।।
एक दिवस सहु पुर के लोका, वन विहार कौ गये असोका ।
आपहु गुणमाला लें साथा, वन देखन चाले गुणनाथा ।।१३२।।
लखि एकांत ठौर रमणीका, सेठ सुता जुत वैठे नीका ।
तव याकौ निजरूप दिखायो, परै जाहि लखि सुर सरमायो ।।१३३।।

देखि कन्यका संसैवंती, लज्यावंत भई गुणवंती ।
मौन लेय बैठी शुभ रूपा, कंवर लखी संदेह सुरूपा ।।१३४।।
तबै सबै चूरण वासादी, गुणमाला कौं वात जतादी ।
उपजायो विस्वास विसेषा, वहुरि वरयो विरधा कौ भेषा ।।१३५।।

पहुप सेज परि बैठे वृद्धा, कन्यासौं बोले गुण गृद्धा ।
दावि हमारे पाव जु प्यारी, तू हमसौं कबहू नहिं न्यारी ।।१३६।।

तब वह महा नेह थी पावा, दावन लागी सरल सुभावा ।
देखि राजपुत्रादिक सारा, अचिरज रूप रहे गुण धारा ।।१३७।।

परसंसे मंत्रादिक याके, जस भासे सवनें विरधा के ।
वन तैं आय कही गुणमाला, मात पितासौं वात रसाला ।।१३८।।

जीवंधर आये सुखकारी, तब तिन जांनी मन मैं सारी ।
दई ताहि परणाय कुमारैं, जा लखि सुर तिय अचिरज धारैं ।।१३९।।

ता संजुक्त रहे दिन केई, ससुरा के घरि अति सुख लेई ।
पुण्य प्रभाव सकल सुख होई, पुण्य समान न जग मैं कोई ।।१४०।।

इति श्री जीवंधर-स्वामी-चरित्रे महापुराणानुसारि बालावबोध भाषायां विद्याधर मिलन, पूर्व भव निरूपण, हेमाभपुर आगमन, मधुरादि षट् भ्रातृ मिलन, स्वदेश प्रयांण, दंडक वने-विजया मात दर्शन, यक्षी सत्कार, राजपुरे आगमन, सागरदत्त सुता विमला विवाह, राजद्वार गमन, चूर्णादि वर्णन, गुणमाला -वशीकरण, गुणमाला विवाह, सुखानुभवन निरुपणो नाम चतुर्थोध्यायः ।।४।।

पंचम अध्याय

दोहा

अब ससुरा के घर थकी, चले आपनें गेह ।
नाम विजैगिर गंध गज, चढ़ि करि सुंदर देह ।।१।।

भ्रात सकल ही संग है, अर सेना चतुरंग।
जस गावें जन नगर के, लखि लखि हरषैं अंग ॥२॥

जीवंधर गंधोत्कट मिलन—

गंधोतकट के भाग धनि, धन्य सुनंदा भाग।
जिनकौ सुत गुण जुत महा, धरैं सकल जनराग ॥३॥
कीरति सब के मुख थकी, सुनत सुनत सुकुमार।
पहुँचे निज घरि धर्म धी, हरष सुरूप अपार ॥४॥
गंधोतकट के पाव लगि, लगे सुनंदा पाव।
अति उछाव हूवो तवै, सुनी नगर कै राव ॥५॥
मन मैं धारचो दुष्टमति, काष्टांगारिक कोप।
देखौ वाणिज तनज ए, करी कारिण सब लोप ॥६॥
अति उनमत्त भयो इहै, डरै न मोते रंच।
मंत्री लखि याकौ हृदै, वोले तजि परपंच ॥७॥
इह जीवंधर अति प्रबल, महाभाग मतिवंत।
पूरब पुण्य प्रभाव तै, याकौ उदै अनंत ॥८॥
अर याके घर मैं महा, खग पुत्री परवीन।
है गंधर्वदत्ता सती, रमा तुल्य गुणलीन ॥९॥
जक्ष सुदरसन सारिखे, महा मित्र बलवांन।
कबहू न्यारैं होहि नहि, करे कह्या परवांन ॥१०॥
मधुरादिक साती सखा, साता करी जांनि।
जिन सौ रण मै जीतिवा, समरथ कोइ न मांनि ॥११॥
अर इह डोला अति सुभट, है अभेद्य रण माहि।
तातैं यासो जुद्ध की, मन मैं आवै नाहि ॥१२॥
वलवंतनि सौ वैर करि, सुखी न होवै कोई।
इत्यादिक युक्तिनि करी, समझायो खल सोय ॥१३॥

तब चुप ह्वै रण तें रह्यो, मंत्रिनि की सुनि बात ।
कंवर विराजै धर विषै, रसित सकल उतपात ।।१४।।

कहौं और इक वारता, सुनौं चित्त निज लाय ।
देस विदेह विदेहपुर, है गोपिंद्र सुराय ।।१५।।

रांनी प्रथवी सुंदरी, 'रतनवती' सुभ नांम ।
पुत्री सती सुरूप अति, वहुत गुणनि की धाम ।।१६।।

करी प्रतज्ञा तिन इहै, चंद्रक वेध प्रवीन ।
होय ताहि परनौं सही, परनर सकल अलीन ।।१७।।

याकी परतज्ञा पिता, जांनि विचारी एह ।
जीवंधर सौ या समै, नही सुभट सुभ देह ।।१८।।

धनुरवेद वेत्ता वहै, सकल वेद कौ जांन ।
इह उर धरि कन्या सहित, चाल्यो भूप सुजांन ।।१९।।

रतनावती का स्वयंवर—

गयो राजपुर राजई, ले सामग्रि अनूप ।
रच्यो स्वयंवर जायकैं, अद्‌भुत सोभा रूप ।।२०।।

पठई पत्री सवनिकौं, भूचर खेचर जेहि ।
आए पत्री वांचिकै, नगर राजपुर तेहि ।।२१।।

चंद्रक वेध सथापियो, जहां स्वयंवर साल ।
कोई वेधि सक्यो नहीं, हुते वहुत भूपाल ।।२२।।

देखि सवनिकौं सिथल चित्त, आये सेठ कुमार ।
जीवंधर जोधा महा, सुंदर सुघर अपार ।।२३।।

नमसकार करि सिद्ध कौं, आरजिवर्मा ध्याय ।
जो अपनौं गुर तप निधी, सकल कला कौ दाय ।।२४।।

चाप चढ़ाय लगाय सर, अचल चित्त वरवीर ।
वेध्यो चंद्रक वेध जो, जीवंधर रणधीर ।।२५।।

उदयाचल परि बाल रवि, दिपै जथा तम भेदि।
दिपै सेठ सुत सबसिरै, चंद्रक् वेधहि छेदि ।।२६।।

सिंहनाद करि सुभट अति, गाज्यो नंदा पूत।
गूंजी तब दस ही दिसा, कंपे थिर चर भूत ।।२७।।

नीकै वेध्यो वेध इनि, राखी कसर न कोय।
लागे परसंसा करन, भले पुरिख गुण जोय ।।२८।।

कंठ कंवर कै माल वर, करिकै अधिक सनेह।
घाली रत्नवती तबैं, देख्यो अद्भुत एह ।।२९।।

तब सब सज्जन लोक नैं, कीरति कही वखांनि।
इनकौ संगम जोग्य है, दोऊ सब गुण खांनि ।।३०।।

सरद समै अर हस तति, जथा जोग्य सबंध।
तैसैं कंवरी कंवर कौ, भयो जोगि सनमंध ।।३१।।

जय ह्वै सबही जायगा, पुण्यवतनि कौ ठीक।
यामैं कछु अचिरज नही, इह जांनौ तहकीक ।।३२।।

हुते जिते बुधिवंत नर, किनहि न धार्‌यो रोस।
काष्टांगारिक आदि खल, उपजायो उर दोस ।।३३।।

पहली खग पुत्री वरी, तबकौ लीयां दोस।
रत्नवती कौ रूपलखि, भयो रोस कौ कोस ।।३४।।

जीवंधर द्वारा पत्राचार—

हुवो उद्यमी जुद्ध कौ, कन्या हरणैं काज।
जीवधर लखि विषमतानै प्रवीन गुण राज ।।३५।।

सत्यधर भूपाल के, जिते हुते रजपूत।
कामदार इत्यादि सहु, तिनपैं भेजे दूत ।।३६।।

पठई वस्तु अनेक विधि, लिखे पत्र सुभ रूप।
समाचार तिनमैं इहै, सत्यधर वड भूप ।।३७।।

तिनकौं सुत मैं हौं सही, विजया उदर मझार।
उपज्यो इह निश्चै करौ, यामैं सक न लगार ।।३८।।
को इक कर्म प्रबंध तैं, मोकौं भयो वियोग।
लही वृद्धि मैं सेठ घरि, आय मिल्यो अब जोग ।।३९।।
काष्ठांगारिक पाप धी, तिण लंकरी अर कांस।
वहुरि कोइला वेचतौ, सिर परि ल्यातौ वांस ।।४०।।
काल षेप करतौ कुधी, या विधि पुरकै मांहि।
तासौं तुम्हरे भूप नैं, कमी जु राखी नांहि ।।४१।।
कियो वरावरि आपनीं, दियो मंत्रि पद याहि।
यानैं अवसर पायकैं, रण मैं मार्यो ताहि ।।४२।।
पै पावै जौ सांप कौं, तऊ प्रांण ही लेय।
सो कहवति सांची करी, नरभव कौं जलदेय ।।४३।।
लियो घनी कौ राज इह, अव मैं मारौं याहि।
जाय रसातल मैं घुसैं, तौव न छोडौं ताहि ।।४४।।
मेरौ ई अरि नांहि इह, तुम सवकौ अरि एह।
सेवक मेरे तात के, मोसौं करौ सनेह ।।४५।।
स्वामि धर्मधर सेवका, तिनकौ मारग एह।
हनै स्वामि के शत्रु कौं, त्यागै अपनी देह ।।४६।।
या विधि पत्री वांचिकैं, सवनि लखी मन मांहि।
सत्यंधर कौ पूत इह, यामैं संसै नांहि ।।४७।।

युद्ध वर्णन—

आय मिले तव वहु सुभट, निज निज सेना लेय।
चढ्यो राव सुत अरि परैं, सही नगारा देय ।।४८।।
भयो जुद्ध नाना विधो, मुची सत्रु की सेन।
तव वैरी आयो प्रवल, तऊ आप संकुचेन ।।४९।।

नाम विजै-गिर गंध गज, ता परि चढ़िया आप ।
शत्रु मान मोडन सदा, धारचा अतुल प्रताप ।।५०।।
असनिवेग इक नाम गज, ता सिरि चढ्यो अयांन ।
काष्टांगारिक नीच नर, उद्धत अपजस वांन ।।५१।।
भयो परसपर जुद्ध अति, हत्यो चक्र करि सोय ।
इहै चक्र सामानि है, नही सुदरसन होय ।।५२।।
मूवो लखि अघरूप कौ, भागे ताके लोक ।
तब स्वांमी अति शांत ह्वै, मेट्यो सबको सोक ।।५३।।
करी दिलासा सबनिकी, अभैं घोषणा देय ।
भाइनि सौ अति नेह करि, मिले बगल मैं लेय ।।५४।।
कियो विनै विरधानि कौ, उपजायो संतोष ।
आये जिन मंदिर जबै, जीवंधर गुण कोष ।।५५।।
करी महा पूजा तबै, प्रभु की मंगल रूप ।
दिये दांन दीनानिकौ, कीरति भई अनूप ।।५६।।

राज्याभिषेक--

नर नायक आये बहुत, अर आयो जषिराय ।
कियो राज अभिपेक तिन, दियो तिलक लगि पाय ।।५७।।
परनी रतनवती महा, उछव सौ भूपाल ।
अर गंधर्वदत्ता करी, पटरानी सुभ चाल ।।५८।।
नदाढ्यादिक भेजिकै, लई बुलाय सुमात ।
अर रानी परनी हुती, ते आंनी सुखदात ।।५९।।
सब कटुंब भेला प्रभू, अति ऐश्वर्य सुरूप ।
अंतर बाहिज सत्रु के, जेता अधिक अनूप ।।६०।।
न्याय थकी परजा सकल, पाली परम दयाल ।
भोग भोगये इद्र से, लीला करी रसाल ।।६१।।

एक दिवस सुर मलय पवन, क्रीडा हेत क्रिपाल ।
गये हुते वरधर्म मुनि, देखे तहां विसाल ।।६२।।

नमसकार करि साध कौं, सुन्यौं तत्वं विज्ञान ।
अणुव्रत ले सम्यक सहित, धारचो धर्म सु ध्यांन ।।६३।।

नंदाढ्यादिक भ्रात सब, भये अणुव्रत धार ।
सम्यक जुत धरमातमा, असुभ रहित अविकार ।।६४।।

श्रावक धर्म वर्णन—

सम्यक अर अणुव्रतकौं, सुनौं सुरूप सुजांन ।
धरौ आपने चित्त मैं, लहो सुगति मतिवांन ।।६५।।

देव जिनेसुर जगत वर, गुर मुनिवर व्रतधार ।
धर्म दयामय जांनिये, सौ सम्यक व्यवहार ।।६६।।

अपनौं आतम देव हैं, गुर आतम ही होय ।
वस्तु सुभाव हि धर्म है, इह निश्चै अव जोय ।।६७।।

अनंतानुवंधी महा, क्रोध मान छल लोभ ।
वहुरि तीन मिथ्यात ए, सात प्रकति अति श्रोभ ।।६८।।

इनकौ उपसम क्षय वहुरि, अर षय उपसम होइ ।
तब प्रगटै सम्तक त्रिविधि, मूल व्रत कौ सोय ।।६९।।

सात उपसम्यां उपसमी, क्षयतैं क्षायक जांनि ।
एक उदै व्है सातमी, सौं वेदक परवांनि ।।७०।।

भेदक हे सम्यक्त के, अब सुनि व्रत के भेद ।
महाव्रत अर अणुव्रता, अणता द्वै विधि अथ छेद ।।७१।।

हिंसा मिथ्या वचन अर, चोरी नारी संग ।
परिग्रह त्रिश्ना पंच ए, पाप कुमति कें अंग ।।७२।।

सकल पाप कौ सर वृथा, त्याग महाव्रत जांनि ।
किंचित त्याग अणुव्रता, इह निश्चै परवांनि ।।७३।।

महाव्रत मुनि धर्म है, अणुव्रत श्रावक धर्म ।
श्रावक धर्म ग्यारह विधि, ताकी सुनि अब मर्म ।।७४।।

त्यागै कुविसन सर्वही, तजे अभक्ष अहार ।
सम्यक द्रिग निरमल धरै, पहली पडिमा धार ।।७५।।

वसुमद वसुमल आयतन, षट अर मूढ़त तीन ।
ए पचीस सम्यक मला, तजे प्रथम परवीन ।।७६।।

दूजी पडिमा धार फुनि, धरे अणुव्रत पंच ।
तीन गुण व्रत च्यारि फुनि, सिक्षा व्रत सुभ संच ।।७७।।

त्रस हिंसा परघात वच, परधन अर परनारि ।
अप्रमांण परिगह तज्यां, ह्वै अणुव्रत सुखकारि ।।७८।।

दसौं दिसा परमांण जो, भोगुपभोग प्रमांण ।
अनरथ सवही त्यागिवौ, तीन गुण व्रत जांण ।।७९।।

तीनों संध्या जिन भजन, पोसह च्यारि प्रमांनि ।
अतिथि विभागर नेम निति, चउ सिक्षा व्रत जांनि ।।८०।।

अंतकाल सल्लेखणा, इह व्रत प्रतिमा रीति ।
सुनि तीजी सामायका, धरि करि उर मैं प्रीति ।।८१।।

सामायक समये महा, मुनि सम थिरता होय ।
सो तीजी श्रावक कह्यो, लहै सुगति सुख सोय ।।८२।।

षट चउ द्वै घटिका प्रमा, व्है सामायक काल ।
सोलह वारह वसु पहर, इह पोसह की चाल ।।८३।।
सामायक की सी दसा, पोसह समये होय ।
चौथी पडिमा धार सो, श्रावक सुभमति सोय ।।८४।।
सचित त्याग है पंचमी, छट्ठी दिन तिय त्याग ।
अर निसि कौं भोजन तजन, धारैं ते वड भाग ।।८५।।
सदा सर्वथा नारिकौ, त्याग सप्तमी जांनि ।
तजन सकल आरंभ कौ, ताहि अष्टमी मांनि ।।८६।।

नवमी परिग्रह त्याग है, सुनि दसमी को चाल।
लौकिक वचन न भासई, जीवदया प्रतिपाल ॥८७॥
एकादसमी द्वै विधि, क्षुल्लक ग्रैलि वखांनि।
वनवासी दोऊ सुधी, मुनिवत भोजन मांनि ॥८८॥
क्षुल्लक खंडित वस्त्र इक, अर कोपीन प्रवांनि।
केस मुडावै अरवहै, नहि करपात्र वखांनि ॥८९॥
करपात्री है ग्रैलि सुभ, वस्त्र एक कोपीन।
लोच करै केसांनि कौ, रहै धर्म लवलीन ॥९०॥
क्षुल्लक लौं ग्यारचों वरण, धरै व्रत्त सुभ रूप।
ग्रैलि अर्यका मुनिवरा, तीनहि वर्ण अनूप ॥९१॥
ए एकादस विधि कहो, श्रावक की भगवांन।
तिनमैं दूजी आदरी, जीवंधर गुणवांन ॥९२॥
भाइनि जुत बारह वरत, सम्यक सहित वरेय।
गये आपनैं घरि नृपति, नर भव सफल करेय ॥९३॥
सुखसौं बीतै काल अति, नृप सबके सुखदाय।
एक दिवस वन देखिवा, गये गुणनि के राय ॥९४॥

वनविहार—

वन असोक रमणीक अति, तहां परसपर जुद्ध।
देख्यो बंदर वर्ग मैं, तबै भये प्रतिबुद्ध ॥९५॥
देखौ देखौ जीव जग, करि करि तीव्र कषाय।
भर्मैं सदा ~व वन विषैं, धरि धरि नौतन काय ॥९६॥
कोइक वड़ भागी पुरिष, लहि जिन मारग सार।
लिखकैं आतम तत्व कौं, उतरै भवजल पार ॥९७॥
जग विरकत मत जैन कौं, सधै न घरकैं मांहि।
मोह जाल है घर विषैं, या मैं संसै नांहि ॥९८॥

धंधा विनु नहि होय घर, सो हिंसा कौ मूल।
हिंसा श्री जिनधर्म तैं, है अति ही प्रतिकूल ।।९९।।
इह विचार नृप के भयो, तब ही ता वन माहिं।
एक ठौर देखे मुनी, चारण ऋद्धि धराहिं ।।१००।।

ससार से विरक्ति—

है प्रशस्त वकजु महा, मुनि को नाम रसाल।
अवधिज्ञान धारक गुरु, जीवदया प्रतिपाल ।।१०१।।
तीन प्रदक्षरण देय नृप, करि वदन कर जोरि।
सुन हुते खग मुख श्रवरा, मुनि मुख सुने बहोरि ।।१०२।।
जाय धरै जिन पूजि करि, बढो सुद्धता जोर।
सुन्यो गाव सुभ भावने, वीर मोह मद मार ।।१०३।।
वरधमान सनमति प्रभू, महावीर अतिवीर।
अ तिम तीरथ नाथ जो, तिष्ठै गुरण गम्भीर ।।१०४।।
वन सुर मलय विषै विभू, तव आयो तिह ठौर।
जीवधर धरणीवती, वदे त्रिभुवन मौर ।।१०५।।
सुनि वानी जगदीस की, उपज्यो अति वैराग।
जगत भोग अर देह तै, तूटो मन को राग ।।१०६।।
पटरानी की पुत्र जो, नाम वसु धर ताहि।
सौंपी आप वसु धरा, लख्यो नीति धर जाहि ।।१०७।।
व्हे निरमोही सवनितै, करि सव परिगह त्याग।
आठौ ससुरा आदि वहु, राजनि जुत वड भाग ।।१०८।।
मधुरादिक नदाढ्य जुत, लीयो चारित भार।
भये महाव्रत धारमुनि. जीवधर जगतार ।।१०९।।
वड पुरषनिकी रीति इह, तजि करि जग के भोग।
करि निरवाछक भाव अति, धारै उत्तम जोग ।।११०।।

विजया माता अर सबैं, सासू आठौं जांनि ।
अर रांनी आठौं महा, सब ए गुण की खांनि ॥१११॥
भई अर्यका त्यागि घर, चंदनबाला पासि ।
तारे जीव अनेक कौं, एक जीवगुण रासि ॥११२॥
इह जीवंधर मुनि कथा, कहि बोले गणधार ।
श्री सुधर्म स्वामी तबै, श्रेणिक सौं निरवार ॥११३॥
तुम पूछयो सो मुनि इहै, महा तपोनिधि वीर ।
सांप्रत है श्रुतकेवली, द्वादसांग धरधीर ॥११४॥
च्यारि घातिया घात करि, लहसी केवलज्ञान ।
होसी अग्रह केवली, जगदीसुर जग जांन ॥११५॥
वरधमांन भगवांन कै, साथहि करिजु विहार ।
च्यारि अघाति यहू हते, पासी भवजल पार ॥११६॥
विपुलाचल परवत थकी, जासी जग कै सीस ।
अष्टगुणादि अनंतगुण, धारी अविचल ईस ॥११७॥
ए सुधर्म गणधर तनें, वचनामृत नृप पीय ।
श्रेणिक त्रिप्त भयो महा, जनम सुकारथ कीय ॥११८॥

छप्पै छन्द

जे गंधर्वदत्तादि, अष्टरानी गुन वांनी ।
दुल्लभ और निकौंजु, तेहि परनी सुखदांनी ॥
तात घात को शत्रु, दुष्ट अति काष्टांगारी ।
सो जानें रण मांहि, मारि डारयो दुखकारी ॥
राज कियो जु कितेक दिवसां, फुनि परिगह तजिया सबै ।
अष्ट कर्म से दुष्ट काटे, सकल विरद जिनकौं फबै ॥११९॥
भेदि तिमिर अज्ञान, छेदि करि सर्व विभावा ।
लहि मुकति श्री संग, सोहई सुद्ध सुभावा ॥

जो जीवंधर राय, पंचकायनि तें न्यारौ।
जगत सिरोमणि देव, जगतजित जग कौ प्यारौ।।
नमौं ताहि कर जोरि सिरनमि, भकति भाव उरलाय कैं।
सत्यंधर विजया सुनंदन, सीझ्यो सनमति पाय कै।।१२०।।

कथा का सार—

षोडस दिन परमांन, हंस कौ बालक जानें।
निज माता तें भिन्न, राखियो कुमति प्रवानें।।
पूरब भव कै मांहि, ताहि तें षोडस वर्षा।
मा सौं भयो वियोग, मात नहि पायो हर्षा।।
इह उर मैं धरि भव्य जीवा, सुजन विछोहा जिन करौ।
सकल जीव है आप सरिखा, इह जिन आग्या उर धरौ।।१२१।।
भई तात की मृत्यु, जनम जिन लह्यो मसांना।
भयो सेठ आगमन, सेठ धरि पल्यो सुजानां।।
जपणी कौ उपगार, जक्ष से मित्र विवेकी।
वढ्यो अधिक परताप, शत्रु मारचौ अविवेकी।।
दैव गती है प्रवल अतिही, लखौ बात परतक्ष ए।
जीवंधर कौ सुनि चरित्ता, धरौ जैन मत पक्ष ए।।१२२।।
साध हुवां विन सिद्ध, हुवो नहि जग मैं कोई।
तातें साध समान, आंन उत्तम नहि होई।।
गहौ साध कौ पंथ, जोहि सिवपुर सुखदाई।
पंच प्रकार आचार, धर्म दस लक्षण भाई।।
संजम बारह भेद धारौ, तप द्वादश विधि आचारौ।
अट्ठावीस जु मूलगुण हैं, ते नीकी विधि आदरौ।।१२३।।
उत्तर गुण चौरासि, लाख हें आनंदकारी।
सहन परीसह वीस, दोय अधिका अघहारी।।

मिथ्या मोह मदादि, तिन महँ एक न राखौ।
सम दम यम अर नेम, ध्यान अमृत रस चाख्यौ ॥
तजौ प्रमाद विषाद सारा, नांहि विवाद जु उरधरौं।
भवतन भोग विरत्त चित्ता, दिढ़ वैराग जु अनुसरैं ॥१२४॥
जिन आज्ञा उर धारि, धरौं रतनत्रय त्रिमला।
लखौ आपनौं रूप, शुद्ध बुद्ध जु अति अमला ॥
किये कुमर्ण अनंत, अब धरी परम समाधी।
अक्षय पद आनंद लही, तजि जगत उपाधी ॥
इह जीवंधर चरित्र पूरन, भास्यों महापुरान मैं।
श्री सुधर्म गणधर महंता, ल्याये याहि बखांन मैं ॥१२५.

इति श्री जीवंधर स्वामि चरित्रे ससुरगृहात् निजगृहे गमन परमोत्साह, काष्टांगारिक प्रछन्न कोप, मंत्रिवचनाद्युपशांति, रत्नवती स्वयंवर, चंद्रक वेध वेधन, वरमाला गृहण, काष्टांगारिक रणोद्यम तात भृत्यान्प्रति पत्रिका प्रेषण, सुभटागम, रणे काष्टांगारिक हनन, राज्य लाभ, विजया माता आगमन, सर्व कुटुंब मिलन, प्रजापालन सुखानुभवन, सुरमलयोद्याने क्रीडा हेतु गमन, वरधर्म मुनि दर्शन, भ्रातृ सहित अणुव्रत गृहण, अशोक वने कपि युद्धावलोकन, संसार देह भोग निर्वेगता तत्रैव वने एकान्त स्थाने प्रशस्त वंक नामा चारण मुनि दर्शन, पुनर्भव श्रवण. गृहे गमन, जिन पूजारचन, सुरमलयोद्याने श्री वर्द्धमान स्वामि समवसरणाभिमन श्रवण तत्रागमन, ससुर भ्रातृ मातृ भार्यादि सहित दीक्षा गृहण, केवलोत्पत्तिमोक्ष गमन वर्णनो नाम पंचमोध्यायः ॥५॥

कवि परिचय—

कौंन भांति इह ग्रंथ, देव भाषातैं भाषा।
भयो सु सुनौं धरि चित्त, इक ठौहर राखा ॥
मध्य लोक कैं मांहि, सोहए जंबूदीपा।
सकल दीपकौ एह, दीप मानौं अवनीपा ॥

जामैं क्षेत्र जु भरैथ है इह, ता मांही पट खंड है।
पांच मलेछ जु खंड कहिया, इक आरिज परचंड है ॥१॥

आरिज खंड मभार, देस कहिये जु अनेका।
तिन देसनि कै मांहि, देस मेवाड़ जु एका ॥
उदियापुर ता मांहि, राजधानी अति सोहै।
जगतसिंह महरांण, पाट सीसोदिन को है ॥
मंडी धांन की नगर मांही, जहां जैन मंदिर महा।
तहां टहलवा पंडितो इक, खेतसीह नामा कह्या ॥२॥

दौलतरांम उकील, पुत्र आंनद कौ होई।
ढुंढाहड़ पतिराज, तिनौ कौ सेवक सोई ॥
वासी वसवा को जु, जाति कहिये जु महाजन।
गोत कसिलीवाल, मांहि खंडेल जु वालन ॥
कुल श्रावक कै जनम पायो, कछुयक श्रुत परचै जिसै।
महारांण कै निकट कूरम, महाराज भेज्यौ तिसै ॥३॥

रहै रांण कै पास, रांण अति किरपा करई।
जानै नीको जाहि, भेदभाव जु नहि धरई ॥
सो जिन मंदिर आय, वाचई जिन मत ग्रंथा।
सुनै विवेकी जीव, सरदहै जिनवर पंथा ॥
कैयक कै रुचि बहुत नीकी, आगम अध्यातम तनी।
वाचे ग्रथ कितेक तानै, सैली अति सोभित बनी ॥४॥

वांच्यो महा पुराण, वीस हज्जार सिलोका।
जाकै अंति अनूप, वीर चरित जु गुण थोका ॥
जामैं कथा रसाल, स्वामि जीवंधर केरी।
सुनि करि हरषे भव्य, रतुति कीनी जु घणेरी ॥
तबै बोलियो अग्रवाला, वासी कालाडहर कौ।
चतुर चतुर भुज नांम चरची, ग्रंथ पंथ सिव सहरकौ ॥५॥

देव भाष गंभीर, संसकृत विरला जानैं ।
पंडित करैं वर्षान, अलप मति नांहि वर्षानें ।।
जो ह्वै ग्रंथ अनूप, देस भाषा कै मांही ।
वांचै वहुत हि लोक, या महै संसै नांही ।।
सब गिरंथ की बनि न आवै, तौ इह जीवंधर तनी ।
अवसिमेव करनी सुभाषा, प्रथीराज भी इह भनी ।।६।।

सुनी चतुर मुख वात, सोहि दौलति उरधारी ।
सेठ वेलजी सुधर, जाति हूंमड हितकारी ।।
सागवाड है बास, श्रवण की लगनि घणेरी ।
सब साधरमी लोक, धरै श्रद्धा श्रुत केरी ।।
तिननैं आग्रह करि कही फुनि, दौलति कै मन मैं वसी ।
संसकृत तैं भाष कीनी, इहै कथा है नौर सी ।।७।।

संवत ठारहसैं जु पंच, आषाढ़ सु मासा ।
तिथि दोईज गुरवार, पक्ष सुकल जु सुभ मासा ।।
तीजै पहर सु एह, ग्रंथ सुभ पूरण हूवो ।
श्री जिनधर्म प्रभाव, सकल भव भ्रमतैं जूवो ।।
नंदौ विरधौ जगत मांही, जौ लग चंद दिवाकरा ।
तिष्टौ भव्यनि के हिये मैं, नवरस वरणन तैं भरा ।।८।।

इति श्री जीवंधरस्वामि चरित्रं सम्पूर्णं शुभं भवतु-कल्याणमस्तु ।।६।।

"भग्न पृष्ठि कटि ग्रीवा वक्रहष्टिरधोमुखम् ।
कष्टेन लिखितं शास्त्रं, यत्नेयु परिपाल्यताम् ।।"

विवेक विलास

रचना काल —१८वीं शताब्दि

रचना स्थान :—उदयपुर (राजस्थान)

अथ श्री विवेक विलास भाषा

दोहा

निज धाम वर्णन—

प्रणमि परमर्ष (ऋषि) शांत कौं, प्रणमि धर्म गुरु देव ।
बरणों सुजस सुसील कौं, करि सारद की सेव ॥१॥

सील व्रत कौ नाम हैं, ब्रह्मचर्य सुख दाय ।
जाकरि प्रगटे ब्रह्मपद, भव वन भ्रमण नसाय ॥२॥

ब्रह्म कहावैं जीव सहु, ब्रह्म कहावै सिद्ध ।
ब्रह्म रूप केवल महा, ज्ञान सदा परसिद्ध ॥३॥
ब्रह्मचर्य सौ व्रत्तनां, न परम ब्रह्म सौ कोय ।
व्रतिन ब्रह्म लवलीन सौ, तिरै भवोदधि सोय ॥४॥

विद्या ब्रह्म विज्ञान सी, नहीं जगत में जांनि ।
विज्ञ नहीं ब्रह्मज्ञ से, इह निश्चै परवांनि ॥५॥

ब्रह्म वासना सारिखी, और न रस की केलि ।
विषै वासना सारिखी, और न विष की वेलि ॥६॥

आतम अनुभव सिद्धसी, और न अमृत वेलि ।
नहीं बोध सौ बलवता, देहय मोह कौ ठेलि ॥७॥

अध्यातम चरचा समा, चरचा और न कोय ।
अरचा जिन अरचा समा, नहीं जगत में होय ॥८॥

चरचाकारक लोक मैं, नहिं गणधर से धीर ।
अरचा कारक इन्द्र से, नांहि दूसरे वीर ॥९॥

लोक न चेतन लोक सौं, विश्वविलोक निरूप ।
निज अवलोकनि आ विषै, केवल तत्व स्वरूप ॥१०॥

परकासक दुति धार को, अति दैदप्यि जु मान ।
भाव सोइ निज दीप है, भरयो अनन्त निधान ॥११॥

विश्व प्रदीपक भाव सौ, दीप न सुख की खानि ।
क्षेत्र न कोई स्वक्षेत्र सौ, अक्षय अभय प्रवांन ।।१२।।

खण्डन भाव अखण्ड सौ, परमानन्द निवास ।
स्व प्रदेश सौ देश नहिं, जहां अनन्त विलास ।।१३।।

पुर न अभैपुर सारिखो, जहां काल भैं नाहि ।
निराकार निज रूप सौ, नृप धर नांहि कहांहि ।।१४।।

पुरपति निज चिद्रूप सौ, और न दूजो भूप ।
पुरपति पटरानी महा, सत्तासीन सुरूप ।।१५।।

सत्ति अनतानंत सौ, अन्तहपुर नहिं कोइ ।
महिमा अतुल अपार सौ, सखी समूह न जोइ ।।१६।।

सखा न समरस भाव सौ, एकीभाव लखांहि ।
पासवान परिणाम से, नाहि जगत कै मांहि ।।१७।।

निज विशेषता शुद्धता, अति अनन्तता कोइ ।
बहु विस्तीरणता सदा, ता सम सेनन होइ ।।१८।।

अति प्रतापमय भाव जे, महा प्रभाव स्वरूप ।
उमरावन तिन सारिखे, अद्‌भुत अचल अनूप ।।१९।।

नहिं प्रधान निज ज्ञान सौ, व्यापक सब में सोइ ।
नहिं प्रोहित आनन्द सौ, धर्म मूरती होय ।।२०।।

नहिं अनन्त वीरज जिसौ, सेनापति जयरूप ।
अगम अगोचर भाव सौ, और न दुर्ग अनूप ।।२१।।

नहिं गम्भीर स्वभाव सौ, खाइ अति गम्भीर ।
निश्चल अजित स्वभाव से दुर्गपाल नहिं वीर ।।२२।।

द्वारन आतम ध्यान सौ, अध्यातम कौ सार ।
निरव्रति रूप अनूप है जग परव्रति कै पार ।।२३।।

भाव अछेद्य अभेद्य से, और न कोइ कपाट ।
दरसन बोध चरित्र सौ, और न दूजो वाट ।।२४।।

भाव अनन्त चतुष्टया, तिसे न चौहट ग्रौर ।
व्यापारीन सुभाव से, नहि पुर में झकझोर ॥२५॥
सुद्ध परिणमन सारिखो, व्यापारन हैं वीर ।
अविनश्वरता भाव सौं, धन अटूट नहि बीर ॥२६॥
गुण परणति पर्याय निज, नाना भाव सुभाव ।
पर जातिन सम ग्रौर नहि, द्वैत न भाव लखाय ॥२७॥
भावनि के हि प्रभाव जे, ग्रति प्रभास मय जेहि ।
तिसे न परजा घर विमल, ग्रति सुख पूरण तेहि ॥२८॥
भरयौ भाव सौ पुर महा, वसै जगत कै कूट ।
ईति भीति नहीं पुर विषै, नहीं कपट ग्रर कूट ॥२९॥
निज ग्रवकास बरावरी, ग्रौर न है दौ रास ।
निज उद्यौत विकास सौ राज तेज नहि भास ॥३०॥
सुर नर नारिक पसुनि के, सब ही रूप विरूप ।
विघटि जाहिं क्षण एक में, जामण मरण सरूप ॥३१॥
वस्तु ग्ररूप समान को, ग्रौर न रूप ग्रनूप ।
निजपुर मांहि ग्ररूप सब, जहां न कोइक रूप ॥३२॥
मूरति सूरति याकै नहि, जगत जीवकी कोइ ।
धूरत भाव धरै महा, रागादिक वसि होय ॥३३॥
ग्रातम भाव ग्रमूरता, ग्रदभुत सूरतिवंत ।
राजा परजा एक से, जहां न भेद कहंत ॥३४॥
ग्रातम राजा गुण प्रजा, ग्रौर न राजा रैति ।
सस्त्र न भाव प्रचंड सौ, जाकरि नृप की जैति ॥३५॥
प्रवल स्वभाव बरावरी, कोटवाल नहि कोय ।
चोर न मन इन्द्रीन से, तिन को नाम न होय ॥३६॥
चोरी होय न पुर विषै, जहां न कोई चोर ।
जोरी जारी नांहि कछु, होय न कवहू सोर ॥३७॥

सार भूत निज वस्तु सौ, और न नृप भंडार ।
भंडारी अस्तित्व सौ, और न सरवसु धार ।।३८।।

नहीं धनी सौ दूसरौ, सदा धनी कै पासि ।
सब सामग्री जा कनै, महा सुखन की रासि ।।३९।।

शुध पारणामीक सा, नहीं पारषद कोय ।
कदे न छांडै नृप सभा, सदा हजूरी सोय ।।४०।।

क्षायक सम्यक सारिखा, नहीं महाभड भाव ।
राज शुद्ध भावानि को करै निकंटिक राव ।।४१।।

बाधा रहित स्वभाव सौं अंग रक्ष नहिं वीर ।
नित्य निरंतर भाव से, मित्र न कोई धीर ।।४२।।

श्रेष्ठी श्रेष्ठ सुभाव सौ, नहीं दूसरौ और ।
सोभा पुर की जा थकी, चौहट को सिर मौर ।।४३।।

सर्वोत्तम निज भाव सौ, नहिं सिंहासन कोइ ।
तापरि राजै राजई, सब को नायक सोइ ।।४४।।

आतप हरण स्वभाव से, छत्र न कोई जानि ।
निर्मल भाव तरंग से चमरन दूजे मानि ।।४५।।
चेतनता निज चिह्न से, नहि निसांन परवांनि ।
विस्व विहारी भाव से, अस्व न और बखांनि ।।४६।।

मगन महा गलतान से अति उतकिष्ट स्वभाव ।
तिसे न मत्त मतंगजा, धरै अतुल प्रभाव ।।४७।।
रथ नहि तत्वारथ जिसे, पुरुषारथ तिन मांहि ।
परमारथ परिपूरणां, यामें संसै नांहि ।।४८।।
अनुचर अतिसय से नही, विचरै विश्व मझारि ।
नहि शिवका शिव भाव सी, थिर अर सकल विहार ।।४९।।
सुख न अतिन्द्रिय सारिखौ, सो सुख जहां अनन्त ।
दुख को नाम न दीसई, जहां देव भगवंत ।।५०।।

दुख नहिं इन्द्री भोग सौ, ताको तहां न लेस ।
केवल परमानंदमय, वरतै देस असेस ॥५१॥
आतम अनुभव अम्रता, तिसौ न अम्रत आन ।
खान पान नहि ता समां, इह निश्चै परवांन ॥५२॥
भोजन तृप्ति समांन नहि, सदा तृप्ति वह देस ।
स्वरस सुधारस पीयवौ, नहि त्रसना कौ लेस ॥५३॥
क्षुधा तृषा बाधा नहीं, नहीं काल को जोर ।
जन्म जरा मरणादि नहि, नहीं रैनि नहि भोर ॥५४॥
रागादिक रजनीचरा, तिनकौ नहिं संचार ।
मोह पिशाचान पुर विषै, रोग न सोग लगार ॥५५॥
काम लोभ परपंच ठग, तिन कौ तहां न नाम ।
बसै महा सुख सों सबै, आनंदी अभिराम ॥५६॥
धर्म न वसतु स्वभाव सौं, धर्म रूप पुर सोय ।
राजा परजा धर्म मय, नांहि अधर्मी कोय ॥५७॥
दान न संकल प्रत्याग सौ, त्यागी सब ही भाव ।
रागी कोइ न दीसइ, वीतराग है राव ॥५८॥
सील न विमल स्वभाव सौ, जो अति उजल रूप।
सील रूप राजा प्रजा, नहिं विकार स्वरूप ॥५९॥
तप नहिं वांछा रहित सौ, तहां न वांछ्या होय ।
भाव अनन्त अपार है, जहां कुभाव न कोय ॥६०॥
निज भावन की रम्यता, वहु मनोज्ञता जोय ।
ता सम नन्दन वन नहीं, निज उपवन है सोय ॥६१॥
कहै अमर वन सूत्र में, ताकौ नाम मुनीस ।
रमै अमर वन मैं सदा, चिदानन्द जगदीस ॥६२॥
सघन स्वभावनि सारिखौं, अम्रत व्रक्ष न और ।
ता वन में तें लहलहैं, रमै राव सिरमौर ॥६३॥

रही वेलि विस्तरि जहां, शुद्धातम अनुभूति।
ता समान नहिं सुध लता, केवल भाव विभूति ॥६४॥

परम सुभाव पियूष फल, निज रस पूरण जेहि।
तिन से नाहि सुधा फला, फलि नु रहे अति तेहि ॥६५॥

सदा प्रफूलित भाव से, फूलन और सुगन्ध।
फूलि रहे महकै महा, राजै राव अबन्ध ॥६६॥

अछ वेलि फल फूल ए, तिन करि वन अति रम्य।
जहा न गम्य विभाव की, वस्तु न एक अरम्य ॥६७॥

माया वेलि न है तहां, जहां न विकलप जाल।
क्रोधादिक कंटिक नही, निज वन महा रसाल ॥६८॥

नाहि शुभाशुभ कर्म से, विष तरु विश्व मझारि।
तिन को लेस न है जहां, दुख फल नाहि लगार॥६९॥

दुख फल से नहिं विष फला, देहिं जगत कौ पीर।
मानफूलि से फूल विष, तहां न जानौ वीर ॥७०॥

सुख सरवर सौ सर जहां, भरयौ सहज रस नीर।
तरवर सघन स्वभाव से, तहां विराजै धीर ॥७१॥

केवल कला कलोलनी, वहै निरन्तर शुद्ध।
क्रीडा करै महा सुखी, राजै राजा बुध ॥७२॥

अथग स्वभाव पयोनिधी, स्वच्छ महा गम्भीर।
तिसौ न सागर खीर है, रमै गुणाबुधि वीर ॥७३॥

अति उल्हास विलास मय, आतम सक्ति प्रकास।
ता सम लीला और नहि, यह भासै जिनदास ॥७४॥

अचल उच्च थिर भाव सौ, क्रीडा गिर नहिं कोइ।
क्रीड़ा करै कला निधी, जगत सिरोमणि सोइ ॥७६॥

ज्ञान चेतना परणती, निज सत्ती बहुनाम।
तासौ कमला बुध कहै और न कमला नाम ॥७७॥

सिद्ध अनन्ता सर्व ही, राज करैं या रीति।
निज निज भाव प्रजा सहित, विलसैं सुख जगजीत।।७८।।

जहां न जन्म जरा मरण, जहां न इष्ट वियोग।
रोग न सोग न भोग तन, नहिं अनिष्ट संयोग ।।७९।।

भूख न प्यास न पाप पुनि, त्रिविध ताप नहिं कोइ।
सद्रूपा आनन्दघन, वस्तु अमूरत होइ ।।८०।।

नारि न पुरषन संढ को, नांहि तृषातुर कोय।
लोक शिखर निज क्षेत्र में, शुद्ध सिद्ध अवलोय ।।८१।।

रहित नाम बहु नाम जे, रहित रूप अति रूप।
ते हमकौं निज बोध द्यौ, चिदानन्द चिद्रूप ।।८२।।

लघुता गुरता रहित जे, सदा अगुर लघु जांनि।
सिद्ध अनन्ता सर्व सम, तिन से और न मांनि ।।८३।।

ते भगवन्त जिनेश्वरा, तेहि महेश्वर देव।
शुद्ध बुद्ध योगीश्वरा, करैं सुरासुर सेव ।।८४।।

सर्व व्यापका विष्णु ते, भजै तिनै सुर राय।
लखै ज्ञेय कौ ज्ञान में, तातें कृष्ण कहाय ।।८५।।

सकल वस्तु अवलोकिवौ, रहिवो सब तें भिन्न।
वसिवो आतम भाव में, कबहूं खेद न खिन्न ।।८६।।

सिव कल्याण स्वरूप ते, परम ब्रम्भ परतक्ष।
सदा परोखि अज्ञान कौं, तातै कहै अलक्ष ।।८७।।

ईश्वर समरथ सार जे, परमातम परवीन।
मुक्त सर्व गत विमल ते घट घट अन्तरलीन ।।८८।।

परम पुरष परवान ते, परम जान भगवान।
महादेव महिपाल ते, महाराज गुणवान ।।८९।।

रहित रजोगुण राव जे, रहित तमोगुण भाव।
रहत सुभासुभ संत ते, निर्गुण है निरदाव ॥९०॥

महा महंत अनंत ते, सर्व गुणनि के नाथ।
गुण पर्याय स्वभाव गण, सदा धरचा निज साथ ॥९१॥

रमि जु रहे निज भाव मे, तातें तिनकौ राम।
कहिये सूत्र सिधंत में, रहित क्रोध अर काम ॥९२॥

तीन भुवन के चंद ते, तीन भुवन के सूर।
तीन भुवन के नाथ ते, गुण अनंत भरपूर ॥९३॥

जैसें चितामणि बहुत, सब कौ एक स्वभाव।
तैसे सिद्ध अनंत ही, समभाव दरसाव ॥९४॥

भये अनंता सिद्ध प्रभु, होसी सिद्ध अनंत।
सब की मेरी वंदना, सेवैं साहू महंत ॥९५॥

करै आप सम दास कौ, बड़े गरीब नवाज।
रहित कामना कलपनां, भजै जिनै मुनिराज ॥९६॥

निज दौलति विलसैं सदा, महाप्रभू निजरूप।
बसै भावपुर मै प्रगट, परमानंद स्वरूप ॥९७॥

नाम भावपुर को भया, कहै अभैपुर साध।
बसै सासतौ सुख मइ, जहां न कोइ बाध ॥९८॥

निश्चै वास स्वभाव मैं, व्यवहारे जगसीस।
उपचारे घट घट विषै, व्यापक सदा अधीस ॥९९॥

सब कौ सादि सभाव है, तातै एकहि ईस।
कहिए ग्रंथनि कै विषै, चिदानंद जगदीस ॥१००॥

है अनन्त सब एकसे, तातै एकहि ध्यान।
करै महामुनि भाव सौं, ते पावै निज ज्ञान ॥१०१॥

सिद्ध भक्ति इह भाव धरि, पढै सुनै नर नारि।
ते निरवेद दसा लहैं, जिन आज्ञा उर धारि ॥१०२॥

निश्चै देव निजातमा, व्यवहारै गुरदेव ।
तिरैं भवोदधि ते नरा, करै निजातम सेव ।।१०३।।

जैसे चेतनराव सौं, और न दूजो राव ।
तैसे व्रत में सील सौ, और न कोइ कहाव ।।१०४।।

।। इति निजधाम निरूपणं ।।

आगै ठग ग्राम का वर्णन करै है ।

दोहा

ठग ग्राम वर्णन—

ग्राम ठगनि केतैं प्रभू, काढै त्रिभुवन राय ।
पहुँचावै निजपुर विषै, ताहि नमूं सिर नाय ।।१०५।।

रे जन तूं निज नगर में, यह ठगनि को गांम ।
ठग मोहादि अनन्त है, कौ लग कहिए नाम ।।१०६।।

मोह महा वंचक कुधी, सकल ठगनि को राव ।
ठगै कर्म ठग सबनि कौं, मोह राव परभाव ।।१०७।।

मोह पासि सी है नहीं, फांसी जग मैं आन ।
दे फांसी जग जीव कै, हरै मोह गुण प्रान ।।१०८।।

नहीं मोह निद्रा जिसी, दीरघ निद्रा कोइ ।
सोवै सब जग मोह वसि, ज्ञान चेतना खोइ ।।१०९।।

मोह प्रिया ममता महा, तिसी न ठगनी जोइ ।
ठगै सुरिन्द्र नरिन्द्र कौं, महा मोहनी सोइ ।।११०।।

मायाचारी मोह ठग, इसौ न जगत मझार ।
मोहै महा मुनीनि कौं, सुर नर कपा विचार ।।१११।।

बडे ठगनि मैं दोय ठग, राग दोष बिड़ रूप।
तिनके भुज परताप तैं, मोह जगत को भूप ॥११२॥

राग समांन न राग कर, और सिकारी कोइ।
वस करि सुर नर पसुनि कौ, मारै पापी सोइ ॥११३॥

हरै ज्ञांन से प्राण जो, हरै ध्यांन सौ माल।
लीयां कपट अर कालिमां, करै बहुत बेहाल ॥११४॥

राग प्रीया जु सरागता, जाहि कहै जग प्रीति।
जासौं करि अप्रीति मुनि, हौंहि मुक्ति जग जीति ॥११५॥

विषै प्रीति अनुरागता, अदभुत ठगनी सोइ।
ठग चक्र वर त्यान कौ, बचै कहां तक कोइ ॥११६॥

दोप समान न दुष्टधी, जगत विरोधी जांनि।
करै दौर त्रय लोक में, दौरौ खरौ प्रवानि ॥११७॥

हरै शुद्धता भाव जो, हरै दया सो दर्व।
महा निरदयी दुरमती, धारै अतुलित गर्व ॥११८॥

दोष प्रीया दुर्जन्यता, महा दुष्टता होय।
ठगै जु असुरिन्द्रादि कौ, हरि प्रति हरि कौ सोय ११९॥

काम नाम ठग अति प्रवल, तासम नांहि कुचील।
करै फैल वद फैल बहु, हरै जगत कौं सील ॥१२०॥

कंवर समान जु मोह कै, महा पाप कौ धाम
ठगै देव दैत्यानि कौं, नर पसु सब कौ काम ॥१२१॥

काम प्रीया रति अति बुरी, भव भरमावै सोय।
अनुपम ठगनी है भया, व्रत तप हरणी जोय ॥१२२॥

कंटिक कोइ न क्रोध सौं. हरै प्राण तहकीक।
हरै बुद्धि सौ धन महा, वोलै वचन अलीक ॥१२३॥

उघडौ हथ मारो इहै, महा मोह उमराव।
करता हरता मोह कै, धारै कुबुधि कुभाव ॥१२४॥

ठगै वास देवादि कौं, रुद्रादिक कौं सोय ।
ठगै सुरासुर वर्ग कौं, वचै कहां तै कोय ॥१२५॥

क्रोध प्रिया हिंसा महा, काल रूपणी जोय ।
ठगै सर्वनि कौं सर्वदा, उवरै मुनिवर सोय ॥१२६॥

नांहि कठोर गुमान सौ, चढि जु रह्यो गिरमान ।
गनै तुछ सवकौं सदा, खोसै गुन से प्रान ॥१२७॥

हरै विनै धन सर्वथा, करै वहुत विपरीत ।
ताकै वलि नृप मोह खल, होय रह्यो जु अजीत ॥१२८॥

अति सम्मान गुमान कौ, मोह राज दरवार ।
ठगै फनिन्द्र महिन्द्र कौं, यह ठग असि वलधार ॥१२९॥

मान प्रीया ठगनी वुरी, नाम अहं ता होय ।
अहंकार लीयां सदा, भयंकार अति सोय ॥१३०॥

ठगै जु अहमिंद्रादि कौं, ठगै मुनिनि कौ एह ।
काइक उवरै सांत धी, धारै दसा विदेह ॥१३१॥

कपट समान न कुटिल कौ, सो नृप को परधांन ।
अति छल वल परपंचमय, पाखंडी परवांन ॥१३२॥

ठगै सदा सव को सही, करै जगत कौं वाध ।
कोइ उवरै साधवा, करै जु निज आराध ॥१३३॥

कपट प्रिया है कालिमा, कुटिलाई कौ धाम ।
ठगै नारदा दांनि को, वचैं मुनी तिह काम ॥१३४॥

नहीं लुटेरा लोभ सौ, लूटै त्रिभुवन जोहि ।
सो सेनापति मोह कै, अति कोडीभड़ होहि ॥१३५॥

सुरपति नरपति नागपति, खगपति दलपति जेहि ।
सर्व लुटावें लोभ पै, डंड लोभ कौं देहि ॥१३६॥

लूटै सवकौं सर्वथा, लोभ सर्वदा वीर ।
कोइक लूटे जांहि नहिं, संतोषी मुनिधीर ॥१३७॥

लोभ प्रीया तृष्णा महा, जगत द्रोहणी सोइ ।
सर्व भक्षणी पापणी, मुनि ठगनी है सोइ ॥१३८॥
काइक मुनिवर उवरै, श्री जिनवर परताप ।
तजै भोग त्रिश्ना सवै, सेवै धर्म निपाप ॥१३९॥
निज प्रतीति हर भरम कर, ठग न मिथ्यात समान ।
सो स्वरूप है मोह कौ, कुबुधी पाप निधान ॥१४०॥
प्रीया मिथ्यात मलीन की, महा अविद्या जानि ।
ठगै थावरा जंगमा, जग ठगनी परवानि ॥१४१॥
नही सोच सौ कष्ट कर, सुख हिरदै संताप ।
सोच प्रीया चिंता अरति, उर जावै बहुताप ॥१४२॥
भैकारी है भय महा, मारै चहुँगति मांहि ।
व्याकुलता है भय प्रीया, जामैं आनंद नांहि ॥१४३॥
रोग महाबल तन हरण, मरण करण दुखदाय ।
आधि व्याधि रोग प्रीया, कबहु नहीं सुखदाय ॥१४४॥
सोक हरै आनंद कौं, करैं सबनि को दीन ।
सो प्रीया संतप्तता, करै जगत को छीन ॥१४५॥
अव्रत और असंजमा, विकथावाद विवाद ।
मोह राव के रावता, हर्ष विषाद प्रमाद ॥१४६॥
सब ठग सब पासीगरा, सर्व लुटेरा नीच ।
सब दौरा सब चोर ए, भरे कालिमा कीच ॥१४७॥
ऐ सब ही जु पिसाच हैं, भूत राक्षसा एह ।
दैत्य दानवा दुरमती, एही असुर गनेह ॥१४८॥
ए अजगर अष्टापदा, मत मतंग सिंह सर्प ।
एहि व्याघ्रा है सदा, जीतैं मुनि नरसिंह ॥१४९॥
ए भिडि पाव अनादिका, ए भेरुंड विभ्रुंड ।
दुष्ट एहि चीला महा, एइ मगर प्रचंड ॥१५०॥

ए दावानल दुमइ, ए दुख सागर जांनि ।
इन से दुरजन और नहि, इह निश्चै उर आंनि ॥१५१॥

सत्रु एहि मोहादिका, ए किरात दुखदाय ।
एहि पारधी धीवरा, एहि अहेरी राय ॥१५२॥

एवा गुर अति दोष भर, महा पाप के रूप ।
हिंसक निर्दय दुरजना, ठग पुर मांहि विरूप ॥१५३॥

नांहि ठगोरी लोक मैं, विषै वासना तुल्य ।
महा ईरषा आदि बहु, विष करि पूरण कुल्य ॥१५४॥

भोग भावना सारिखी, भुरकी जग सिर डारि ।
खोंस लेंहि सब ज्ञान धन, डारैं नरक मझारि ॥१५५॥

वात वनाय विजा पते, विषै ठगोरी डारि ।
लै हैं ज्ञान छिपाय धन, तातैं जतन[1] विचारि ॥१५६॥

जतन न कोई दूसरी, करौ निज पुरी वास ।
विलसौ निज धन सासतौ, धारौ अतुल विलास ॥१५७॥

कैसे पहुँचै निज पुरी, लंघि ठगनि कौ ग्राम ।
सो उपाय सुनि चित्त धरि, करहु आतमांराम ॥१५८॥

मोह विदारक सम्यका, राग विड़ार विराग ।
संत भाव है दोष हर, धारैं जाहि सभाग ॥१५९॥

कांम विड़ार विवेक है, मार्दव मान निवार ।
मार्दव कहियै मैंण सौ, नरम भाव अविकार ॥१६०॥

क्रोध निवारक है क्षमा, आर्जव कपट निवार ।
आर्जव कहिये विमलता, महा सरलता सार ॥१६१॥

लोभ विड़ारक लोक में, नहि संतोष समान ।
पाप विड़ारण तप जिसौ, कोइ न दूजौ आन ॥१६२॥

---

१ मूल पाठ चेतन है ।

मोहादिक दोषीनि के हरण हार सुखदाय ।
है अनेक जोधा महा, कौ लग कहै बनाय ॥१६३॥

तिनकौ लारै लेय तू, लघि ठगनि कौ गाम ।
निजपुर माहि बसौ महा, जहा न ठग कौ नाम ॥१६४॥

ठग ग्राम को वर्णना, पढै सुनै जो कोय ।
ठग ग्राम कौ लघि कै, निजपुर वासी होय ॥१६५॥

निज दौलत विलसै महा, रमै सदा निज माहि ।
जामण मरण करै नही, ममता मोह नसाहि ॥१६६॥

॥ इति ठग ग्राम वर्णन ॥

निज वन निरूपण—

दोहा

निज वन मे क्रीडा करै, क्रीडा सिंधु कृपाल ।
ताहि नमू कर जोरि कै, जाहि न व्यापै काल ॥१६७॥

वन नहि निज वन सारिखौ, है अमरण वन एह ।
अमरोद्यान कहै जिसे, परमानन्द अछेह ॥१६८॥

सही अभैवन ए सही, सदा अभैपुर पासि ।
अति रमणीक मनोहरा, सुख अनन्त की रासि ॥१६९॥

इह केली वन हस कौ, हिसा रहित अनूप ।
रमै सात रस धारका, परमहस चिद्रूप ॥१७०॥

नहि कोइल ससार मे, आतम कला समान ।
रसीया आतम केलि के, निज वन वसिया मानि ॥१७१॥

ज्ञान अभै वन मारगा, ज्ञानी जीव विहग ।
तेहि रमै निज वन विषै, क्रीडा करै अभग ॥१७२॥

नहिं सरवर सम भाव से, निज रस पूरित जेह ।
कमलन भाव अलेप से, सदा प्रफुल्लित तेह ॥१७३॥
भमरन भाव रस जसे, भमैं तिनौं परि भूरि ।
इहै रंग वन है भया, सव कुरंग तैं दूर ॥१७४॥
म्रग नहिं चपल स्वभाव से, ते यामें नहि कोय ।
दुष्ट भावमय दुष्ट पसु तिनकौ नाम न होय ॥१७५॥
मोह दैत्य कौ वास नहिं, नाहि किरात कषाय ।
असुर दुराचार न जहां, लोभ चोर न रहाय ॥१७६॥
नहीं दंभ वल छिद्र ठग, नहीं धूर्त पाखंड ।
न परद्रोह दौरा कदे, दौर करें परचंड ॥१७७॥
पाप रूप परपंच नहि, इन्द्री भूत न कोय ।
मदन पिसाच रहै नहीं, अद्भुत वन है सोय ॥१७८॥
नहीं एक कंटिक जहां, जहां न विकलप जाल ।
विष वेलि न मायामयी, सो वन महा विसाल ॥१७९॥
विष वृक्ष न अघ कर्ममय, नांहि कुपक्षि कदाचि ।
जहां क जीवन एक है, रहे ज्ञान घन राचि ॥१८०॥
नहिं दुख फल नहिं दोष दल, नांहि विषै विषफूल ।
सो वन सेय सुजाण तू, जो सव सुख कौ मूल ॥१८१॥
रागादिक रजनीचरा, विचरै तहां न कोय ।
तरवर सघन स्वभाव जे, तिन करि पूरण सोय ॥१८२॥
ते स्वभाव पीयूष तरु, सदा अमर फल दाय ।
यह निज वन रमणीक है, रमैं जहां निजराय ॥१८३॥
शुद्धातम अनुभूति सी, अम्रत लता न कोय ।
सदा प्रफुलित भावमय, अति सुख फल है सोय ॥१८४॥
भाव भवातप हरण से, और पत्र नहिं होय ।
तिन करि सोभित तरलता, अदभुत वन है जोय ॥१८५॥

निरमलता सी वापिका, अर निज रस से कूप ।
निज वन तिन करि सोहइ, अम्रत मइ अनूप ।।१८६।।
केवल कला कलोलनी, जामें सरस कलोल ।
ता सम नाहिं कलोलनी, निज वन मांहि अडोल ।।१८७।।
या सम नंदन वन नही, वंदन जोगि विसाल ।
इह तीरथ निज धाम है, हरै सकल जंजाल ।।१८८।।
रमै सदा या वन विषैं, तेहि लहै आनद ।
या सम रमिवा जोग्य नहि, यह अति रस कौ कंद ।।१८९।।
ज्ञान संपदा सासती, सो निज दोलति जानि ।
निज संपत्ति विलस्या विना, वन केलि न परवानि ।।१९०।।
इह निज वच वर्णन बुधा, पढै सुनै जो कोय ।
निज कानन क्रीड़ा करण, कर्म हरण सो होय ।।१९१।।

।। इति निज वन निरुपणं सपूर्ण ।।

निज भवन वर्णन—

दोहा

भव वन सौ वन नांहि को, गहन विषम अघरूप ।
जहा न रचहु रम्यता, दीसै महा विरूप ।।१९२।।
भव,वन भ्रमण निवारिकै, देय अभयपुर वास ।
वदौ देव दयाल कौ, करै आप सम दास ।।१९३।।
भैकारी भ्रम तम भरयौ, है हिंसा कौ धाम ।
असुरन हिंसक भाव से, वसै वहुत तिह ठाम ।।१९४।।
दैत्य न दुष्ट स्वभाव से, ते विचरैं घन घोर ।
चोर न चाहि स्वभाव से, है तिनकौ अति जोर ।।१९५।।

दैत्य सिरोमणि निरदयी, महा मोह छलवांन ।
ता सम कोइन दुरजनां, सो वन पति वलवांन ॥१९६॥
दुराचार सौ दूसरो, असुभ अवर नहि कोय ।
सो जुगराज महीप कै, कहां भलाई होय ॥१९७॥
राग दोष रजनीचरा, तिसे न राखिस और ।
तेहि मोह नरपति नखं, सुभटनि के सिर मौर ॥१९८॥
पाप समान पिसाच नहि, सो नृप कै परधान ।
सपत विसन सेना सपत, सेनापति अज्ञान ॥१९९॥
नहिं अपराध वरावरी, महा पारधी कोइ ।
सो प्रोहित भूपाल कै, दया कहां तै होय ॥२००॥
परे जगत के जीव सहु, मोह पासि कै मांहि ।
पंथ नगर निरवान कौ, नृप चलिवा दे नांहि ॥२०१॥
करि स्थान भव वन विषै, बैठो मोह भूपाल ।
काल समो विकराल नहि, सो नृप कै कुटवाल ॥२०२॥
करै राज कानन विषै, कुबुधि कुटिल कुरूप ।
मोह राव को राज सव, लखिये पाप स्वरूप ॥२०३॥
ममता पटरांनी महा, मोह भूप कै जांनि ।
धरै ममत्व स्वभाव सो, कुबुधि भूल परवांनि ॥२०४॥
पाप प्रति समान को, और नहीं अन्याव ।
वरतै तहां अन्याव ही, मोहराव परभाव ॥२०५॥
विष व्रक्षन वसु कर्म से, जे अति कंटिक रूप ।
मरण देहि भव भव विषै, छाया रहित विरूप ॥२०६॥
तिन करि पूरण भव वना, मन मरकट की केलि ।
फैलि रही माया तहां, तिसी न विष की वेलि ॥२०७॥
शुद्धातम अनुभुति सी, अम्रत लता न कोइ ।
महा अगोचर है जहां, मरण हरण है सोई ॥२०८॥

सदा सघन अति मगन जे, भाव सुद्ध उपयोग ।
तिनमै अम्रत तरु नहीं, तिनकौ दुर्लभ जोग ॥२०६॥

नाहि कुपत्र कुसूत्र से, तिनही कौ विसतार ।
नाहि सुपत्र सुसूत्र से, तिनकौ तुछ विचार ॥२१०॥

मानफूलि धनफूलि जो, राजफूलि मनफूलि ।
विषै फूलि से विष पहुप, और न जानौं मूलि ॥२११॥

फूलि रहे तेइ तहां. दुखफल फलै अनंत ।
दुख फल से नहि विषफला, इह भासै भगवंत ॥२१२॥

सदा प्रफूलित सहज ही, जे केवल निज भाव ।
तैसे फूलन सुख मइ, तिनकौ अलप लखाव ॥२१३॥

परम भाव अति रस मइ, तिसे सुधा फल नांहि ।
ते अगम्य भव वन विषै, जिन करि सब दुख जांहि ॥२१४॥

शांत भाव सौ मिष्ट जल, अम्रत रूप न कोय ।
सो भव मै मिलवौ कठिन, जा करि तिरपत होय ॥२१५॥

विषै वासना सारिखौ, और न विष जल वीर ।
सो भव वन मै बहुत है, क्षार मलिन जो नीर ॥२१६॥

भरचौ कपट मय कीच सौ, जाकरि त्रिषा न जाय ।
सो पीवै वन जन सवै, मरै रोग दुख पाय ॥२१७॥

मृग त्रिशणा नहि भ्रांतिसी, सो अत्यंन्त लखाय ।
इह वन मृग तिष्णा मई, सब जन सदा भमाय ॥२१८॥

वांसिनि मैं मोती दुलभ, त्यौं भव वन मैं साध ।
कोइक पइए धर्मधो, केवल तत्व अराध ॥२१९॥

गिरन कठौर स्वभाव से, तिनकी भलो न तौर ।
ते भव वन मै मुख्य हैं, महा कष्ठ को ठौर ॥ २२०॥

नला न नीच प्रवृति से, रह्यो तिनौ तें पूरि ।
स्यालन का परभाव से, ते पावन मै भूरि ॥२२१॥

म्रग नहिं मूरिख जीव से, फसै फासि के मांहि ।
करि अनुराग जु राग सौं, व्रथा जीव सौं जांहि ॥२२२॥
अहंकार ममकार से, नांहि अहेरी कोइ ।
भयंकार विचरैं सदा, अंतक सम हैं सोइ ॥२२३॥
जाल न विकलप जाल से, इह बन जाल स्वरुप ।
अति जंजाल भरयो सदा, महा भंयं विड रूप ॥२२४॥
जीवनि के कुल जाति जे, अर नाना विधि वंस ।
तिन सेवां सुन और को, नहि कुभाव से कंस ॥२२५॥
भरयो वंस अर कंस तैं, अंस मात्र सुख मांहि ।
लुटै पंथ निरवांन कौ, वहु पंथी विनसांहि ॥२२६॥
सम्यक दरसण सोइ करण, ता विनु पर की आस ।
घास सोइ तासौं भरयो, भव वन कष्ट निवास ॥२२७॥
नहि कंटिक क्रोधादि से, तिन करि पूरण एह ।
क्रूर भाव से सिंध नहि, भव वन तिन कौ गेह ॥२२८॥
दुरनयवादी जीव से, नांहि कुपक्षी कोय ।
या संसार असार मैं, करै सोर अति सोय ॥२२९॥
नही अजगर अज्ञान सौ, ग्रसै जगत कौं जोय ।
वसै सही भव वन विषै, वचै कहां तैं कोय ॥२३०॥
मद अष्टनि से और को, अष्टापद नहि वीर ।
भव अटवी मैं ते रहै, तिनैं नहीं पर पीर ॥२३१॥
अति उदमाद प्रमाद सौ, मत्त गयन्द न और ।
सो वनगज भव वन विषै, दुष्टनि कौ सिर मौर ॥२३२॥
रहै सदा उनमत महा, काल स्वरूप विरूप ।
थिर चरसे नहि वन चरा, वसै तहां भय रूप ॥२३३॥
पीडै पाप पिसाच अति, दुष्टनि कौ सरदार ।
भूतन इन्द्री पंच से, तिन कौ तहां विहार ॥२३४॥

छल छिद्रनि से और को, नांहि छलावा होय ।
फिरै छलावा वन विषै, वचै कहां तै कोय ॥२३५॥

भव कांतर असा रहै, अति दुष्टनि कौ वास ।
नहि उलूक मिथ्यात सौ, ताकौ तहा विलास ॥२३६॥

काम लोभ परपंच से, ठग नहि कोइ और ।
सदा ठगै भव वन विषै, करै जगत कौ चोर ॥२३७॥

वटयारौ दौरौ बुरो, नहि परद्रोह समान ।
दौर करै परधन हरे, धरै बहुत अभिमान ॥२३८॥

नहि अंधेरि सुभाव से, सुसा औ रहै वीर ।
सिथिल मन्द भाव से, गेडा जानि न धीर ॥२३९॥

भय दायक भावनि से, और नहि भिड़ि पाव ।
भव अरण्य भीतरी भया, तिनको सदा लखाव ॥२४०॥

वाधाकारी भाव से, नाहि वघेरा कोय ।
हठ ग्राहक भावनि से, सूकर और न होय ॥२४१॥

अविवेकी भावनि से, महिष अरण्य न और ।
इत्यादिक खल जीव गरा, दीसै ठौर जु ठौर ॥२४२॥

लोक गमार अजाण जे, तिसे न सांभर रोझ ।
सदा रहै भ्रम भाव मैं, धरै न तप व्रत वोझ ॥२४३॥
इत उत डोलत ही फिरै, अति हि झकोला खाय ।
चितवति चंचल रूप जो, निश्चल कबहु न थाय ॥२४४॥
ता सम और न लौंगती, भव कांतार मझार ।
विचैरे भ्राति भरी सदा, धरै न थिरता सार ॥२४५॥
उड़े फिरै चंचल महा, जे जग के परिणाम ।
तिसे नभे रूंडा गरूड़, तिनकौ भव वन धाम ॥२४६॥
परमहंस मुनिराज से, हंस और नहि कोय ।
तिनकौ भव कानन विषै, दरसन दुरलभ होय ॥२४७॥

नहि सरवर सुख सरसमो, सम रस पूरित नीर ।
ताके भेदी भव्य जन, विरला जांनौ वीर ॥२४८॥
नही वाय जग वायसी, जगत उड़ावा जोइ ।
वाजै अति असराल सो, कंपै थिर चर लोय ॥२४९॥
काय टापरी वापरी, यापै टिकै न कोय ।
निज पद परवत आंसिरो, पकरै उवरै सोय ॥२५०॥
नहि कोपल सारिखी, दावानल विकराल ।
सर्व चराचर भस्म कर, महा तापमय ज्वाल ॥२५१॥
लागि रही भव वन विषै, तापैं बचिवौं नांहि ।
वुझै शांत रस नीर मैं, सो दुर्लभ भव मांहि ॥२५२॥
निज गुर अंबुधि मैं वसै, ताहि न याकौ ताप ।
तातैं सकल विलाप तजि, सेवो आपनि पाप ॥२५३॥
विषै पंच इंद्रीनि के, कालकूट विष तेहि ।
विष कौ मूल भयंकरा, भव कानन है एहि ॥२५४॥
नहि लुटेरा काल सौ, लूटै सरवसु जोहि ।
संक न मानें काइ की, हरै प्राण वन सोहि ॥२५५॥
रागादिक रजनीचरा, विचरै अह निसी वीर ।
रौकै पंचम गति पथा, करै जगत कौं पीर ॥२५६॥
दैति सिरोमणि मोह की, राज महा विपरीत ।
छोटे कौ मोटो गिलै, वसै लोक भैभीत ॥२५७॥
पर पंचक पाखंड से, और दूसरे मांहि ।
तिनकौ अति अधिकार है, मोह राज कै मांहि ॥२५८॥
राज करै पापी जहां, दैत्यनि कौ सिरदार ।
कैसैं चालै धर्म कौं, मारग तहां जु सार ॥२५९॥
दरसन ज्ञान चरित्र से, और न निज पुर पंथ ।
या मारग ह्वै तत्व कौं, पावैं मुनि निरगंथ ॥२६०॥

मोखि मारगी मुनि जिसे, और न जांनौ कोय ।
मोह मांन हरि ग्रांन धरि, निज पुर पहुंचे सोय ।।२६१।।

संजम तप वैराग व्रत, निरत्रिति विषै कषाय ।
संवर निर्जर सुभट ए, भैहारी सुखदाय ।।२६२।।

इन सेयौ लावा नही, भव भै गनैं न मूल ।
पहुँचावे निरवांन ए, कबहु न ह्वै प्रतिकूल ।।२६३।।

क्षायक सम्यक केवला, वीरज और अनंत ।
वर दृग बोध अनंत सुख, द्वै तन भाव कहंत ।।२६४।।

शुद्ध पारिणामीक ए, साथी प्रबल प्रचंड ।
इन से साथी और नहिं, धारै साथ अखंड ।।२६५।।

नहि सेरी जिनवानि सी, दरसिक गुरसे नांहि ।
नगर नही निरवांन सौ, जहां संत ही जांहि ।।२६६।।

भव कांतार वहैतरी, पढै सुने जो कोय ।
सो भव कानन लघि कै, निज पुर नायक होय ।।२६७।।

लहै सासती दौलती, फेरि जु भव वन मांहि ।
उपजै मरण करै नहीं, निज पुर मांहि रहांहि ।।२६८।।

।। इति भव वन निरूपणं ।।

भाव समुद्र वर्णन—

दोहा

चिदानंद चिनमूरती, चेतनराय नरेस ।
रमैं सदा सुख सिंधु मैं, नमैं जाहि जोगेस ।।२६९।।

ताहि प्रणमि नमि मुनिमहा, प्रणमि सार सिद्धान्त ।
निज समुझ वर्णन करू, जा सम और न सांत ।।२७०।।

चेतन सागर सारिखौ, और न सागर क्षीर।
यह अम्रत सागर महा, हरै दाह दुख पीर ॥२७१॥
विमल भाव सौ जगत मैं, होय न निर्मल नीर।
भरयौ विमल जल भाव सौं, गुरण सागर गंभीर ॥२७२॥
लहरिन परमानंद सी, जामै लहरि अनंत।
नंदी न निज परणति जिसी, इह भासै भगवंत ॥२७३॥
वहै प्रखंडित धार जे, निज परणति रस धार।
ते सब निज सागर विषै, मिलै महा अविकार ॥२७४॥
रतनन दरसन ज्ञान से, है रतनाकर एह।
भरयौ भाव रतनांनि तैं, अंबुधि अचल अछेह ॥२७५॥
मुक्त सकल परपंच तैं, जे आतम परिणाम।
ते मुक्ताफल निरमला, सागर तिनकौ धाम ॥२७६॥
उजल उत्तम भाव से, परम हंस नहिं कोय।
यह हंसनि कौ सागरा, अद्भुत अंबुधि होय ॥२७७॥
अस्ति सदा सत्ता धरैं, वस्तु रूप अतिसार।
चेतनता आनंदता, ए निज भाव अपार ॥२७८॥
भाव मइ सागर यहै, भाव समुद्र कहाय।
सुख सागर रस सागरा, नाम अनंत धराय ॥२७९॥
सुख नहिं विषयादिक विषै, सुख आतम रस सार।
मन इंद्री वरजित महा, अविनासी अविकार ॥२८०॥
सुख समुद्र है सासतो, निज गुण रूप अरूप।
लौकिक गुण तैं रहित जो, गुण सागर सद्रूप ॥२८१॥
नाहिं मगन भावानिसे, वन उपवन जग मांहि।
ते सब याकै त्तीर हैं, यामैं संसै नांहि ॥२८२॥
अम्रत वेलि न लोक मैं, निज अनुभूति समान।
सोइ फलि रहि जलधि तटि, अमरण फलर समांन ॥२८३॥

जड सुभाव जलचर नही, चेतन सागर मांहि।
मोह मांन मन मदन छल, मगर न एक रहांहि ॥२८४॥

मृत्यु कारणं दुष्टते, इन से दुष्ट न और।
रस सागर रतनागरा, नहीं तिनो की ठौर ॥२८५॥

धरै पक्ष मिथ्यात की, दया भाव तें दूर।
तेहि कुपक्षी नहि तहां, सागर है सुख पूर ॥२८६॥

जीभ लोलपा मांछला, निठुर काछिवा जेहि।
वृथा विवादी मीडका, सागर मैं नहि तेहि ॥२८७॥

तुछ भाव जे झींगरा, कीट कालिमा रूप।
जल सर्पा जग भावजे, सागर मैं नवि रूप ॥२८८॥

जग जंजाल अनेक जे, ते जल देवत जांनि।
तिनकी तहां न ठाम है, यह निश्चै परवांनि ॥२८९॥

मलिन भाव ही काग जल, जलनिधि में नहि कोय।
मद मछर माछर नहीं, अदभुत सागर सोय ॥२९०॥

पर पीड़ा कर क्षुद्र जे, परिणामा जग माहि।
तेहि डांसरा दुष्ट धी, रस सागर मैं नांहि ॥२९१॥

विषय वासना सारिखी, नहिं वासना कोय।
निज सागर मैं सो नही, सुख सागर हैं सोय ॥२९२॥

विप तरु राग विरोध से, मा पासी विष वेलि।
नहि अमृत सागर नषे, सागर रस की रेलि ॥२९३॥

कृपण भाव कोड़ी नहीं, नांहि मिथ्याती संख।
द्विविधा सीप नहीं जहा, निज सागर मधि वीभ ॥२९४॥

विषम पवन जग वायसी, और न कोइ असार।
सो वाजै नहि जलधि मैं, उदधि अथाह अपार ॥२९५॥

वड़वानल वांछा जिसी, नही विश्व के माहि।
सो नहि विमल पयोधि मे, खल नहि कोइ रहाहि ॥२९६॥

कल हंसन निज केलि से, जिनकौ सदा निवास ।
लहि सरिस समभाव से, तिनकौ सदा विलास ।।२९७।।

राज हंस रिषराय से, और न जानौं वीर ।
क्रीड़ा करें सदा तहां, जहां सहज रस नीर ।।२९८।।

अवर विहंगम मारगा, होंहि सुभाव विहंग ।
तेहि सुपक्षी जलधि में, लीला करें अभंग ।।२९९।।

हिंसा भाव नहीं जहां, है हंसन की केलि ।
सीत न ताप न रैनि दिन, जल निधि रस की रेलि ।।३००।।

क्षार भाव से क्षार जल, जलधि थकी अति दूर ।
सो रतनागर सागरा, गुण अनंत भरपूर ।।३०१।।

नहि विभाव विंतर जहां, असुभ असुर नहि कोय ।
मायाचार न चोर छल, अनुपम सागर सोय ।।३०२।।

पापाचार स्वरूप खल, परिणामा सिंघादि ।
सागर तीर न पाइए, मद परिणाम गजादि ।।३०३।।

कायर चंचल भाव मय, एक न कोइ मृगादि ।
सागर तीर न देखिये, दोष रूप दैत्यादि ।।३०४।।

लोभ लुटेरा नहिं जहां, लूटि सकै नहि कोय ।
दुखदायक दुरभाव नहि, सुखसागर है सोय ।।३०५।।

क्रीड़ा भाव सुभाव ही, क्रीड़ा नाव अनूप ।
क्रीड़ा करै पयौधि में, परमातम निज रूप ।।३०६।।

नाम अनंत पयोव के, महिमां अगम अपार ।
भाव नगर के निकट ही, भाव उदधि अविकार ।।३०७।।

आतम भाव हि नगर है, आतम भाव पयोधि ।
आतम राम ही राव है, यह निज घट मैं सोधि ।।३०८।।

और न भाव प्रपंच कछु, केवल चेतन भाव।
यह निज सागर वर्णनां, उर धारैं मुनि राव ॥३०९॥

॥ इति भाव समुद्र वर्णनं ॥

दोहा

भव समुद्र वर्णन—

या संसार असार में, श्री भगवान अधार।
तेहि उधारैं गुण निधी, करै भवोदधि पार ॥३१०॥

नहिं ससार समुद्र सौं, सागर और विरूप।
यह विष सागर दुख मइ, महा भयंकर रूप ॥३११॥

भोग कामना कलपना, भर्म वासना तेह।
अति कुवासना सौ भरचौ, भव सागर है एह ॥३१२॥

दुख सागर सद्रूप इह, है अत्यंत असार।
क्षार महा विष जलमइ, तै भव पारावार ॥३१३॥

विषै सारिखो जग विषैं, और न है विष नीर।
भव भव उपजावैं मरण, देय सदा दुःख पीर ॥३१४॥

भाव कालिमा सारिखौ, कीच न जग में कोय।
कीच कालिमा सौं भरचो, भव सागर है सोय ॥३१५॥

मल नहिं मोह ममत्व सौं, यह मल सागर पूर।
छल सागर छल सौ भरचो, खल सागर सुख दूर॥३१६॥

भोग भावना अति तृषा, उपजावै संताप।
विषै नीर सौ नहिं बुझे, विरथा विषैं विलाप ॥३१७॥

आतम अनुभव सारिखौ, और सुधारस नांहि।
सो अति दुर्लभ है भया, भव सागर के मांहि ॥३१८॥

लहरि न लोभ तरंग सी, ते भव मांहि अनंत ।
विषै तरंगनि सौं भरचो, दुख दोषनि की कंत ।।३१६।।
नदी न आसा सारिसी, आकुलता जल पूर ।
मिलै सकल भव सिंधु में, रहै जीव अति क्रूर ।।३२०।।
भवरान भ्रम सौं और को, उहै भवरण भ्रम रूप ।
भव समुद्र विड़रूप अति, कहै महामुनि भूप ।।३२१।।
याकै तटि तरवर विषा, विषम भाव अघ रूप ।
तिसे कुलक्षन और को, कंटिक रूप कुरूप ।।३२२।।
वाधा सी विष वेलि नहि, विकलप से नहि जाल ।
ते भव सागर कैं नषैं, दीखैं अति विकराल ।।३२३।।
वन उपवन दुख फल भरे, भव सागर के तीर ।
माया ममता मूरछा, वन देवी है वीर ।।३२४।।
अमृत तरु सम भाव जे, ते सागर तटि नांहि ।
अमरण फल की नाम नहि, मरण सदा भव मांहि ।।३२५।।
अमृत वेलि न विश्व मैं, निज अनुभूति समांन ।
सौ भव सागर सौं सदा, है अति दूर निधान ।।३२६।।
संसै विभ्रम मोहमय, धारै असुर अपार ।
अति अथाह गम्भीर है, फैंकट फे न असार ।। ३२७।।
आदि न अंत न मध्य है, भव सागर की वीर ।
कोइक उथरै धीर नर, तिरै भवोदधि नीर ।।३२८।।
मींनन लम्पट चपल से, तिनकौ अति विस्तार ।
मीन ध्वज से धीवरन, पाय सुरूप अपार ।।३२९।।
धारचां विकलप जाल जे, भाव महा विकराल ।
पकरैं चपल मन मीनकौं, करैं बहुत बेहाल ।।३३०।।
नहि दादर दुरबुद्धि से, वकवादी चल भाव ।
तिनकौ तहां निवासि हैयह भासैं मुनिराव ।।३३१।।

निष्ठुर भाव कठोर जे, तेहि काछिवा जांनि।
भरयो जलचरादिक थकी, जल निधि मांनि ॥३३२॥

अति आलस परमाद से, सूंसि और नहि कोय।
कर्म बंध पर बंध से, नहि तांतुणि जु होय ॥३३३॥

मगर मछ नहि काल सौ, गिलै जगत कौं जोय।
भव सागर मैं सो रहै, बचै कहां तैं कोय ॥३३४॥

महा नून अति तुछ अति, हीन दीन भव भाव।
तेहि झींगरा जानियें, तिनकौ बहुत लखाव ॥३३५॥

कीट न विषै कषाय से, महा मलिन दुख दाय।
काई कर्म कलंक सम, और न कोई कहाय ॥३३६॥

कूड कलंक कलेस भय, भव सागर भय सिंधु।
कोइक उधरे साधवा, रहित सकल परबंध ॥३३७॥

मांछर मछर भाव जे, डांसर दुसह सुभाव।
सागर तीर अपार हैं, यह दुख कौ दरियाव ॥३३८॥

थलचर जलचर नभचरा, थिरचर जग के जीव।
भरयो सदा सब भूत तै, जामैं बहुत कुजीव ॥३३९॥

जामण मरण करैं सदा, दुख देखै मति हीन।
कोइक मुनिवर पार ह्वै, निज आतम लवलीन ॥३४०॥

त्रिविधि ताप संताप तुल, वड़वानल नहि कोय।
सोही भवानल भव विषैं, सदा प्रज्वलित होय ॥३४१॥

जैसैं जल कौ सोसइ, वडवानल जल माहिं।
तैसैं इह जीवन जला, सोसैं संसै नांहि ॥३४२॥

इह नांही रतनाकरा, दोषाकर दुख रूप।
खानि महा मच्छानि की, मकरा कर विड़रूप ॥३४३॥

दुरनय पक्षी सारखे, नांहि कुपक्षी कोय।
करै तेहि अति कुसबदा, सदा सोर अति होय ॥३४४॥

रहित ज्ञान घन जड़ता, जे मिथ्या परिणाम ।
तिन से संख न और को, भव जल तिनकौ धाम ।।३४५।।

संखोल्यो सागर यहै, महा संख अति भंग ।
उतरैं पार पुनीत नर, जे निसंक नहि कंप ।।३४६।।

कृपण व्रति सम लोक मैं, कौड़ी और न कोय ।
भरचौ भवोदधि तिन थकी, नहीं रम्य है सोय ।।३४७।।

कौडचौ सागर है सही, नहीं कौड़ी कौ एह ।
गुण मांणिक के पारखी, तजैं या थकी नेह ।।३४८।।

सीपन द्विविध व्रत सी, हैं द्विविध्या की खांनि ।
सीपोल्यो सागर यहै, रमि वाजे गिन जांनि ।।३४९।।

कागन कोइ कुभाव से, है तिनकी ह्यां केलि ।
वुग नहि ठग भावानि से, तिनकी रेलि जु पेलि ।।३५०।।

जड़ स्वभाव जडतामई, वरजित सम्यक ज्ञान ।
नहि तिनसे जल देवता, रोकैं पथ निरवांन ।।३५१।।

रागादिक अति राक्षसी, दुष्ट भाव दैत्यादि ।
पाप स्वरूप पिसाच बहु, विंतर है विषयादि ।।३५२।।

ते संसार समुद्र में, वसैं सदा विकराल ।
कैसे प्रोहण चलि सकैं, वहै वाय असराल ।।३५३।।

वाय न मिथ्या वायसी, जा करि जग उड़ि जाय ।
गिर नहीं थिरता भाव से, जे निश्चल ठहराय ।।३५४।।

नांहि कुपर्वत लोक मैं, कठिन भाव से कोय ।
कर्कस कटु कषाय वर, निष्ठुर निर वृण होय ।।३५५।।

तैं भवसागर कै विषैं, नाव विहारक वीर ।
अवरहु विघन वहीत हैं, यह सागर गंभीर ।।३५६।।

प्रोहण लूटै जल विषै, सब कौ सरवसु लेय ।
जल दौरा लालच महा, जग कौ वंद करेय ।।३५७।।

तसकर त्रिष्णा भाव जे, चौरें ग्रह निसि माल ।
मालन ज्ञान विराग सौ, हरे जगत जंजाल ।।३५८।।

ग्रभख भक्षका हिसका, तेहि सिंघ व्याघ्रादि ।
ग्रति दोषी विष का भरचा, जेहि जानि सर्पादि ।।३५९।।

सदा भवोदधि के तटैं, मद परिणांम गजादि ।
विचरै कायर चंचला, भाव सुसा मृग ग्रादि ।।३६०।।

वाधक भाव कुभावजे, तेहि व्याघ ग्रति होय ।
ग्रपराधी परिणाम जे, तेहि पारधी जोय ।।३६१।।

मूल महा दुख कौ सदा, भव समुद्र भय रूप ।
जामैं रच न रम्यता, दीसै वहुत विरूप ।।३६२।।

है ग्रछेह ग्रघ गेह यह, लखै याहि ग्रनेह ।
तजें गेह देहादिस्यौ, मोह मुनिद विदेह ।।३६३।।

रतनन निज गुण रतन से, दरसन ज्ञान स्वरूप ।
सत्ता चेतनता महा, ग्रानंदादि ग्रनूप ।।३६४।।

ते ग्रगम्य ग्रति दुर्लभा, जिन करि रोर नसाय ।
रीरन रस ग्रनरस समा, इह निहश्चै ठहराय ।।३६५।।

नहीं रतन की वात ह्यां, कौडिन कौ व्यौपार ।
संख सीप वहुतो सदा, संखनि कौ सरदार ।।३६६।।

निज मणि प्रापति ग्रति कठिन, कोइक पावे धीर ।
सो नर है भव सिंधु मे, तजे तुरत भव नीर ।।३६७।।

विमल भाव परकास मय, निरमल ज्योति सरूप ।
ते मुक्ताफल जानियैं, वस्तू ग्ररूप ग्रनूप ।।३६८।।

तिनकौं दरसन दुर्लभा, भव सागर कै माहि ।
उज्जल उत्तम भाव जे, हंस न यहां रमाहि ।।३६९।।

नाव न मुनि व्रति सारिखी, विरकत भाव निधांन ।
मंडित मूलोत्तर गुणनि, पहुँचावै निरवाण ।।३७०।।
नाम नांव ही कौ महा, भाषै लोक जिहाज ।
जति व्रत रूप जिहाज मैं, राजैं श्री मुनिराज ।।३७१।।
छिद्रण डूवण ग्रहण से, ते न नाव कै कोय ।
इंह अछिद्र नौका महा, भव जल तारक होय ।।३७२।।
संग रहित संजम मई, जब बाजै सुब वाय ।
जति व्रतरूप जिहाज तब, भवसागर तिरिजाय ।।१७३।।
खेवटिया न गुरु समा, जिनके नाहि प्रमाद ।
आप तरैं तारैं रखी, रहित विषाद विवाद ।।३७४।।
श्री भगवान सुजान से, और न सारथवाह ।
भवसागर भय रूप मैं, तेइ करैं निवाह ।।३७५।।
निरय स्वरूप विलास सौं, वरदवान नहि वीर ।
निज चेतन धन ले मुनि, पहुँचे निजपुर धीर ।।३७६।।
धर्म नाव गुर खेवटया, सारथवाह जु देव ।
यह वरणन व्यवहार है, निश्चै आतम एव ।।३७७।।
आतम भाव अनूप जो, ता सम और न दीप ।
भव सागर कै पार है, दिपै सदा दैदीप ।।३७८।।
ताहि कहैं निरवांन अर, मोक्ष हु कहै मुनिंद ।
कहै अभैपुर भावपुर, सिवपुर कहैं अतींद ।।३७९।।
ए निजपुर के नाम सब, फवैं जाहि सब वोय ।
नम्र निरूपम निर्मला, है निरलेप अछोय ।।३८०।।
वसैं दीप सब कै सिरै, जहां न जम कौ जोर ।
चोर न जोर न जार कौं, होय न कवहू सोर ।।३८१।।
दौलति रूप अनूप सौ, दीप दोष तैं दूर ।
संपति ज्ञान विभूति जो, हैं तातैं भरपूर ।।३८२।।

निजपुर वासी होय कैं, भाव समुद्र विलास ।
लहैं भवोदधि तैं सदा, दूर रहैं सुखरास ।।३८३।।

भव समुद्र भव वन इहै, एहि भाव नल रूप ।
अंध कूप विड़रूप इह, तिरैं महामुनि भूप ।।३८४।।

भव समुद्र वर्णन भया, उर धारै जो धीर ।
सो न परै भव सिंधु मैं, तिरै तुरत भव नीर ।।३८५।।

।। इति भव समुद्र वर्णन ।।

दोहा

ज्ञान निरूपण—

अचल अटल अति विमल है, जगदीस्वर जस रासि ।
ताहि प्रणमि नमि सूत्र कौ, श्री गुरु गुण परकासि ।।३८६।।

भाषौ सुथिर सुभावमय, गिरवर अचल सुभाव ।
क्रीड़ानिधि क्रीड़ा करे, जा परि चेतन राव ।।३८७।।

अचल सुथिर सुभाव से, क्रीड़ा गिर नहिं कोय ।
रतनाचल रम्याचला, ताहा न कंटिक जोय ।।३८८।।

अति उतकिष्टे उत्तमा, उच्च सवनितें जेहि ।
अचल भाव ते अचल हैं, और न अचल गनेहि ।।३८९।।

रतन न निज गुण रतन से, अस्ति स्वभाव अनंत ।
चेतनता आदिक महा, थिर गिर मांहि रहत ।।३९०।।
परम पुनीत पदार्थ जे, है तिनकौ यह थान ।
जहां मगन भावानि से, सघन वृक्ष रसवांन ।।३९१।।

भरयो सदा रस वस्तु तैं, अम्रत रूप अनूप ।
जहा कुपक्षी एक नहिं, चंचल भाव स्वरूप ।।३९२।।

उज्जल निर्मल भाव से, परमहंस नहि और।
इहै ज्ञानगिर धर्मगिर, है हंसनि की ठौर ॥३९३॥
निज धारा कल्लोलनी, वहै अखंडित धार।
ता सम ए तटिनि और नहि, जाको पार न वार ॥३९४॥
सो उतरै या गिर थकी, सुख सागर कै मांहि।
सदा समावै सासती, यामैं संसै नांहि ॥३९५॥
गिर परि समरस सरवरा, गिर निज पुर कै पासि।
सदा ज्ञान अनुभूतिमय, वेलि रही परकासि ॥३९६॥
सदा प्रफुल्लित भावमय, फूल रहे अति फूलि।
महा सुधारस भावफल, फलैं हरैं भ्रम भूलि ॥३९७॥
क्रोध अगनि कामागनी, लोभ मोह मय आगि।
देखत ही भावाचला, तुरत जांहि सब भागि ॥३९८॥
ज्ञानागनि ध्यानागनी, धूम रहित परकास।
तेज अगनि प्रज्वलित है, जा करि भर्म न भास ॥३९९॥
धूम न कर्म कलंकसौ, ताकौ तहां न नाम।
नही वाय चल भाव मय, यह परवत निज धाम ॥४००॥
दुष्ट कठोर कुभावजे, पाहण तेहि वखाण।
यह क्रीड़ा गिर थिर गिरा, रमणाचल कहवाय ॥४०१॥
या गिर मैं नहि पाहणा, कंकर कोइ न होय।
क्षुद्र रंक भावानि से, कंकर और न जाण ॥४०२॥
वहै व परि सुसंगता, तिसी न सुन्दर वाय।
है रतननि कौ पर्वता, आपहि मांहै सोय ॥४०३॥
अति हि कृपणता नान्हपन, जाचकता जग मांहि।
तिसी न नांन्ही कांकरी, ते या गिर परि नांहि ॥४०४॥
सठ पसु नहि कामीनि से, ते गिर परी न लगार।
दुष्ट पसु न पिसुनानी से, तिनकौ नहिं संचार ॥४०५॥

पसु न कहावैं पापिया, गहै दोप पर जेहि ।
पिसुन न पेखैं पर्वता, थिरता रूपक देहि ।।४०६।।
गिर परि हिंसा नाम नहि, नहिं हिंसा परिणाम ।
यह पहार निज धाम है, रमैं आतमा राम ।।४०७।।
खल नर खल तिर खल असुर, लखि न सकैं गिरराज ।
दिव्य भाव निज तेहि सुर, तिनके तहां समाज ।।४०८।।
फूलि रहे भावा कमल, अमल अलेप स्वरूप ।
समरस सरवर कै विषै, थिर गिर परि सद्रूप ।।४०९।।
निज रस वेदक भावजे, तेहि भमर भ्रम दूरि ।
ते रमणाचल उपरें, रमैं सदा भूरपूरि ।।४१०।।
आतम अनुभव केलिसी, और न कोइल कोइ ।
सो गिर ऊपरि है धनी, अति सुखदायक सोय ।।४११।।
माया जाल न है तहां, जहां न विकलप जाल ।
विप तरु अघ कर्मन जहां, पर्वत बहुत विसाल ।।४१२।।
विप वेलि न ममता तहां, समता अतुल अपार ।
जे विषफल दुख दोष मय, गिर परि ते न लगार ।४१३।।
नहीं काल अजगर जहां, और न अघकर कोइ ।
है सुखकर इह पर्वता, निजपुर निकट हि होय ।।४१४।।
नहिं कंटिक क्रोधादिका, नहि मन मरकट केलि ।
मोर प्रमोद स्वभाव से, तिन की रेल जु पेलि ।।४१५।।
गुफा ज्ञान मय ध्यान मय, तिन करि सोभित एह ।
सिखर सुधा भावानि से, धारैं अचल अछेह ।।४१६।।
या पर्वत की तलहटी, शुभाचार शुभ रूप ।
अशुभ दैत्य दूरैं रहैं, थिर गिर अमल अनूप ।।४१७।।
महा मुनिंद्र गिरंद्र परि, राजै शांत स्वरूप ।
रहैं राज हंसा सदा, आतम राम अनूप ।।४१८।।

सुख की वात अनन्त है, दुख की एकहु नांहि।
यह सुख सिखरी सर्वथा, नहिं भव सागर मांहि ।।४१९।।

इहै भाव गिर भूप गिर, भाव नगर कै पासि।
विना अभैपुर थिर गिरा, नहि भव वन मैं भासि ।।४२०।।

इह निज क्रीड़ा गिर कथा, उर मैं धारै संत।
सो क्रीड़ा गिर उपरैं, क्रीड़ा करै अनंत ।।४२१।।

क्रीड़ा नाम न और को, क्रीड़ा निज अनुभूति।
जो निज सत्ता मैं रमैं, विलसैं ज्ञान विभूति ।।४२२।।

वस्तु अमूरति चेतना, है अनूपम अविकार।
आपहि निज गिर निजपुरा, आपहि सिंधु अपार ।।४२३।।

आपहि निज सर निजवना, आपहि है रसकूप।
निज विभूति वापी विषैं, केलि करै चिद्रूप ।।४२४।।

।। इति ज्ञान निरूपणं ।।

दोहा

गर्व गिरि वर्णन—

मोह न मान न मनमथा, मन न वचन नहिं देहि।
गेह न नेह न राग रिस, राजै राव अछेह ।।४२५।।

ताहि प्रणमिन भारती, अनेकांत अविकार।
भाषौं मान मही धरा, नमि मुनि संजमधार ।।४२६।।

नहीं मांन गिर सारिखौ, और विष गिर कोय।
महानीच यह गर्व गिर, नीचन को घर होय ।।४२७।।

नर्दय दुष्ट स्वभाव से, और न खल तिरजंच।
या परवत परि वहु रहैं, जिनकै दया न रंच ।।४२८।।

क्रूर दिष्टि कोपाधिका, तेहि केसरी आदि।
जानहु भाव विकार मय, विष भरिया सरपादि ।।४२६।।
उड़ते रहैं विभाव मैं, धरहि कुपक्ष कुभाव।
तेहि कुपक्षी हिंसका, तिनकौ तहां प्रभाव ।।४३०।।
कायर चपल सुभाव जे, वन पसु तेहि मृगादि।
विचरैं गिर परि मैं भरे, भावहि विषय निरादि ।।४३१।।
पातिक से नहि पारधी, अति परपंच स्वरूप।
ते परवत परि अह निसी, फिरैं महा विड़रूप ।।४३२।।
कठिनि कठोर स्वभाव से, और न पाथर जोय।
है पाथर को पर्वता, रतन कहां तैं होय ।।४३३।।
कुटिल कुव्रत्ति कुभाव से, कंकर कोइ न और।
प्राणिनि कौ पीड़ा करैं, यह गिर तिनकी ठौर ।।४३४।।
औरन की नीचै गनैं, इहै नीच अति होय।
क्षुद्र व्रति ते कांकरी, नांन्ही निश्चै जोय ।।४३५।।
पाथर कांकर कांकरी, तिनसौ भरयौ पहार।
महाकष्ट कौ थान इह, तू मति करै विहार ।।४३६।।
है कंटिक क्रोधादिका, मद गिर मांहि अपार।
सदा विपक्षी ह्यां रहै, मिथ्यात्वादि विकार ।।४३७।।
सोर विपक्षनि की सदा, सोर पसुनि कौ बीर।
जोर कुजीवनि कौ तहां, जहां न अमृत नीर ।।४३८।।
नहि अविद्या सारिखी, विषवल्ली विपरूप।
सो गिर परि विस्तरि रही, दुखदायक दुख रूप ।।४३६।।
जाल न माया जाल सौ, यह गिर जाल स्वरूप।
भरयो आल जंजाल कौ, विकलप रूप विरूप ।।४४०।।
विष तरवर नवि भाव से, धरै अनेक विकार।
यह विष वृक्ष मइ सदा, गरव पहार असार ।।४४१।।

है विषफल नरकादि जे, यहं गिर विपफल रासि।
सुभ कौ लेस न है इहां, नहिं गुण मणिया पासि ॥४४२॥
विषै फूलि धन फूलि से, और न विष के फूल।
फूलि रहे तरु तिन थकी, तहां जाय मति भूल ॥४४३॥
सदा कुपत्र परे इहां, महा अपात्र स्वरूप।
मिथ्या सूत्र कुवाय तैं, उड़े फिरें जड़ रूप ॥४४४॥
नहि अध्यातम तन्त्र से, अमृत तरु गिर मांहि।
नहि अध्यातम व्रति सी, अमृत वायु लखांहि ॥४४५॥
नांहि मानगिर कै विषै, सदा प्रफूल्लित भाव ॥
नांहि सुधाफल परमफल, यह गिर विषम लखाव ॥४४६॥
नांहि शुद्धता सारिखी, गिर परि अमृत वेलि।
विमल भान हंसानि की, तहां न कबहू केलि ॥४४७॥
नहि अमृत सरवर जहां, समरस भाव सुरूप।
भरे शांत रस [नीर तैं, दाह हरण सद्रूप ॥४४८॥
भाव अलेय अछेय से, तहां सरोज न कोय।
सर विनु होय सरोज क्यौं, यह निश्चै अवलोय ॥४४९॥
भावरसज्ञ से विज्ञसे, भमर न भमैं कदाचि।
काहै मद गिर ऊपरै, रहे मूढ जन राचि ॥४५०॥
नहीं मगनता भाव मय, या परवत परि मोर।
नहिं कोइल कलकंठ ह्यां, अमृत धुनि मन चोर ॥४५१॥
या गिर तैं नहिं नीसरैं, अमृत सरिता सार।
ज्ञानामृत धारामइ, आनदी अविकार ॥४५२॥
या गिर तैं आसा नदी, वांछा रूप विसाल।
निकलै ममता मूरती, मानो परतखि काल ॥४५३॥
इहा भरे दुख सरवरा, विष जल तैं विकराल।
विचरैं चोर निरंतरा, मन इंद्री असराल ॥४५४॥

ठग न धूर्त भावानि से, इहै ठगनि को थांन ।
पर बाधक अपराध मय, वसैं व्याध बलवान ।।४५५।।

असुर न असुभाचार से, दुराचार के राय ।
यह असुरनि कौ आश्रया, असुराचल कहवाय ।।४५६।।

दैत्य दानवा दुष्ट जन, दगादार सौ काहिं ।
परदुख दायक दुरित धर, रहैं वहुत गिर माहिं ।।४५७।।

नहि पिसाच पापानि से, भूत न भर्म समान ।
वितर नहि विपरीत से, तिनकौ घर गिर मांन ।।४५८।।

इह भूतनि कौ पर्वता, है दैत्यनि को केलि ।
सदा पिसाचनि कौ पुरा, रहे निसाचर खेलि ।।४५९।।

रागादिक रजनीचरा, परवत के सिरदार ।
मोहासुर असुरेस कौ, जिनकी भुज पर भार ।।४६०।।

मदगिर मैं माया गुफा, करै मूर्छा भाव ।
द्रोह सिखर संसै मइ, तहां धरै मति पाव ।।४६१।।

महा वधिक वाधा करा, पशू धार का क्रूर ।
विचरै दुर्जन भाव अति, यह गिर सुख तैं दूर ।।४६२।।

यहै पापगिर तापगिर, कवहूं न क्रीडा जोगि ।
वसै रौद्र भावादिका, पसु नर असुर अजोगि ।।४६३।।

मगलकारी मूलि नहि, सबै अमंगल भाव ।
यहै विघन गिर विषम गिर, धारै वहुत विभाव ।। ६४।।

काम अगनि क्रोधागनी, लोभानल विकराल ।
दोष अगनि दुख अर्गनि अति, काल अगनि असराल ।।४६५।।

मोह अगनि सब मैं सरस, जा करि जगत जलाय ।
यनसी अगनि न लोक मैं, भव भव ताप कराय ।।४६६।।

सप्तार्चा एइ सही, विनु समरस न वुझाय ।
सो समरस नहि गिर विषै, सदा अगनि भवकाय ।।४६७।।

यनसी नांहि दवानला, नहिं वडवानल होय।
नहि वज्रानल विश्व मैं, नहिं प्रलयानल कोय ॥४६८॥

मोहादिक मोटी अगनि, सदा प्रज्वलित रूप।
यह गर्व गिर अगनि मय, दाह रूप विड़ रूप ॥४६६॥

भ्रांति समान न वाय को, वाजै जहां असार।
कहिए झंझा जाहि कौं, धारै महा विकार ॥४७०॥

नहि वन उपवन सुखमई, इहां न रस कौ नाम।
इहै मान अज्ञानमय, नहीं ज्ञान कौ काम ॥४७१॥

लंघि मान गिर मुनिवरा, लेय भाव भड़ लार।
पहुंचै निजपुर धीर धी, जहां न एक विकार ॥४७२॥

यहै मान गिर दोष गिर, भव वन मांहि अनादि।
सिवपुर सौं दूरी सदा, जहां वसैं विरसादि ॥४७३॥

मानाचल की तलहटी, समल सुभाव समस्त।
मानाचल कैं आंसिरौ, होय ज्ञान रवि अस्त ॥४७४॥

वर्णन गर्व पहार कौ, पढैं सुनै जो कोय।
सो मद गिर परि नहि चढै, ग्रढै ज्ञान सुख होय ॥४७५॥

॥ इति गर्व गिर वर्णनं ॥

दोहा

निज गंगा वर्णन—

गुण समुद्र गुणनायको, सतजन सेवैं जाहि।
सो सर्वेसुर सनमति, नमसकार करि ताहि ॥४७६॥
निज सरिता वर्णन करूं, जामैं स्वरस प्रवाह।
जाहि लखें सब दुख मटैं, उपजैं अतुल उछाह ॥४७७॥

नित्य निरंतर निर्मला, निज परणति रस धार ।
वहै अखंडित धार जो, ता सम नदी न सार ।।४७८।।
केवल कला कलोलनी, सदा सहज रस पूर ।
रमैं जा विषै राग हर, निज रसिया भ्रम दूर ।।४७९।।
नहि तरंगनि रंग जसी, उठै तरंग अपार ।
नहीं अंत तटिनि तनौ, यह तटिनी अविकार ।।४८०।।
तट अनेकता एकता, ए द्वय अदभुत रूप ।
भरी शात रस नीर तैं, नदी अनूप सिवरूप ।।४८१।।
पंक न पाप समान को, या मैं पंक न लेस ।
हरै पाप संताप सहु, सरिता रहित कलेस ।।४८२।।
रक भाव जे झींगरा, नांहि नदी मैं कोय ।
डांसर माछर विकलपा तिनकौ नाम न होय ।।४८३।।
जड़ता भाव जु जलचरा, ते न कदाचित जानि ।
जल देवत जग भावजे, कबहु तहां न मानि ।।४८४।।
मगरमछ नहि मोह सौ, महा पाप कौ धाम ।
सो न पाइए ता विषै, रमैं निजातम राम ।।४८५।।
मिथ्या मारग पक्ष धर, तेहि कुपक्षी क्रूर ।
तिनतैं रहित महानदी, सर्व दोष तैं दूर ।।४८६।।
है निकलंक निराकुला, अमृत रूप अबाध ।
निज गंगा तासौं कहै, निज रस रसिया साध ।।४८७।।
कर्म कलंक समान को, और न होय कलक ।
कर्म भर्म हरै नदी, सेवै साधु निसंक ।।४८८।।
कंकर भाव कठोर जे, कृमि कुभावना रूप ।
ते न कदे धारै नदी, अमृत रूप अनूप ।।४८९।।
लोलुपता मय मीन जे, कूरम करकस भाव ।
दुरवादी दादर भया, सरिता मैं न लखाव ।।४९०।।

सरिता तटि तरवर सघन, मगन भावमय होय ।
विषतरु रूप न भाव खल, कंटिक एक न कोय ।।४६१।।

समता रूप लता महा, जिसी न अमृत वेलि ।
सो तटनी तटि लहलहैं, है हंसनि की केलि ।।४६२।।

शुद्ध स्वभावमइ महा, परम हंस मुनिराय ।
तजें न तटिनी कौ तटा, भव आताप बुझाय ।।४६३।।

माया वेलि न विषमइ, नहीं कलपना जाल ।
नांहि कलिमा कीट अर, संसै रूप सिंवाल ।।४६४।।

उठै परम द्रह मांहि तैं, मिले महोदधि मांहि ।
इह अमूर्ति गंगा भया, चेतन पुरुष लहांहि ।।४६५।।

नांहि रजोगुण रूप रज, नांहि तमो गुण मैल ।
नदी निकट नहि नीच नर, नांहि कोइ वद फैल ।।४६६।।

नदी अनादि अनंत इह, छेह न जाको होय ।
वहै भाव की भूमि मैं, विरला बूझै कोय ।।४६७।।

सरिता सत्ता रूप यह, अति कल्लोल स्वरूप ।
केलि ठौर चिद्रूप की, एक न जहां विरूप ।।४६८।।

महा रतन की खांनि इह, महा सुखनि की खांनि ।
गुण मानिक की रासि इह, रस रूपा परवांनि ।।४६६।।
हरै जनम मरणादि भय, हरै पाप संताप ।
हरै रोग रागादि सहु, यह तीरथ निहपाप ।।५००।।
याहि गगन गंगा कहैं, निज रस रसिया धीर ।
मगन होंहि जे या विषैं, ते न लहैं भव पीर ।।५०१।।
निरमल नभ सम रूप निज, तामैं करैं विहार ।
तेहि विहंगम दुर्लभा, सरिता तीर अपार ।।५०२।।
कमल समान कलंक विन, विमल भाव जे होय ।
तेइ सरिता मैं रमैं, अदभुत सरिता सोय ।।५०३।।

नाहि प्रपच स्वरूप ठग, मायाचार न चोर ।
लोभ लुटेरा नहि जहा, नही काहू को जोर ।।५०४।।

मान मनोभव मन महा, मै वासो भव माहि ।
ते तटिनी तटि दुरमती, कबहू दौरे नाहि ।।५०५।।

आसा रूप जु आसुरी, असुभ असुर जे कोय ।
वाछा रूप जु विंतरी, वितर विषय जु होय ।।५०६।।

रसना रक्ति जु राक्षसी, रक्ष सरोज जु धूत ।
भ्रानि रूप जो भूतनी, भर्म स्वरुपी भूत ।।५०७।।

दुरजनता जो दैत्यनी, दैत्य दभ दोषादि ।
पातक अति पिसाचनी, फुनि पिसाच पिसुनादि ।।५०८।।

एनहि निज सरिता नषे, सरिता निज पुर पार्स ।
इनि पापिनि को सर्वथा, भव वन माही वास ।।५०९।।

क्रूर भाव जे केसरी, व्याघ्र विभाव स्वरुप ।
व्याधि रुप जे व्याध खल, हिसक महा विरुप ।।५१०।।

अर अपराधी पारधी, अति निरदय परिणाम ।
विषै दर्प सर्पादि फुनि तिनको तहा न काम ।।५११।।

फूलि रहे तटनि तहौ, भाव प्रफुल्लित फूल ।
भम विचक्षण भाव अलि, रसिक भाव के मूल ।।५१२।।

है निज धाम नदी महा, रमै आतमाराम ।
सुधा रूप सरिता यहै, सतनि कौ विश्राम ।।५१३।।

गुण अणत मणिकी महा, ऊर्मि मालिनी खानि ।
परम स्वरूप पयोधि में, करै प्रवेस प्रवानि ।।५१४।।

निज अनुभूति अनूपमा, अमर वौलनि होय ।
निज अनुभूति लख्या बिना, सरिता केलि न कोय ।।५१५।।

निज समीप गंगा सदा, वहै अखंडित धार।
करै सनान जु ता विषै, सो पावै भव पार ॥५१६॥

॥ इति निज गंगा निरूपणं ॥

दोहा

आशा वैतरणी विष नदी वर्णन—

आसा नांहि धरै प्रभू, सब वांछा तैं दूर।
वंदौ परमानंद जो, गुण अनंत भरपूर ॥५१७॥
विष कलोलनी विश्व मैं, नहि वांछा सी कोय।
विष नहि विषै विकार सौ, भव भव दुख दे सोय ॥५१८॥
आसा सी न तरंगनी, त्रिषा सी न तरंग।
भवण न संसै सारिखौ, नहि तिरिवै कौ ढंग ॥५१९॥
भरी चाह विष नीर तैं, नहीं ताप हर एह।
कपट कीच कालिम मइ, भवि जन करै न नेह ॥५२०॥
विकलप संकलपानि से, और नहीं दुख रूप।
सो द्वय तट धारै सदा, आसानंदी विरुप ॥५२१॥
विष वन विषम विभाव से, और नहीं जग मांहि।
सो याकैं तटि दीसइ, जिनमै छाया नांहि ॥५२२॥
विष वेलिन ममता जिसी, सो आसा कै तीर।
फलै सदा दुख विषफला, जहां न अमृत नीर ॥५२३॥
उपजावै जड़ता इहै, राग दोष की खांनि।
क्षार महा दुरगंध है, प्राण हरा परवानि ॥५२४॥
वाजै जहा विरुप अति, भ्रांति रुप जगवाय।
सोइ उडावै जगत कौं, इह भासैं मुनिराय ॥५२५॥

निकसै गिर अभिलाष तै, आसा तटिनि एह ।
पइसै सागर सोच मैं, धारैं अति संदेह ।।५२६।।
वहै सदा भव वन विषैं, आसा अति असराल ।
रोकै सिवपुर कौ यथा, नदी महा विकराल ।।५२७।।
मोखहू की आसा महा, मोख मोह दे नांहि ।
कैसें भव भोगानि की, आसा दोष हरांहि ।।५२८।।
आसा आकुलता भरी, वांछा विकलप रुप ।
त्रिशना ताप मई महा, तजैं सदा मुनि भूप ।।५२९।।
तुछ व्रति झींगर जहां, भाव लोलपी मीन,
मींडक वाचाली तहां, वथा वकै मति हीन ।।५३०।।
भाव कठोर जु काछिवा, कृमि कुभाव मय मांनि ।
कीट कालिमा सौं भरी, आसा नंदी प्रवानि ।।५३१।।
काम क्रोध लोभादि से, और न धीवर नीच ।
ते डारैं भ्रम जाल खल, आसा तटनी बीच ।।५३२।।
मृत्यु समान ना लोक मैं, महा मगर नहि कोइ ।
विचरै आसा मैं सदा, निगलै सवकौं सोइ ।।५३३।।
तिमर सारिखै तिम नही, तिनकौ तहां निवास ।
जड सुभाव जलचर घने, करैं आस मैं वास ।।५३४।।
नांहि अविद्या सारिखी, जलदेवी खल भाव ।
वसैं आस मैं सासती, धारैं अतुल कुभाव ।।५३५।।
मै वासी नहि मोह सौ, मारे मारग मोष ।
दौरे दुष्ट सदा जहा, हरैं प्राण धन कोष ।।५३६।।
नांहि विभावनि से भया, जग मैं वितर कोय ।
वसै आस मैं सासती, इह निश्चै अवलोय ।।५३७।।
पर वस्तुनि के ग्राहका, अभिलाषी परिणाम ।
तिन से चोर न वंचका, आसा तिनकौ धाम ।।५३८।।

कुपख धारका कुसवदा, जेहि कुपक्षी क्रूर ।
ते सब आसा तीर हैं, दया भाव तैं दूर ॥५३६॥

हिंसक कुटिल कुभाव जे, ते सिंघादिक जीव ।
सदा आस तटिनी तटें, विचरें महा कुजीव ॥५४०॥

सर्पन कंदर्पादि से, तिनकौ तहां निवास ।
सदा कुवस्तुनि सौं भरी, यहै तरंगणि आस ॥५४१॥

मल नहिं राग विरोध से, आसा अतिमल पूर ।
विमल भाव हंसा महा, ते तटिनी तैं दूर ॥५४२॥

आसा तटि मुनिवर महा, रहैं न कवहू धीर ।
अति अपराधी पारधी, विचरें दुर्जन कीर ॥५४३॥

वैतरणी है न या समा, आसा नदी असार ।
उतरें कोइक साधवा, महाव्रती अणगार ॥५४४॥

अध्यातम विद्या जिसी, और न उत्तम नाव ।
पार उतारें सो सही, वायु विराग प्रभाव ॥५४५॥

वैठन हारे नाव के, सम्यक दृष्टि धीर ।
तिन से तेरू और नहिं, ते उतरें भव नीर ॥५४६॥

आसा मै बूडे घनें, बूडैगें जु अनंत ।
पार उतारें मुनिवरा, कोइक संजमवंत ॥५४७॥

गुण नहि दरसन ज्ञान से, तिन करि जकरी नाव ।
रहित परिग्रह भार तैं, उतरै गरु प्रभाव ॥५४८॥

तिरि आसा मुनिवर महा, त्यागि जगत जंजाल ।
वसैं निराकुल होय कैं, निजपुर मै ततकाल ॥५४९॥

निजपुर सौ नहि कोइ पुर, जहां काल भय नांहि ।
गुण अनंत निज पुर विषै, सुख अनंत जा मांहि ॥५५०॥

इह आसा कल्लोननी, संकट रूप सिंवाल ।
कंटिक विषै कषाय से, वहुत कलपना जाल ॥५५१॥

तहां जाय मति मित्र तू, तजि आसा कौ तीर ।
विष सरिता आसा जिसी, और न जानौ वीर ।।५५२।।

इह आसा वर्णन भया, जे धारै उर माहि ।
ते बूडै नहि आस मैं, सुख संतोष लहाहि ।।५५३।।

निज दौलति अविनश्वरा, सत्ता रूप अनूप ।
विलसै चेतनपुर विषै, चिदानंद चिद्रूप ।।५५४।।

।। इति आसा वैतरणी विष नदी वर्णन ।।

दोहा

भाव सरोवर वर्णन —

सुख सरवर मै जो रमै, वमै दोष दुख देव ।
नमै नाग नरनाथ मुनि, करै सुरासुर सेव ।।५५५।।

ताहि प्रणमि नमि भारती, भाषित भगवत भूप ।
करि प्रणाम गुरु देव कौ, भाषौ निज सररूप ।।५५६।।

सरवर समरस सौ नही, भरयौ सहज रस नीर ।
तरवर सघन स्वभाव से, तहा विराजै धीर ।।५५७।।

अति सोभित सुख सरवरा, हरै दाह दुख दोस ।
पालि जु सत्ता सारिखी, अचल अटल निरदोस ।।५५८।।

इह सर सत्ता माहि हैं, उठै लहरि आनंद ।
वस्तु न दूजी जा विषै, केवल परमानंद ।।५५६।।

कीच न कर्म कलक सौ, नहि कलक कौ काम ।
या सम अम्रत सर नही, यह सरवर निज धाम ।।५६०।।

नीर जु निर्मल भाव सो, जा करि तृषा बुझाय ।
इह सरवर सूकै नही, रस भरपूरे रहाय ।।५६१।।

भाव अलेप अछेप से, अदभुत अंबुज होय।
सदा प्रफुल्लित सर विषै, तिन से कमलन कोय ।।५६२।।

निज लक्षण मय लक्षमी, भाव सरोजनि मांहि।
वसैं सदा सुख सासती, जा सम कमला नांहि ।।५६३।।

सुख नहि निर-विकलप समो, आतम अनुभव रूप।
जहां न इंद्री मन वचन, बुधि न वस्तु अनूप ।।५६४।।

केवल अनुभव केलि सी, और न अम्रत वेलि।
परम भाव फल फलि रही, निज सर तटि रस रेलि ।।५६५।।

भमर जु भाव रसज्ञ से, अति रस रसिया जेहि।
भाव अलेप सरोज परि, केलि करैं निति तेहि ।।५६६।।

हुंस न उजल भाव से, स्वपर विवेकी वीर।
यह हंसनि को सरवरा, हिंसा हर गंभीर ।।५६७।।

परमहंस मुनिराज जे, अंस न धरैं कलंक।
ते यामैं क्रीड़ा करै, निस वासर निहसंक ।।५६८।।

सार भाव से सारिसा, तजैं न इह सर कोइ।
चकवा चेतन भाव से, कवहु न विरही होय ।।५६९।।

जहां निसा नहि भ्रांति मय, चकवी कौ न वियोग।
नहिं चकवी निज शक्ति सी, रहै सदा संजोग ।।५७०।।

ज्ञान भान भासिजु रह्यौ, जाकौ अस्त न होय।
यह अदभुत सरवर भया, वरणि सकै नहि कोय ।।५७१।।

गुण रतननि की रासि यहै, रहित रजोगुण रेत।
वर्जित तामस तापसहु, संतनि कौं सुख देत ।।५७२।।

इन्द्री सुख दुख तै सदा, यह सर दूर अनादि।
भाव अतिंद्री अति धरैं, जहां नही रागादि ।।५७३।।

निज पक्षनि कौ धाम इह, सर्व कुपक्ष वितीत।
है पवित्र पीयूष सर, रमैं पुरिख जगजीत ।।५७४।।

रहित शुभाशुभ शुद्ध सर, भाव प्रबुद्ध स्वरूप ।
महा मोह मगरन्न जहा, तहा न एक विरूप ।।५७५।।

काइ काम किरोध मय, सर कौ फरसि सकै न ।
सर्व विभाव विकारमय, वितर एक रहै न ।।५७६।।

जाचक भाव समान नहि, नून भाव जग माहि ।
तेइ झीगर जानियैं, तिनकौ नाम हु नाहि ।।५७७।।

दादर व्रथा विवाद जे, मछी बकल स्वभाव ।
कदरज भाव जु काछिवा, सर मैं नाहि लखाव ।।५७८।।

कीट कलपना जाल जे, डासर दुष्ट कुभाव ।
माछर मछर भाव जे, तिनकौ तहा अभाव ।।५७९।।

नानाविध वर्णादिका, जडता भाव अनेक ।
ते जलचर नहि ता विषै, भाव असुद्ध न एक ।।५८०।।

विषै विकार विनोदमय, विष व्रक्षन सर तीर ।
विष वेलिन विभ्रातता, भाव विषमता वीर ।।५८१।।

मायाजाल न है जहा, ममता मोह सुरूप ।
पाप वासना रहित सर, आप स्वरूप अरूप ।।५८२।।

जहा न भय को नाम हे, अभै सरोवर एह ।
अभै नगर कै निकट ही, परमानन्द अछेह ।।५८३।।

दुराचार दुरभाव जे, दुरविकलप दुखदाय ।
दुरित रूप ते दानवा, तहा धरै नहिं पाय ।।५८४।।

असु प्राणनि को नाम है, हरै प्राण पर जेहि ।
असुर असुचि अति हिसका, भाव न सर मैं तेहि ।।५८५।।

विषै रागरत राखि सा, रसना लपट भाव ।
रमणीरत रजनीचरा, तिनकौ तहा अभाव ।।५८६।।

यक्षी भोगमयी भवा, भाव भूत भ्रम रूप ।
ते न कदे सरवर लखें, जहा छाह नहि धूप ।।५८७।।

आसा नाम जु आसुरी, सर कौ नाम न लेय।
पर निंदा जु पिसाचनी, पाव न तहां धरेय ।।५८८।।

अमल न कोइ मिथ्यात सौ, जहां न मिथ्या भाव।
जोग सदा आनंद कौं, सम्यकज्ञान प्रभाव ।।५८९।।

वंचक नांहि प्रपंच से, चोर न चित्त से कोय।
ठग नहि छल पाखंड से, सब तैं वर्जित सोय ।।५९०।।

नाहि विपरजै भाव से, वटपारे विपरीत।
मारैं मारग मोक्ष कौ, धारैं सदा अनीत ।।५९१।।

तिनकी नांही वसाय हैं, राजै चेतनराय।
लूटि सकै नहि लोक कौं, लोभ लुटेरा आय ।।५९२।।

दौरा दौरि सकै नहीं, दंभ दोष दुख आदि।
अणाचार अपराध मय, जहां न जल कामादि ।।५९३।।

भाव विराधक कुटिल अति, आरति रौद्र कुध्यान।
वुगतेही गनि ठग महा, जहां नहीं छलवान ।।५९४।।

अविधि अजोगि अरीति नहि, निज तडाग तटि कोइ।
शुद्ध बुद्ध आनंदमय, सिद्धनि कौ सर सोय ।।५९५।।

त्रिविध तापहर पापहर, हरण सकल संताप।
इह निज सर सुखधाम है, रमैं आप निहपाप ।।५९६।।

परम मनोहर सर सदा, रतन सरोवर एह।
राज सरोवर है महा, क्रीड़ा जोगि अछेह ।।५९७।।

स्वरस स्वसंवेदन समो, नहीं और रस स्वाद।
अमर अनूपम सर इहै, जहां न हर्ष विषाद ।।५९८।।

मरैं न काहू काल ही, निज सरवर रस पीव।
रहैं मगन निज भाव मैं, सदा सरवदा जीव ।।५९९।।

भाव नगर के निकट ही, भाव सरोवर होय।
रम्य महा रमणीक अति, सुंदर सरवर सोय ।।६००।।

शुद्ध सरोज निवासिनी, निज सत्ता अनुभूति ।
करै केलि सुखसर विषै, केवलज्ञान विभूति ।।६०१।।
इह समरस सर वर्णना, पढ़ै सुनै जो कोय ।
सो अविनासी पद लहै, निज दौलति पति होय ।।६०२।।

।। इति श्री भाव सरोवर वर्णनं ।।

दोहा

विभाव सर वर्णन—

चेतन भावमइ सदा, चिदानंद चिद्रूप ।
सर्व भाव वितीत जो, ज्ञानानद स्वरूप ।।६०३।।
सीतल विमल अनत गति, धर्म धुरधर देव ।
शातभाव सब कर्महर, करै सुरासुर सेव ।।६०४।।
जाकी भगति प्रभाव सौं, उपजै आतम बोध ।
लखै आप मै आपको, करै करम कौ रोध।।६०५।।
काढै विकलप सर थकी, निर विकलप रस पाय ।
टारे मनमथ मोह मल, सौ त्रिभुवन को राय ।।६०६।।
ताके चरण सरोज नमि, प्रणमि सार सिद्धात ।
विकलप सर वर्णन करूं, तजै जाहि मुनि शात ।।६०७।।
विषसर विकलप सर समो, नहि ससार मझार ।
महाविषम सर मलिन सर, जामै रच न सार ।।६०८।।
अति संकल पर विकलपा, तेइ विष जल नीर ।
भर्यो सदा विष नीर तै, विषतरु ताकै तीर ।।६०९।।
विषतरु विषै कषाय से, और न जानौ कोइ ।
सर्व विभाव विकार मय, सदा मरण दे सोइ ।।६१०।।

पाप पालितैं बंधियौ, इहै ताप सर आप।
महा विकट सर भर्म सर, देय सदा संताप ॥६११॥
नहीं दाहहर दोसहर, नहीं रम्य सर एह।
हंसन शुद्ध स्वभाव से, करैं न यासौं नेह ॥६१२॥
कीचन काम कलंक सौ, यहै पंक तैं पूर।
अव्रत जल निज अनुभवा, सदा या थकी दूर ॥६१३॥
अव्रत वृक्ष न वोध से, फलैं विमल फल भाव।
ते विकलप सर तीर नहिं, यह निश्चै ठहराव ॥६१४॥
निज प्रवृत्ति भव निरव्रत्ती, ता सम सुधा न वैलि।
सो विप सरवर तटि नही, जामैं रस की रेलि ॥६१५॥
अशुभ कर्म से वृक्ष विष, विषैं वुद्धि विष वेलि।
तिनकी विकलप सर निकट, दीखैं रेलि जु पेलि ॥६१६॥
जल कागन जड़ भाव से, तिनकौ तहां निवास।
वृग नहि पाखंडीनि से, तिनकौ सदा विलास ॥६१७॥
वुद्धि वियोगी वहिरमुख, वहिरातम भव भाव।
तेइ चकवा ता विषै, विरह रूप दरसाव ॥६१८॥
निसि न अविद्या सारखी, तिमर रूप दरसाय।
तामैं चकवी चेतना, कवहु लखी नहि जाय ॥६१९॥
जगत वासना सारिखी, और न कोइ कुवास।
फैलि रही विषसर विषैं, रोग सोग परकास ॥६२०॥
मल नहि राग विरोध से, इह मलसर छलपूर।
खलसर अखिल विभाव से, सुंदरता सौं दूर ॥६२१॥
मिथ्या मारग पक्षधर, हिंसक दुष्ट सुभाव।
तेहि कुपक्षी कुसवदा, तिनकौ सदा प्रभाव ॥६२२॥
मीन नदी न स्वभाव से, अति मलीन मतिहीन।
ते विचरैं विषसर विषै, अति चंचल अघलीन ॥६२३॥

अथा वर्क वितथा लपै, लोभी लपट भाव ।
तिन से भेक न और को, धरै विवेक अभाव ।।६२४।।
दादर डेडर भेक ए, है मीडक के नाम ।
यह मीडक की सरवरा, काल नाग को धाम ।।६२५।।
मुह मीठी बातें करें, पीछे अति ही कठोर ।
तेहि काछिवा सर विषै, जहा असुभ को जोर ।।६२६।।
नान्ही मन नान्ही दसा, कृपण सदा परिणाम ।
तेइ भीगर जानियै, मलसर तिन कौ धाम ।।६२७।।
धीवर कुकरम भाव जे, चालें अधरम चाल ।
ते विचरें विषसर नखें, धारें विकलप जाल ।।६२८।।
मगर न होइ मही विषै, महा मोह सो कोइ ।
सुर नारक नर तिरन कौ, निगलै पापी सोइ ।।६२९।।
वसै सदा विषसर विषै, रूप महा विकराल ।
अवरहु जलचर भावखल, जामै अति असराल ।।६३०।।
सोर कुपक्षनि कौ सदा, सारिस जुगल न कोय ।
सारिस दरसन ज्ञान से, और न जग मैं होय ।६३१।।
दुखदाइ दोषीक जे, दया रहित परिणाम ।
दैत्य दानवा ते महा, खलसर तिनकौं धाम ।।६३२।।
दुष्ट अती दुरजन दसा, दुरगति दाइ रीति ।
तेहि दैत्यनी वहु वसै, मलसर मैं विपरीति ।।६३३।।
असुचि असुभ अव्रतमयी, अरि समान अघ भाव ।
असुर असजम रूप जे, तिनकौ तहा प्रभाव ।।६३४।।
अकुलत अविवेकता, आसा आरति रूप ।
वसै अविद्या आसुरी, विषसर विषै विरूप ।।६३५।।
रमै राग धरि भोग मैं, जग अनुरागी भाव ।
रस अनरस ते राखिसा, तिनकौ तहा वसाव ।।६३६।।

रति अरति अति राषिसी, रसना लोलप रीति ।
सर्व कुरीति लीयां वसै, विष सर मैं विपरीति ।।६३७।।
भय विभ्रममय भाव जे, तेहि भूत भ्रमजाल ।
यह भूलिन को सरवरा, रहैं भूत विकराल ।।६३८।।
भोग भावना भूतनी, भ्रांति स्वरूप विरूप ।
भ्रमैं सदा भ्रमसर विषैं, भयकारी विड़रूप ।।६३९।।
परदारा परधन हरा, परद्रोही परिणाम ।
ते पिसाच पापी करै, विषसर मैं विश्राम ।।६४०।।
पराधीनता पापिनी, मिथ्या परणति रुप ।
पापव्रति पिसाचिनी, भवजल मैं भय रूप ।।६४१।।
सर्व विभाव विकार जे, विषै विनोद असेस ।
ते वितर विषसर विषै, वैरी वसैं विसेस ।।६४२।।
व्रति अव्रत्तनिकी सदा, निरव्रति धरै न सोइ ।
वै वितरी वलवती, मल सरवर मै होइ ।।६४३
दुराराध्य दुरनीत्ति धर, दुरजय दुसह सुभाव ।
ते दौरा दौरैं सदा, अति दोपादि कुभाव ।।६४४।।
अति प्रपंचमय वंचका, माया मदन मनादि ।
पूति सरोवर तीर हो, वचैं विश्व अनादि ।।६४५।।
भाव चलाचल चपल गति, त्रिश्ना रूप विरूप ।
ते तसकर कुतड़ाग तहि, चोरी करैं कुरूप ।।६४६।।
लोभादिक लंपट महा, तेहि लुटेरा वीर ।
लूटैं सर्वहि लोक कौं, कोइक उवरैं वीर ।।६४७।।
वटपारे कुविसन महा, जूवां मद मांसादि ।
वेस्या परधन हरणता, परदारा हिंसादि ।।६४८।।
रोकैं पथ निरवान कौं, रहैं पापसर पालि ।
तिन करि जग के जीव ए, सकै नहीं संभालि ।।६४९।।

ठग नहि जग के भाव से, ठगैं ज्ञान सा माल ।
वसैं सदा छलसर निकट, करैं वहुत वेहाल ॥६५०॥

अति ठगनी भव भावना, ठगै सुरासुर सोय ।
कोइक उवरैं साधवा, सजम जिनपैं होय ॥६५१॥

अभख भक्षका हिसका, करैं कुसील विहार ।
तिन से अपराधी नही, तैं सर तीर अपार ॥६५२॥

यह सरवर नहि केलिकौ, कवहू रमन न जोगि ।
तहा जाय मतिमत्र तू, सवही वात अजोगि ॥६५३॥

है पिसाच सर पिसुन सर, विकट सरोवर वीर ।
कीट सरोवर क्षार सर, करैं महादुख पीर ॥६५४॥

कीट न कलुप स्वभाव से, यहै कलुषता पूर ।
रहै पारधी पातकी, जे शुभ तै अति दूर ॥६५५॥

तामस सौ नहि तिमर है, राजस सम रज नाहि ।
यह राजस तामस मद्द, सव दुख याके माहि ॥६५६॥

कमल न भाव अलेप से, तिनकौ सदा अभाव ।
कटिक नाहि कषाय से, तिनकौ महा प्रभाव ॥६५७॥

ककर क्षुद्र स्वभाव जे दीखे तेहि विसेस ।
नही रतनन की वात ह्या, लखिए असुभ असेस ॥६५८॥

भमर न भावर सञ्ञ से, तिनकौ नाम हु नाहि ।
दुष्ट भाव डासर घने, रच न सुख सर माहि ॥६५९॥

मछर भावहि माछरा, माखी मलिन सुभाव ।
कृमि कुभाव रूपी महा, सर मे वहुत लखाव ॥६६०॥

भव वन मैं विकराल इह, भ्रमसर भयकर होय ।
है विभाव-सर विषम-सर, विषसर इसौ न कोय ॥६६१॥

शुद्ध निजातम भाव तैं, भिन्न जेहि भव भाव ।
राग दोष मोहादि रिपु, ते कहिये जु विभाव ॥६६२॥

सदा विभाव तडाग तटि, थावर जंगम जीव ।
लूटे जांहि अनेक जन, कूटे जांहि कुजीव ॥६६३॥
कोइक मुनिवर उवरै, जिनवर कौ जन होय ।
सर विभाव सो विषमसर, और न जग मैं जोय ॥६६४॥
इह विकलप सर वर्णना, उर धारै जो धीर ।
सो विकलप सर लंघि कै, निरविकलप है वीर ॥६६५॥
निज स्वभाव सत्ता महा, सो निज दौलति होय ।
और न संपति सासती, यह निश्चै अवलोय ॥६६६॥

॥ इति विभाव सर वर्णन ॥

दोहा

अध्यात्म वापिका वर्णन—

देव दयानिधि देव जो, दिव्य दृष्टि भगवान ।
दरसावै निजसंपदा, सो सरवज्ञ सुजान ॥६६७॥
वंदनीक सब लोक गुर, सकल लोक कौ ईस ।
रमैं निजातम भाव मैं, नमूं ताहि नमि सीस ॥६६८॥
नही ब्रह्म विद्या जिसी, वापी अमृत रूप ।
वापी मैं पापी नहीं, मोह पिसाच विरूप ॥६६९॥
अध्यातम सौ लोक मैं, अमृत और न कोय ।
अध्यातम ये वापिका, त्रिविध तापहर होय ॥६७०॥
नहीं सिवाल संसै जहां, पाप पंक नहिं लेस ।
नहि व्याकुलता भाव कृमि, मेटै सकल कलेस ॥६७१॥
भरी शांत रस नीर तैं, परमानंद स्वरूप ।
हरै दाह दुख दोष सब, रमैं तहां चिद्रूप ॥६७२॥

नहि विभाव व्यतर जहा, भर्म भूत नहि होय ।
रागादिक राक्षस महा, तिनकौ नाम न जोय ।।६७३।।

नही अविद्या वासना, सम कुवासना कोय ।
सो न जा विषे है सही, सम रस निर्मल तोय ।।६७४।।

दुख को लेस न है जहा, निज सुख पूरण सोइ ।
नाहि कलपना जालमय, काई कलमप कोइ ।।६७५।।

उज्जल निरमल भाव से, परम हस नहि और ।
केलि करें तामैं सदा, जा सम और न ठौर ।।६७६।।

जहा सिवाण प्रमाण से, अप्रमाण अति रम्य ।
अचल अखड अनूपमा, नहि अजाण की गम्य ।।६७७।।

जोर न इद्री चोर कौ, सोर न कहूं सुनाव ।
ठगनि सकै परपच ठग, सुद्ध राव परभाव ।।६७८।।

भागै वचक तसकरा, वापी को सुनि नाम ।
रतन वापिका इह सही, गुण रतननि को धाम ।।६७९।।

बटपारे न विकार से, काम लोभ से वीर ।
तिनही न सूझै वापिका, रमै महामुनि धीर ।।६८०।।

फूलि रहे भाव। कमल, अमल अलेप स्वभाव ।
रमण भाव रूपी भमर, भमे सदा निरदाव ।।६८१।।
ताकै तटि तरवर सुधा, भाव अछेदि अभेदि ।
सीतल सघन सुवास अति, डारै दाह उछेदि ।।६८२।।
समता रूप सुध। लता, धरै विमलता जोय ।
फूलि रही अति फलि रही सदा लहलहै सोय ।।६८३।।
परम भाव अम्रत फला, भाव प्रफुल्लित फूल ।
पल्लव भाव प्रकासमय, पत्र तापहर मूल ।।६८४।।
वेलि वृक्ष पीयूषमय, वापी तीर विसाल ।
माया वेलि न विपमइ, एकन विकलप जाल ।।६८५।।

नांहि कुपक्षी कुसवदा, विष वृक्षन विषयादि।
नहिं कंटिक क्रोधादिका, नहि निसिचर मदनादि ॥६८६॥

हैं अंतता एकता, ए द्वय तट रमणीक।
भोग भुजंग नहीं जहां, आतम सुख तहकीक ॥६८७॥

मलिन भाव मछली नहीं, भेक न भ्रांति स्वरूप।
जहां कर्म कूरम नही, वस्तु न एक विरूप ॥६८८॥

कालिम कीट नहीं जहां, नहीं काल कौ जोर।
अभै नगर कै निकट है, जहां न कबहू सोर ॥६८९॥

नहि दुर्जनता भाव मय, डांसर मांछर भूर।
क्षुद्र भाव झींगर नहीं, वापी सब दुख दूर ॥६९०॥

दंभ भाव बुग नहि जहां, नांहि वियोगी कोक।
सारिस दरसन ज्ञान जुग, केलि करें विनु सोक ॥६९१॥

कागन भाव कलंक मय, राग रोग नहि होय।
शुद्ध स्वभाव मइ इहै, नांहि शुभाशुभ दोय ॥६९२॥

इह अध्यातम बावरी, तामैं करै सनान।
सो भव ग्राह निवारिकैं, पावै पद निरवान ॥६९३॥

॥ इति संपूर्ण ॥

दोहा

विषय वापी वर्णन—

वसै वुद्धि कै पार जो, हरै कुवुद्धि कुभाव।
वीतराग सरवज्ञ जो, तीन भुवन को राव ॥६९४॥

प्रणमूं ताहि प्रमोद करि, प्रणमैं जाहि सुरेस।
नमैं नाग नर सुर असुर, विद्याधर राजेस ॥६९५॥

बुधि बावरी जीव की, विषै कपाय स्वरूप ।
तिसी न विष की वावरी, और महा दुख रूप ।।६९६।।

विष नहि विषै विकार सौं, भव भव मरण प्रदाय ।
इह विष व्रापी पाप है, पापी मोह रहाय ।६९७।।

विषै वासना सारिखी नहि कुवासना जोय ।
अति कुवासना सौं भरी, धर्म नासना होय । ६९८।।

कर्दम कर्म कलक सौं, कहैं न कोविद कोय ।
इह कर्दम की वापिका, जहा न अम्रत तोय ।।६९९।।

मल नहि मिथ्या भाव सौं ता करि पूरण सोय ।
अहकार ममकार के, धरैं विकट तट दोय ।।७००।।

भरी जाल जवाल सो परी समान विरूप ।
खरी बुरी दोषाकरी विष वापी विहरूप ।।७०१।।

जहा मिवाण अपाण से विषम महा दुखदाय ।
कृमि कुभाव अति कुलमलैं, जाहि लखै तरसाय ।।७०२।।

नहि सिवाल सदेह सौ भाषैं सजम धार ।
भेरा सदा सदेह सौ सुख नहि जहा लगार ।।७०३।।

वाचाली वादी विकल, दुरबुधी दुरभाव ।
ते दादर कुसवद करै, धरैं कुकर्म कुभाव ।।७०४।।

रसना लपट चपल गति, हीन दीन अघलीन ।
मीन तेहि विचरै तहा, काल कीर अघलीन ।।७०५।।

कठिन कठोर सुभाव ही, कहे काछिवा जीव ।
कीट कलक भरी सदा, जामे बहुत कुजीव ।।७०६।।

नून भाव अति रकता तेहि भीगरा जानि ।
माछर मछर भाव बहु, डासर खल ता मानि ।।७०७।।

शात भाव सो विमल जल, और न जगत मझार ।
सो वापी मै नाहि कहू, तापहरण रसधार ।।७०८।।

विष वेलिन ममता समा, वापी तीर विसेस।
सुधा वेलि समता मयी, ताको तहां न लेस ॥७०९॥
सघन भाव निज मगनता, तेहि सुधा तरु वीर।
ते वापी के तीर नहिं, अघ विषतरु अति तीर ॥७१०॥
दोष दैत्य को धाम है, रहैं भूत भ्रमरूप।
छलें छलावा छलमइ, ठगै कामरति भूप ॥७११॥
मोह निसाचर नृप जहां, पापी वापी वीचि।
रागादिक रजनीचरा, अधिकारी अति नीच ॥७१२॥
पाप पिसाच रहै जहां, जो धारैं परद्रोह।
चारैं चोर चहूं दिसा, राजै राजा मोह ॥७१३॥
धन तृष्णा परिणाम से, तसकर और न कोय।
तिन ही को यह थांन है, कहां भलाइ होय ॥७१४॥
इह क्रीड़ा वापी नही, नहिं मनोज्ञता भूरि।
करैं वास वंचक इहां, सदा अमंगल भूरि ॥७१५॥
वंचक और न विस्व मैं, दंभ प्रपंच समान।
पाखंडादि अनेक खल, छल वल भरे गुमान ॥७१६॥
ठगे जांहि इन्द्रादिका, ठगे जांहि चक्रेस।
ठगे जांहि नागिंद्र सुर, ठगे जांहि असुरेस ॥७१७॥
लोभ लुटेरा लूटइ, धर्मरूप धनसार।
क्रोधादिक कंटिक घनें, वापी वहुत असार ॥७१८॥
विषै वासना वितरी, धरै विकार अनेक।
रति ठगनी परपंच करि, खोसै रतन विवेक ॥७१९॥
वापी भववन मैं इहै, पापी अंतक सांप।
वसै सदा सुर नर असुर, पसु निकरै संताप ॥७२०॥
इहै गलकटा वावरी, जानै सव संसार।
रहैं निरदयी दुर्जना, क्रूर कुभाव अपार ॥७२१॥

हिंसक पिसुन पसूघना, मिथ्याती मतिहीन ।
परधन परदारा हरा, लोभी लपट दीन ।।७२२।।

तेइ करैं प्रवेस ह्या, रहैं सनमती दूर ।
कबहु करै मति क्रीड तू, यहै कलपना पूर ।।७२३।।

निर्मल भावन हंस ह्या, बुग ठग भाव अनेक ।
दरसन ज्ञान स्वभाव से, सारिस जुगल न एक ।।७२४।।

रमैं विषै अनुराग से, काग कालिमा रूप ।
विकल विवेक वितीत खल, पापी पाप स्वरूप ।।७२५।।

पापाचारी पारधी, धीवर अघ परिणाम ।
मारैं तिर नर सुर असुर, थिर चर आठौ जाम ।।७२६।।

निज पुर सौ दूरी इहै, वापी अति विकराल ।
वहु बूडै वहु मरि पचै, दुख देखै असराल ।।७२७।।

त्यागि कषाय कलक सब, तजि विषयनि सो प्रीति ।
गहौ पथ निजपुर तनौ, दहौ दोष दुख रीति ।।७२८।।

जीति काल कटिक भया, मारि मोह रिपु राव ।
रहो मोक्षपुर मे सदा, प्रगट करौ निज भाव ।।७२९।।

मिथ्यामति अति मूढता, रूप वापिका तीर ।
कदे रमैं न विचक्षणा, वमे विषै रस वीर ।।७३०।।

लहि निज सपति सासती, ज्ञानानद स्वरूप ।
करैं केलि निजपुर विषैं, तजि भव वन भ्रम रूप ।।७३१।।

अध्यातम अम्रत भरी, वापी निरन्रति जोय ।
करैं सनान तहा सुधी, लहैं विमलता सोय ।।७३२।।

इहै मूढता बावरी विषै प्रव्रत्ति स्वरूप ।
नहि सनान कौ जोग्य है, मलिन विकट विष रूप ।।७३३।।

विष वापी वर्णन यहै, पढ़ै सुनै जो कोइ ।
सो न परै वापी विषै, घट घट व्यापी होय ॥७३४॥

॥ इति विषय वापी वर्णन ॥

दोहा

रस कूप वर्णन—

ज्ञान कहै सब भाव कौ, सब सुख दायक देव ।
नायक है रस कूप को, करै सुरासुर सेव ॥७३५॥
रस न कूप न निज रूप सौं, परम सुधारस पूर ।
है अरूप अनि रूप जो, सकल दोष तैं दूर ॥७३६॥
नाहिं सुधारस ज्ञान सौ, अमरण करण अनूप ।
हरै भ्रांति अति शांतिकर, ताप हरण गुण भूप ॥७३७॥
अवर नाम रस कूप कौ, रतन कूपहू होय ।
रोर अबोध मिथ्यात हर, राग रोग सुर सोइ ॥७३८॥
अदभुत गुण मणि सौं भरयौ, इह मणि कूप महंत ।
रमवा जोगि निरंतरा, रमैं मुनीसुर संत ॥७३९॥
अमृत कूपनि कूप इह, निज भावन की केलि ।
करै शुद्ध भवि जीव कौं, देय दोष कौ ठेलि ॥७४०॥
याकै तटि अति सघन वन, चिदघन आनंद रूप ।
इहै कूप निजपुर निकट, जहां राव चिद्रूप ॥७४१॥
कपट कीच नहि या विषै, रहै न मोह पिसाच ।
इंद्री भूत न पाइए, मांनि वारता सांच ॥७४२॥
जहां नांहि चिंतामयी, कृमि कीटादिक कोइ ।
मीन दीनता भावमय, तिनकौ नाम न जोय ॥७४३॥

नहि अविवेक स्वभाव मय, मीडक चपल विरूप ।
नही विषै की वासना, अति कुवासना रूप ॥७४४॥

पर निंदक परपूठि जे, निष्ठुर दुष्ट स्वभाव ।
तेहि काछवा जानिये, तिनकौ नाहि लखाव ॥७४५॥

मिथ्या मारग पर्क्ष धर, तेहि कुपक्षी कूर ।
ते न करै सचार ह्या, हिंसक भाव न मूर ॥७४६॥

दुर्जन भाव न दोप मय, दुख कौ नाम हु नाहि ।
सुख की बात अपार है, रमरण कूप कै माहि ॥७४७॥

नही सर्प कदर्प ह्या, चोरन चाहि स्वभाव ।
छल परपच न वचका, विपरीती न विभाव ॥७४८॥

दृष्टि न पसरै देव्य की, दैत्य न काल समान ।
एक न कटिक पाइए, क्रोध न लोभ न मान ॥७४९॥

रमै आतमा राम निज, सत्ता रमा समेत ।
केलि कूप है इह महा, सतनि कौ सुख देत ॥७५०॥

लखि दौलति अविनस्वरा, परम भाव फल वेलि ।
निज दोलति लखिया विना, नही होय रस केलि ॥७५१॥

इह वर्णन रस कूप को, पढै सुनै जो कोय ।
सो निकसै भव कूप तै, निज रस रसिया होय ॥७५२॥

॥ इति रस कूप वर्णन ॥

दोहा

भव कूप वर्णन –

प्रभु निकासि भव कूप तै, पहु चावै निज थान ।
प्रणमै जाहि पुरदरा, चक्रेसुर निधिवान ॥७५३॥

विष कूपन भवकूप सौं, यह दुख कूप विरूप।
अंध कूप यासौं कहैं, महा मुनिनि के भूप ॥७५४॥
जिमी अविद्या वासना, तिसी कुवास न कोय।
भरचौ महा दुरगंध सौं, विषम कूप है सोय ॥७५५॥
विष नहि विषैं विनोद सौं, मरण अनंत प्रदाय।
यह विष पूरण दुखमइ, जाहि लखैं सुधि जाय ॥७५६॥
नहिं पियूष संसार मैं, अनुभव सौं अविकार।
इहां न अमृत वारता, विकलप जाल अपार ॥७५७॥
कीचन कोइ कुभाव सौ, भरचौ कीच तें कूप।
लोभ पिसाच रहैं जहां, मोहासुर है भूप ॥७५८॥
विभ्रम भूत बसैं तहां, दोष दैत्य कौ थान।
रागादिक रजनीचरा, विचरैं पाप निधान ॥७५९॥
नागन पिसुन सुभाव से, तिनकौं तहां निवास।
चोरन चित अभिलाष से, हरैं धरम धनरास ॥७६०॥
ठग नहि छल परपंच से, तिन ही की ह्यां केलि।
फूलि रही अति विषमइ, विषै वासना वेलि ॥७६१॥
याके तटि विष वृक्ष बहु, विषै विकार विरूप।
छाय रहे कंटिक मइ, माया जाल कुरूप ॥७६२॥
ठगे जांहि सुर असुर नर, कोइक उबैर धीर।
ज्ञान विराग प्रसाद तें, जा ढिग संजम वीर ॥७६३॥
पापी जन पाखंड से, और दूसरे नांहि।
ते लूटैं परगट इहां, रंच न संक धरांहि ॥७६४॥
वटपारे क्रोधादि से, मारैं सुख पुर वाट।
ते डारैं दुख कूप मैं, तिनकै क्रूर कुठाठ ॥७६५॥
नहि विसास घाती अवर, मदन सारिखौ कोय।
रंचक भोग दिखाय खलं, दे अनंत दुख सोय ॥७६६॥

नहि सिवाल संसार मैं, संसय सोच समान।
भर्यौ श्राल जंजाल सौ, मलिन कूप मलवान ।।७६७।।

चितवृति चंचल अति मलिन, कृमि समूह है सोय।
भर पूरित कृमि तैं सदा, तिमर कूप यह होय ।।७६८।।

नहि ड़ेडर वाचाल से, उछलत फिरैं कुभाव।
मीन जीभ लंपट जिसे, और न चपल सुभाव ।।७६९।।

नहि कठोरता भाव से, कोइ काछिवा और।
अधकूप भवकूप इह, सदा तिनौ की ठौर ।।७७०।।

नाहि सुधातरु या निकट, केवल बोध स्वरूप।
नाहि ज्ञान अनूभूति है, अम्रत वेलि अनूप ।।७७१।।

मायाचारी मन मलिन, तेहि काग ठग जांनि।
तिनही की क्रीडा इहा, नाहि सुपक्षी मानि ।।७७२।।

नहीं कोइ सुचि वात ह्यां, सकल असुचि की बात।
काल समान न जालधर, करै जीव को घात ।।७७३।।

परे जीव भवकूप मै, को काढन समरत्थ।
काढै श्री भगवंत ही, दयावत वड हत्थ ।।७७४।।

ढाएन नय परमाण सौ, नहि निश्चै सी नेज।
निकसै उद्यमवत ही, जिनकै रच न जेज ।।७७५।।

अधकूप विडरूप यह, है पाताल जु कूप।
निकसि तहां तैं तुरत ही, होय अभैपुर भूप ।।७७६।।

फेरि न आवै भव विषैं, निज मै करैं निवास।
लोक सिखर राजै सदा धारै अतुल विलास ।।७७७।।

निज दौलति निज गुणमइ, सत्ता रूप विभूति।
सो विलसै अति सासती, अविनासी अनुभूति ।।७७८।।

ग्रंध कूप वर्णन यहै, पढ़ै सुनै जो कोय।
सो नर है भवकूप मैं, निज निधि नायक होय ॥७७६॥

॥ इति भव कूप वर्णनं ॥

दोहा

अन्तरात्मा ज्ञान राज वर्णन—

अंतर गति ज्ञाता गुरू, अंतरजामी देव।
अंतर आतमा ध्यावही, करै सुरासुर सेव ॥७८०॥
ताके चरण सरोज नमि, प्रणमि महा मुनिराय।
नमि परमातम गुण कहूं, ज्ञानिनि के सुखदाय ॥७८१॥
भ्रमत भ्रमत भव वन विषै, कोइक चेतन राव।
चेतै स्वतह स्वभाव ही, कै श्री गुर परभाव ॥७८२॥
तजि अज्ञान अनादि कौ, ग्रंथि अविद्या भेदि।
धरि सरधा सरवज्ञ की, संसै भर्म उछेदि ॥७८३॥
छांडि भूमि मिथ्यात की, क्रोध लोभ छलमान।
मारि चौकरी प्रथम ही, ले सम्यक गुनथान ॥७८४॥
तथा देसव्रत देस ले, दोय चौकरी डारि।
अप्रमत्त थानक तथा, तीन चौकरी मारि ॥७८५॥
सम्यकपुर कौ आदि ले, क्षीणकषाय प्रजंत।
अंतरातमा राजई, राज करै मतिवंत ॥७८६॥
ता सम भूपन और को, समझवार रिझवार।
सो निकसै भव कूप तें, पावै पद अविकार ॥७८७॥
पटरानी परवीन है, नाम सुवुद्धि अनूप।
गढ़ सम्यक अति निश्चला, मंत्री ज्ञान स्वरूप ॥७८८॥

गुर विवेक प्रोहित धरम, दरसन चारित्त दोय।
सब उमरावनि कै सिरै, अति कोडीभड होय ।।७८९।।

निज स्वभाव उमराव बहु, निज निधि है भडार।
है वीरज सेनापती, भडारी स्वविचार ।।७९०।।

सजम तप आदिक सुभट, गुणसेना अति साथ।
द्वारपाल सवर महा, ध्यान खडग नृप हाथ ।।७९१।।

व्रत बगतर सील सर, धीरज धनुष महीप।
धारै मनमथ मार नै, सूरवीर अवनीप ।।७९२।।

अणाचार हर नीतिधर, शुभाचार कुटवाल।
मूलोत्तर गुण है प्रजा, सावधान भूपाल ।।७९३।।

पावन पुण्य स्वभाव से, पासवान परवीन।
टार पाप सुभाव का, सदा स्वामि आधीन ।।७९४।।

मित्र महा वेराग से, हितकारी नृप पासि।
मदति भगति भगवत की, दे सब सुख अघ नासि ।।७९५।।

नृप के अदभुत अनुपमा, सामग्री समतादि।
हारै जात मोह रिपु, डरै राग दोषादि ।।७९६।।

अव्रतपुर अर देसव्रत, इन माही गढ रारि।
परमत पुर आगे प्रगट, लेय मोह कौ मारि ।।७९७।।

कैसै मारै मोह कौ, सो तुम सुनहु उपाय।
अप्रमाद पुर मै हरौ, सुर नारक तिर आय ।।७९८।।

भाव अपूरव करणपुर, तहा हवै हास्यादि।
अनिवर्त्तीपुर म हणै, वद तीन सढादि ।।७९९।।

पाछै सूषिम क्रोध अर, मान कपट रिपु काटि।
सापराय सूषिम धरा, लेय मोह दल ठाठि ।।८००।।

सूषिम क्रोध पछारि के, पूरौ पारै मोह।
भग होहि भूपाल पै, राकिस रागर द्रोह ।।८०१।।

क्षीण कषाय जती यती, क्षीण मोह मुनिराज ।
हतै विघन कौं वेगिदे, सजै सिद्धि के साज ।।८०२।।
दरसन ज्ञानावरण की, परकति सबै विनासि ।
साधक भाव समेटि ले, केवल भाव प्रकासि ।।८०३।।
घाति कर्म कौं घाति कैं, ह्वै कैवल्य स्वरूप ।
अंतरातमा यह थकी, ह्वै परमातम रूप ।।८०४।।
जैसें राजा नीति करि, महाराज ह्वै वीर ।
तैसें अंतर आतमा, ह्वै परमातम धीर ।।८०५।।
जानें लोक अलोक सहु, एक समै मैं सोइ ।
भानै संसें भविन कैं, केवल ज्ञानी होय ।।८०६।।
ज्यौं नरिन्द्र राजेंद्र ह्वै, धारि पराक्रम धीर ।
त्यौं जौगिन्द्र जिनेन्द्र ह्वै, आतम बल करि वीर ।।८०७।।
आयु प्रमाण सरीर मैं, तिष्टै सरवगि देव ।
जीवन मुक्त दसा धरैं, करैं सुरासुर सेव ।।८०८।।
करि दरसन मुनि सबद कौं, उत्तम कुल नर देह ।
कैयक तप व्रत धारि कैं, मुनिवर हौंहि विदेह ।।८०९।।
कैयक मानव तिर तथा, धारि अणुव्रत सार ।
स्वर्ग पाय नर होय फिरि, तप करि ह्वै भव पार ।।८१०।।
कैयक सुर अथवा असुर, गहि करि सम्यक ज्ञान ।
करि पूरण थिति होय नर, पावै पद निरवान ।।८११।।
स्वर्ग निवासी देवजे, ते सुर नाम वखानि ।
मध्यलोक पाताल के, देव असुर परवानि ।।८१२।।
देव जोनि के भेद हैं, देव दैत्य द्वय रूप ।
स्वर्ग निवासी वहुसुखी, दीरघ आयु सुरूप ।।८१३।।
मंद कषायी हर्ष अति, अलप विषाद विवाद ।
सब वातनि मैं अति निपुन धारैं अलप प्रमाद ।।८१४।।

असु अलप सुख अलप थिति, तीव्र कषाय प्रचंड ।
अति विषाद अतिवाद हैं, अलप बुधि अति दंड ॥८१५॥

सुर नर असुर विद्याधरा, पंचेन्द्री पसु जेहि ।
नभचर वनचर ग्रामचर, निकट भव्य सुलटेहि ॥८१६॥

होंहि कृतारथ सवद सुनि, करि दरसन बहुजीव ।
कैयक तदभव पार ह्वै, मनुज मुनिंद सुजीव ॥८१७॥

कैयक जनमांतर तिरैं, पावैं निजपुर वास ।
सुखदाई संसार मैं, केवल ज्ञान प्रकास ॥८१८॥

तारण तरण दयानिधि, जीवन मुक्त मुनिंद ।
आप मात्र ही गात्र मैं, वसैं देव जोगेन्द्र ॥८१९॥

इन्द चन्द असुरिंद अर, रवि नरिंद नागिंद ।
हरिपिन्द अहमिंद खग, रटैं जतिंद गणिंद ॥८२०॥

आयु लार ही गोत्र कौं, नाम रूप को नासि ।
वादर सूषिम गात्र हरि, वेदनि कर्म विनास ॥८२१॥

कर्म भर्म हरि शुद्ध ह्वै, वसै भावपुर मांहि ।
सो विदेह मुक्तो प्रभू, कहिये संसै नाहि ॥८२२॥

ज्ञान रूप चिद्रूप सो, ह्वै अनूप जग भूप ।
फेरि न जनमैं जगत में, ह्वै अविनासी रूप ॥८२३॥

थूल देह अर सूषिमा, बहुरि न धारै धीर ।
ह्वै अनंत स्वरूप निज, चिनमूरति असरीर ॥८२४॥

जगत सिरोमणि भावपति, लोक सिखरि सद्रूप ।
निज सुरूप मै नित्य ही, करैं निवास अरूप ॥८२५॥

अंतर आतम राम की, कथा प्रबोध प्रकास ।
पढै सुनै अर सरदहै, सो पावै सिव वास ॥८२६॥

निज दौलति अनुभूति है, ताहि विलसवे काज।
छाड़ै राज विभूति सव, सो पंडित सिरताज ॥८२७॥

॥ इति अंतरातमा ज्ञान राज वर्णनं ॥

दोहा

वहिरात्मा दशा वर्णन—

विहिर मुख वहिरात्मा, लखैं न जाकौ रूप।
अंतरातमा अति रहैं, सो परमातम भूत ॥८२८॥

करि वंदन ताके चरण, लेय सरण सिद्धांत।
भाषौं वहिरातम दसा, दोस रूप एकांत ॥८२९॥

मूढ़ महा वहिरातमा, धरै द्रिष्टि वहिरंग।
गनैं आपने कर्म जड़, गनैं आपनौ अंग ॥८३०॥

ता सम सठ नृप और नहि, करै राज वेढंग।
वारावाट कुठाट सव, सदा कुवुद्धी संग ॥८३१॥

पराधीन वरतै महा, नहीं राव कौ जोर।
राव मोह के फंद मैं, परचो सहै दुख घोर ॥८३२॥

राजथान नहि निश्चला, भटकै भव वन मांहि।
सुर नर नारक पसु पुरा, थोरे दिन रह वांहि ॥८३३॥

काढैं कर्म महीप कौं, देह वेगतैं वेगि।
सदा भोगवै भूप दुख, नही राज वल तेगि ॥८३४॥

ते गन ज्ञान ज्योतिसी, सो नहि नृप के हाथ।
कायर कुटिल सुभाव सहु, ते भूपति के साथ ॥८३५॥

काची गढी न कायसी, विना धकै विनसाय।
वसै तामहै भैमयी, अलप काल रहवाय ॥८३६॥

मोह् बसाय अनादि कौ, भमैं भूपाल अयाण।
इक छोडे इक पुर गहै, मोह आण परमाण ॥८३७॥

कुवुद्धि सारिखी और नहि, जग मैं काइ कु नारि।
सो पटरानी राव कै, बैठी राज विगारि ॥८३८॥

घर खोवा घरणी इहै, कलह् कारणी जोय।
पापारंभ प्ररूपणी, कहां भलाई होय ॥८३९॥

भयौ कुमति कै भूप वसि, नहीं वुद्धि को लाग।
परचौ राव परमाद मैं, नहीं धरम सौं राग ॥८४०॥

महा मोह् निद्रा जिसी, निद्रा और न नीच।
सोवै सठ भूपति सदा, मोह् नींद कै वीच ॥८४१॥

घूमैं नृप वेसुधि भयौ, मोह् वारुणी पीय।
परचौ भर्म की पासि मैं, पिरथीपति दुक जीय ॥८४२॥

कुवुधि सुता है मोह् की, जाइ ममता मात।
चाहै मोह् प्रकास ही, अति अघ सौं न डरात ॥८४३॥

नहि प्रताप पति को चहै, निहिपति की विस्वास।
डरैं भूप कुवुद्धि तैं, धरै मोह् की आस ॥८४४॥

है कुभाव मंत्री कुटिल, मोह् मिलाऊ जोइ।
नृप कोउ दौन वांछइ, स्वामि दरोही सोइ ॥८४५॥

विषयनि के अनुराग मैं, राख्यौ राय लगाय।
रमैं सदा सव कुमति वसि, सुधि वुधि विसराय ॥८४६॥

नहि कुभाव सौंकलि विषैं, और कुमंत्री कोय।
चौर को पूठी रखा, कहां भलाई होय ॥८४७॥

चोरन नहीं इंद्रीन से, है तिनही कौ जोर।
ते कुभाव कै वलि सदा, करैं कर्म अति घोर ॥८४८॥

चौरें अहि निसि नृपत्ति घर, डर नहि राखैं भूलि।
रंच न दीखैं गुण रतन, देखौ नृप की भूलि ॥८४९॥

भंडारन निज ऋद्धि सौं, तीन भुवन मैं जार ।
कुबुद्धि कुभावनि दावियौ, दे भव भोग असार ।।८५०।।
राव ह्वै रह्यौ रंक अति, गुन धन विन नहि चैंन ।
भौंदू भूपति विपति मैं, परचौ वृथा त्रसि मैन ।।८५१।
भूलि रह्यौ नृप आपकौं, होय रह्यौ मतिहीन ।
भाव सुभट सब वुद्धि ढिग, वैठे बोध अधीन ।।८५२।।
सुबुद्धि रहै जु विवेक घरि, वैठी परम उदास ।
राव वात बूझै नहीं, करै कुवुद्धि विलास ।।८५३।।
आतम भाव भटानि कौ, नहि नृप कै संचार ।
मोहराव के राव तनि, दावि लीयौ दरवार ।।८५४।।
मोह राव को है सही, सेवक सदा कुभाव ।
कुबुद्धि पुत्रिका मोह की, चाहै मोह प्रभाव ।८५५।।
भेद न समझै मूलि ही, भौंदू करै विसास ।
मोह तिमर करि अंध नृप, भयौ कुवुद्धि कौ दास ।।८५६।।
निज परणति पर्याय निज, नृप परजा सुखदाय ।
तिनकौ वास न कुमति पैं, वसैं सुवुद्धि वसाय ।।८५७।।
सर्व विभाव विवाद खल, सकल विपरजै भाव ।
अखिल कुपर्याया सदा, वसैं कुवुद्धि प्रभाव ।।८५८।।
जीवक्षेत्र मैं जड़ मयी, रहैं कुभाव अनेक ।
कैसैं आय सकैं महा, सुवुद्धि सुभाव विवेक ।।८५९।।
है मिथ्यात महीप गुर, मोह प्रकृति मति हीन ।
पाप धरै प्रोहत पदा, जो जग माहि मलीन ।।८६०।।
कुवुधि कुभाव प्रभाव करि, राव ह्वै रह्यौ रंक ।
पटरानी राजै महा, राज विगार निसंक ।।८६१।।
आवै असुभ महीप पैं, शुभ कौ देय विडारि ।
शुद्ध भाव की वात हू, जहाँ कोयां ह्वै रारि ।।८६२।।

कायर कृपण कुचील जो, भाव भूप कै ताहि ।
सेनापति पदवी धरचा, कैसे राज जमेहि ।।८६३।।

द्वारपाल दरावर मै, परमादी परिणाम ।
रौके नहि अपराध कैं, राकै विधि कौ नाम ।।८६४।।

दुराचार कुटवाल है, सेठ महासठ भाव ।
बहुरि महा अन्याव से, जहा मीर उमराव ।।८६५।।

कुविसन सेना है जहा, बसती जहा विभाव ।
है फेलाव कुभाव कौ, राव करै नहि न्याव ।।८६६।।

भोग भावना भर्म मै, भूपही दोयो भमाय ।
करै कामदारौ कुमन, सुमनहु सकै न ग्राय ।।८६७।।

छल प्रपच पाखण्ड अर, पिसुन धूर्त खल भाव ।
पेसगार ए कुमनके, चाहे कुबुद्धि कुभाव ।।८६८।।

फैलि रहे वद फैल सहु, मेल भरे तहकीक ।
खेल मचि रह्यौ पुर विषै, वोलै वचन अलीक ।।८६९।।

अपने अपने स्वारथी, नही स्वामि की पीर ।
राज दावि लीयो अरचा, सुभटन नृप के तीर ।।८७०।।

ज्ञानावर्ण जु कम खल, मित्र मोह कौ एह ।
ज्ञाना शक्ति दावै सवै, दे दुख दोष अछेह ।।८७१।।

दरसन आवरणी कर्म, द्रिग अवरोध करेय ।
भाव भङनि कौ भूप कौ, दरसन होन न देय ।।८७२।।

कर्म वेदनी वलवता, महा मोह के जोर ।
करै असाता जीवको, करवावै अति सोर ।।८७३।।

कबहुक साता देय कें, तुरत खोसि ही लेय ।
सुखन अतिद्री होन दे, भव भव कष्ट करेय ।।८७४।।

लाग्यो काल अनादि कौ, नृप कौ मोह पिसाच ।
थावर जगम जोनि मै, करवावै वहु नाच ।।८७५।।

एक ठौर रहनें न दे, मोहासुर असुरेस ।
कवहुक सुर नर पसु करै, कवहुक नारक भेस ।।८७६।।

आयु नाम है कर्म इक, सहचर मोह नरेस ।
जीव अमर सो अलप थिति, करि राख्यो राजेस ।।८७७।।

नाम कर्म नामा करम, नाना देह धराय ।
भरमावै नरनाथ कौ, हुकम मोह कौ पाय ।।८७८।।

गोत्र कर्म अति भर्म जो, जीवहि मोह वसाय ।
ऊंच नीच गोत्रादि मैं, लघु दीरघ करवाय ।।८७९।।

अंतराय दुखदाय अति, मोहराय परसाद ।
जीवराय कों जगत मैं, करै अनेक विषाद ।।८८०।।

विघन करै आनंद मैं, मगन होन नहिं देय ।
विसतैं वुरे जु कर्म वसु, भव भव प्राण हरेय ।।८८१।।

क्रोध मान माया मदन, लोभ हासि रति सोक ।
अरति जुगपसा मोह के, सुभट रहे हैं रोकि ।।८८२।।

जांन देंहि निज धाम नहिं, राखैं जगत मझार ।
नरक निगोदादिक दुख, देहि अनंत अपार ।।८८३।।

क्रमि कीटादिक जोनि मैं, जामण मरण कराय ।
काराग्रह मैं नृप परयौ, दुख देखे अधिकाय ।।८८४।।

छूटि सकै नहि वंधतैं, रहै वहौत वेहाल ।
खैंच्यौ विर्षे कषाय की, भटकत फिरै भूपाल ।।८८५।।

टिक न सकै गढ वांधिकैं, लरि न सकै वलहीन ।
चउरासी लख जोनि मैं, भ्रमण करै अति दीन ।।८८६।।

निजपुर आतम भाव जे, तहा सकै नहि जाय ।
भवकातार असार मैं, भरमैं भौंदूराय ।।८८७।।

काल अनंतानंत मैं, कवहूक सुर पद होय ।
सुर भवतें मांनुव जनम, अति दुर्ल्लभ है सोय ।।८८८।।

ऐकेंद्रीय विकलत्रय, पसु नारक दुख रूप ।
जन्म अनंत निगोदि मैं, धरै मोह वसि भूप ।।८८९।।

कवहुक कोइक जीवकी, भ्रांति दूर ह्वै जाय ।
जानैं निज विरतात सो, ठांनें मोख उपाय ।।८९०।।

पूरण भाग प्रभाव तें, सतगुर दरसन होय ।
करै वीनती तव यहै, सुनै दयाकरि सोय ।।८९१।।

जीवो वाचा—

स्वामिन इह संसार है, अति असार भ्रमजार ।
भरमूं तामैं मोह वसि, लहूं न भवजल पार ।।८९२।।

कैसें पहूंचूं निजपुरा, भ्रमण मिटैं किम नाथ ।
मोह पासि तूटै कवै, अवलोकूं निज साथ ।।८९३।।

सो उपाय भाषौ प्रभु, तुम हौ करुणा सिंधु ।
लूटि सकै नहि मोह खल, छूटि जाय सव वंध ।।८९४।।

।। इति वहिरात्मा दशा वर्णनं ।।

———

।। श्री गुरु वाचा ।।

दोहा

श्री गुरु वाचा—

तू अनादि वंध्यौ भया, भ्रम करि भव के माहि ।
निज स्वरूप निज भाव भड़, तैं अवलोके नाहि ।।८९५।।

सुवुधि महाराणी शुभा, पतिवरता परवीन ।
ताकी तोहि न सुधि कछू, ता विन तू अति दीन ।।८९६।।

है प्रवोध मंत्री महा, ताकी तोहि न भेद ।
यक छिन मैं सो सांहसी, करै करम दल छेद ।।८९७।।

भाव अनंत महाभडा, मोह विदारण सूर ।
कुवुधि कुभाव प्रभाव तें, रहै तो थकी दूर ।।८९८।।

वैठे सर्व विवेक पैं, जहां सुवुधि प्रवोध ।
तेरे पुर मैं सर्वही, वसै विभाव अवोध ।।८९९।।

पटरानी तेरै वुरी, कुवुध कलंक निवास ।
वुरौ कुभाव प्रधान है, घरै मोह की आस ।।९००।।

वैठी सुवुधि अनादि की, घर विवेक कै वीर ।
तेरे सुभ चिंतक सवै, है विवेक कै तीर ।।९०१।।

करै राज वेढग तू, निजपुर को सुधि नांहि ।
अविवेकी अज्ञान तू, होय रह्यौ भव मांहि ।।९०२।

छाड़ि कुवुधि कौ संग अव, मेल्हि मोह कै याहि ।
निज वसि करि मन चपल कौं, ठाट कुभाव उठाहि ।।९०३।।

वसती काढ़ि विभाव की, कांम क्रोध कौं ठेलि ।
तोरि मोह की पासि अव, तज कुवुद्धि की केलि ।।९०४।।

सम्यक गढ़ मैं वास करि, लेहु सुवुधि वुलाय ।
करहु दूरि मंत्री कुमन, ज्ञान मंत्रि ठहराय ।।९०५।।

करि विवेक कौं राजगुर, पापहि तुरंत उथापि ।
प्रोहित पद दै धर्म कौं, शुद्ध स्वभाव सथापि ।।९०६।।

सेनापति तप संजमा, भड़ करि अपनैं भाव ।
निज प्रभाव उमराव करि, इह उपाय है राव ।।९०७।।

शुभाचार कुटवाल करि, दुराचार सहु मेटि ।
दरसन रूप उधारि हग, चारित सज्जन भेटि ।।९०८।।

हरहु प्रभाव विभाव कौ, मोह राव की कांणि ।
मति राखौ महिपाल तुम, गुर आज्ञा उर आणि ।।९०९।।

एक न राखौ मोह कौ, मन तन कौ परसंग ।
निज स्वभाव सेना करे, करहु करम दल भंग ।।६१०।।

राज करहु निजपुर विषै, अटल अचल सुख रूप ।
जहां न वस है मोह कौ, नही काल सौ भूप ।।६११।।

राज बिगारा दूर करि, राज सुधारा लेहु ।
यह उपाय करि राय तू, ममता भाव हरेहु ।।६१२।।

काया काची है गढी, जहा काल कौ जोर ।
रहनौ जामैं मोह वसि, वली काम से चोर ।।६१३।।

तजि काया गढ़ सर्व ही, सूषिम और सथूल ।
करि निवास निजपुर विषै, यहै वात सुख मूल ।।६१४।।

सुनी सुगुर की वारता, उर धारी भवि जीव ।
वुद्धि प्रवोध प्रभाव करि, त्यागे भाव अजीव ।।६१५।।

कियौ राज कटिक रहित, फेरि न विनसै राज ।
इहै वात जे उर धरैं, करे निजातम काज ।।६१६।।

गुर आज्ञा धारैं नही, तजै न कुवुद्धि कुभाव ।
ते अभव्य जन जांनियैं, तथा दूर भवि राव ।।६१७।।

वहिरातमता त्यागि कै, अंतरातमा होय ।
सो परमातम पद लहैं, इह निश्चै अवलोय ।।६१८।।

वहिरातम कौ वर्णना, जोहि सुनै धरि कान ।
सो वहिरातमता तजै, पावै आतम ज्ञान ।।६१९।।

निज लखिमी लखियां विना, है वहिरातम वीर ।
दौलति निज अनुभूति लखि, तिरै भवोदधि नीर ।।६२०।।

त्याग जोगि पर वस्तु जे, हेय कहावै तेहि ।
लेन जोगि निज भाव जे, उपादेय हैं एहि ।।६२१।।

हेय उपादेयंनि कौ, जो विचार अविकार ।
सो विवेक भासैं बुधा, ता सम और न सार ।।६२२।।

पढ़ै सुनैं अर सरदहैं, इह जु विवेक विलास ।
सो अविवेक निवारिकैं, पावै निजपुर वास ।।६२३।।

निजपुर सौ नहि कोइ पुर, जहां काल भय नाहि ।
कर्मन भर्मन कलपना, सुख अनंत जा मांहि ।।६२४।।

इति श्री विवेक विलास संपूर्ण ।। लिखी सवाइ जैपुर मैं मिती पोस सुदि ३ वीसपतवार संवत १८२७ ।। बाचै जोनै श्री स्वद वंचनां ।। श्री ।।

अध्यात्म बारहखड़ी

रचना काल —स० १७९८ फागुण सुदी २

रचना स्थान :—उदयपुर (राजस्थान)

ॐ नमः सिद्धेभ्यो नमः ।। ॐ नमः परमात्मने ।
अथ भक्त्यक्षर मालिका बावनी स्तवन ।
"अध्यात्म बारहखड़ी"—लख्यते ।।

श्लोक

मंगलाचरण—

वंदे मोक्षाधिपं देवं, मोक्षमार्गप्रकाशकं ।
भुक्तिमुक्तिप्रदातारं, भेत्तारं कर्म्मभूभृतां ।।१।।
गौतमादिमुनीन्वंदे, वंदे तत्वप्ररूपणां ।
वंदे समाधितंत्रं च, त्रयीमूलं तु नाटकं ।।२।।
गुरूमानंदरूपंच, देवं देवेन्द्रकीर्त्तितं ।
वंदे सवात्मरक्षाढ्य, ज्ञानब्रह्मैकरूपिणं ।।३।।
भक्त्यक्षरमयीमाला, ज्ञानतंत्रेण ग्रंथिता ।
प्रभोर्नाना गुणस्तोत्र, पुष्पै सौरस्यशालिभिः ।।४।।
मुनयो भ्रमरा यत्र, यांति तृप्तिं महाशया ।
नत्वा जिनांघ्रि पद्मे च, अर्पयामि शिवाप्तये ।।५।।

दूहा

वंदौ आदि अनादिकौं, जो युगादि जगदीश ।
कर्म्म दलन प्रभु जगपति, परमेश्वर चिदधीस ।।६।।
वंदौं केवलभाव कौं, केवल चिनमय ज्योति ।
जाके परसत परम सुख, ऋद्धि सिद्धि सब होति ।।७।।
केवल रूप अनूप कौं, हरिहर विधि रविकंत ।
कहिये श्रुति सिद्धांत मैं, सो श्रीपति अरहंत ।।८।।
शक्ति व्यक्ति वर मुक्तिकर, सदा ज्ञप्तिधर संत ।
वीतराग सरवज्ञ जो, सो गणपति भगवंत ।।९।।

और न दूजो देवता, और न दूजो पंथ।
शिव विरंचि जगनाथ है, जो जिनवर ग्रंथ ॥१०॥
वंदौं केवल राम कौं, रमि जु रह्यौ सब मांहि।
ऐसी ठौर न देखिये, जहां देव वह नांहि ॥११॥
व्यापि रह्यौ सब लोक मैं, अर अलोक हू मांहि।
लोक शिखर राजैं प्रभू, साधु लखैं निज पांहि ॥११॥
सब वामैं वह सबनि मैं, वह है सब ते भिन्न।
वातैं सब ही भिन्न हैं, वह भिन्नोच अभिन्न ॥१२॥
वंधनहर हर नांम धर, यम करि त्रासक सिंह।
वह जु हरी नरहरि धुरी, भवनासक नरसिंह ॥१३॥
कल्याणातम शिव जिको, विधिकारी विधि नांम।
द्वादशांग सूत्र जु रचैं, सहि विरचि सु राम ॥१४॥
रचै तत्व स्रिष्टी सर्व, विरचै अतत निर्तें जु।
वहै विरंचि न दूसरौ, सही वसै शिवमैं जु ॥१५॥
शिव जु मुक्ति कौ नांम है, सिव कल्याण जु होय।
शिव शंकर जिन देव है, और न दूजो कोय ॥१६॥
कर्त्ता आतम भाव कौ, कर्त्ता शिव को सोय।
हर्त्ता सर्व विभाव कौ, निवसै जो शिवलोय ॥१७॥
रतनत्रय को जोग है, तातैं जोगी जोय।
अतुल अनंते गुणनि कौ, भोगन हारी होय ॥१८॥
जोगी भोगी हरि सही, और न जोगी जोग।
और न भोगी भोग है, करि जु न जिन संजोग ॥१९॥
सर्वधांम मैं रमि रह्यो, रहै जु एकै ठाम।
रम्य सकल मैं रमण जौ, रमैं अखिल मैं राम ॥२०॥
सर्वग व्यापक विष्णु जो, सर्वज्ञो जिन ईश।
जयकारी जिन नाम है, जो महेश जगदीश ॥२१॥

गणनायक गणिनाथ जौ, शक्ति अनंत मुनिंद ।
शक्ति मूल शक्तीश जो, शक्ति रूप जिनचंद ।।२२।।
ज्ञान शक्ति द्रिग शक्ति जो. वीरज शक्ति अनंत ।
सुख शक्ती युत जिन प्रभू, अमित शक्ति भगवंत ।।२३।।
अंतर वाहिर तमहरन, भानुपती जिनदेव ।
बुद्धि प्रदायक बुद्ध जो, सुगत सहित सुखदेव ।।२४।।
सुमति सुगति दातार जौं, जिन गुरु देव दयाल ।
नागर नित्य विसाल जो, थिर चर को प्रतिपाल ।।२५।।
गणपति पति जु समूह कौ, गणधर पूज्य जिनिंद ।
नायक सबकौ है प्रभू, रहित जु नायक इंद ।।२६।।
नाम विनायक और नहि, वहै विनायक देव ।
सरसुति जाके मुख विषै, करीहौं ताकी सेव ।।२७।।
क्षेत्र जु कहिये द्वै विधी, स्वपर क्षेत्र विनु भर्म्म ।
असंख्यात परदेस जो, सो निज क्षेत्र सु मर्म ।।२८।।
पर क्षेत्र जु पर द्रव्य है, लोकालोक अकास ।
लोक जु कहिये पुंजवर, सकल द्रव्य परकास ।।२९।।
है जु अलोक सु एकलौ, जा मैं अवर जु नाहि ।
स्वपर क्षेत्र पालक प्रभू, क्षेत्रहु पालक हांहि ।।३०।।
क्षेत्र जु कहिये देह कौं, ताकौ पालक जीव ।
जीव तणों पति जिनवरा, क्षेत्रपाल पति पीवं ।।३१।।
क्षेत्रज्ञो क्षेत्राधिपो, क्षेत्रपाल जिनदेव ।
और न दूजो देव को, एक देव अति भेव ।।३२।।
वंदौं वा गुणधाम कौं, जो ज्ञानामृत पूर ।
प्रणति करौं सिर नायकैं, करि मेरे अघ चूर ।।३३।।
सेऊं देव दयाल कौं, कर्म्म हनत अतिशूर ।
द्रव्य कर्म्म नोकर्म्म अर, भाव कर्म्म तैं दूर ।।३४।।

पूजौ आतम देव को, करै जु आतम सेव।
श्रेयातम जगदेव जौ, देव देव जिन देव ॥३५॥

अतुल गुणातम गुणमई, परगुण रहति जु देव।
निग्गुण कहिए जो प्रभू, गुण अनत निज वेव ॥३६॥

करा अराधन नाथ की, जो अनत द्युतिरूप।
अगणित शशि सूरिज विभा, नख सम नाहि अनूप ॥३७॥

गुण पर्यय स्वाभाव जो, सर्व विभाव विलीत।
अनत कला अमम जु प्रभा, जगनाथो जगजीत ॥३८॥

आप एकलौ सर्वधर, एकानेक स्वरूप।
अनेकात आगम प्रगट, अनुभव रसको कूप ॥३९॥

वहिरगा कमला तजे, अमला कमला पासि।
सो कमलापति देव है, काटै जग की पासि ॥४०॥

कमला नाम न ओर है, कमला निज अनुभूति।
हृदै कमल राजै सदा, आतम सक्ति प्रभूति ॥४१॥

कमला निज अनुभूति है, वसै जु जिनकै माहि।
चरण कमल तजि जाय नहि रहै सदा प्रभु पाहि ॥४२॥

नाहि प्रदेश जु भिन्न है, कमला अर प्रभूके जु।
द्रव्यर परणति भेद नहि, एक रूप अधिके जु ॥४३॥

जल तरग दुविधा नही, भानु रश्मि नहि भेद।
तैसै कमला हरि विषै, श्रुति गावै जु अभेद ॥४४॥
वह कमलाधर जिन प्रभू, वसै सदा मन माहि।
मै मूरख अलगौ रहू मो सम मूरिष नाहि ॥४५॥
वाही के परसाद तै, खोलू मिथ्या ग्रथि।
तव वास्यौ विछुरू नही, ध्याऊ ह्वै निरग्रथि ॥४६॥
रहू सदा मै हरि कनै, तजौ न हरि कौ सग।
जिन रगै रत्ता रहू, तजिकै द्विविधा सग ॥४७॥

नमो नमो वा देव कौं, द्रव्य भाव मन लाय।
सबही तें न्यारो रही, सेऊं वाके पाय ।।४८।।

छंद नाराच

तू कर्म्मनाग केहरी, तुहीं जुहै नृ-केहरी ।
प्रकृत्य भाव दूरगो, तुही जु देव है हरी ।।
प्रभू जु केवलात्म को, सही जिनो हरो हरी ।
गुण अनंत नायकौ, तु ही गणेश है धुरी ।।४६।।

तुही जिनेश संकरो, सुखकरो प्रजापती ।
तुही हिरण्यगर्भ को, अगर्भ को धरापती ।।
महा स्वशक्ति पूरको, तुही जिनो रमापती ।
रमाजु नांम भांम नांहि, शक्ति रूप है छती ।।५०।।*

तुही विशेष चा विशेष, शक्ति ते अनंत हैं ।
सुचिद्विलास ज्ञानशक्ति, दृश्य शक्तिकंत है ।।
अवाप्त रोम महाजु सत्व, तू जुहै तमंहरो ।
विधिकरो दिनंकरो, शिवंकरो रमावरो ।।५१।।

सुयोगिनाथ नायको, भवंहरो मुवाहरो ।
सुधातरो उमावरो, जपै जुता हिमाधरो ।।
सुनायको विनायको, सही स्वयोगदायको ।
अकाय को अमाय को, सदा सुबुद्ध नायको ।।५२।।

निर्जवरो परंकरो, परंहरो यतीस्वरो ।
शिवोभ वोधवो सदा, शिवो सही रमाधरो ।।
तु हीं जिनेंददेव, और दूसरौ जु भेदनां ।
सही जु शक्ति व्यक्ति रूप, पाप पुण्य छेदनां ।।५३।। ×

* छंद संख्या ५१ मूल प्रति में नहीं है।
× छंद तो है, पर संख्या ५४ नहीं है।

तु ही मुनीश वृद्धि दो, स्व ऋद्धि दो निरंतरो ।
अनतभाव व्यक्ति दो, प्रबुद्ध है क्षमंकरो ।।
अनादि ब्रह्मरूप को, अरूप को विसुद्ध जौ ।
महाधि लछिमूल जो, निकूप को प्रसिद्ध जौ ।।५४।।

क्षमापरो परापरो, परंपरो वरंकरो ।
हितकरो मितकरो, दयाकरो कृपाकरो ।।
महासुदेव तू वही, न ओर कोय दीसही ।
विभू प्रभू महाप्रभू, स्वभू अभू जगीसही ।।५५।।

तुही तुही तुही सही, न तो समोन्य दूजही ।
जिहा तिहां लखै जु साधु, एक तोहि पूजही ।।
तु ही यती अनर्भ को, अगर्व को पवर्ग को ।
अवर्ग को सुसर्व को, मुनीश ध्येय सर्ग को ।।५६।।

नराधिपो सुराधिपो, फणाधिपो तुझै भजै ।
अनादि काल के जु कर्म्म, दासतै परे भजै ।।
तु ही जु नांहि बाल है, न वृद्ध है युवा न है ।
अनेक एक ज्ञान रूप, ईश तू निधान है ।।५७।।

जिनोत्तमो जिनोत्तमो, जनोत्तमो जगोत्तमो ।
वरोत्तमो वुधोत्तमो, नरोत्तमो निजोत्तमो ।।
परोत्तमो पुरोत्तमो, धुरोत्तमो गुरोत्तमो ।
सुरोत्तमो सतोत्तमो, सितोत्तमो हितोत्तमो ।।५८।।

सजोग को अजोग को, सवोध को अवोध को ।
अरोग को असोग को, स्वसोध को निरोध को ।।
अलोक को सलोक को, अथोक को सथोक को ।
अनोघ को अमोघ को, विवोध को अरोध को ।।५९।।

नही जु सून्य वादि को, जिनो अनादि आदि को।
तुही जु स्यादवादि को, अनंतभेद है इको।।
सदा जु सप्तभंग भास को, अनंत भास को।
अभास है अकास है, अनास है विभास को ।।६०।।

अरणाथि को जु आथिकौ, जिनंद लंवहाथ को।
सदा जु सर्वसाथ को, त्रिलोकनाथ नाथ को।।
सही जु तीरथंकरो, तिथंकरो शिवंकरो ।
तुही सुबुद्धिदाय को, अपाय को अकिंकरो ।।६१।।

अरणाथि को कहतां अरणाथि जे निरगंथ साधु त्यां कौ पति छै अथवा आपही वहिरंगा कमलास्यौं अलिप्त सर्व परिग्रह रहित नगन दिगंबर छै अथवा अरणाथि जे गरीब लोक त्यांकी प्रतिपाल छै अथवा अरणाथि जे निगोदादि थावर जीव ज्यांकै इंद्री प्राणादिक की आथि थोडी त्यांको दयाल छै अथवा अरणाथि जो अलोकाकास जहां जीवादि पदार्थ नही शून्य रूप अनंतौ छै। तीहूं कौ ज्ञायक अंतरजामी छै ।। अर आथिको कहतां आस्तिका धणी जो ऋद्धिधारी मुनि त्यां की नाथ छै अथवा आप ही अनत ऋद्धि सिद्धि समृद्धि कौ भर्यौ छै। अनंत लक्ष्मी कौ नाथ छै अथवा आथि का धणी इंद्र चक्रवर्त्यादिक त्यांको नाम छै। अथवा सभाग्या धनवंत लोक त्यांकौ प्रभू छै अथवा इंद्रियादिक की आथि जाकै असा जेवे इंद्री आदिक जंगम जीव त्यांकी रक्षक दयापाल छै अथवा आथि जो लोकाकास जहां जीवादि पदारथ पाजे तीको धनी छै लोक को स्वामी छै।

प्रभू जु केवलीस जो, अनादिकाल ज्ञायको।
सुरेश यस्य पायको, तुही जिनो अमाय को।।
सही निजैक्य दायको, तुही अनंत ज्ञायको ।
जु सादि औ अनादि रूप, तू जु तत्व नायको ।।६२।।

पुराण है, पुनीत है, सही सुयोगि गम्य है।
वीतीत है अतीत है, सही सुलोक रम्य है ।।
चिदात्म है सुखात्म है, अनंतभाव स्वात्म है।
भवांत है अघांत है, तमांत है निजात्म है ।।६३।।

महा जु विष्णु व्यापको, अव्यापको अलिप्त जो।
तु ही स्वयोग है समाधि, रूपदेव तृप्त जो॥
निरीह को अनीहको, अतीह को अवीह को।
निरीश्वरो अनीश्वरो, अतीश्वरो नृसींह को॥६४॥

तु ही जु राम नाम है, सही विराम काम को।
तु ही जु सर्वधाम है, सही सु एक धाम को॥
तुही अनंत ग्राम है, सही सु एक ग्राम को।
न ही जु काम क्रोध रूप, राम है अकाम को॥६५॥

सुसिद्ध तू प्रसिद्ध तू, विरुद्ध कौ विनाश तूं।
सही जु अर्हंदेव है, सदा स्वचक्षु भासतूं॥
सुसूरि तू प्रभूरि तू, सदाजु तू अध्यापको।
सु साधु तू अबाध तू, अलोक लोक मापको॥६६॥

असाध को असाध्य तू, सही जू योग साध्य है।
अराधि तूं उपाधिना, तूही मुनी अवाध्य है॥
तुही जु ना अराधको, सबै तुझै अराधही।
कभी जुना विघातको, महा जु साधु साधही॥६७॥

प्रजापती सुगोपती, सदा च गोरखोयती।
तुही अनंतज्ञान दो, सुदत्त है धरापती॥
सु पौरषो अपार तू, महास्व पौरषेश तू।
सबै प्रकृत्य चूर को, अरूप को जिनेश तू॥६८॥

अमूरतो अधूरतो, असूरतो निरंतको।
महा अनंत अमूरतो, सबै विभाव अंतको॥
स्वरूपदो अरूपदो, स्वभावदो विभास्वरो।
अरंजको निरंशको, अनंतभा प्रभास्वरो॥६९॥

सदासुभाव कारको, विभावता विदूरगो ।
महा अभाव भावको, अभाव भाव चूरगो ।।
महा सभाग भाग्यदो, सुशांत भाव पोषको ।
स्वभाव भुक्ति भोगको, सदा विमुक्त मोषको ।।७०।।

अद्वैतभाव मुक्त जो, सद्वैत भाव मुक्त जो ।
अनेक एक दोय रूप, है अरूप युक्त जो ।।
निराकृतो चसाकृतो, विशेष भेव देव जो ।
रमापती जिनाधिपो, शिवाधिपो अभेव जो ।।७१।।

रमाधवो उमाधवो, भजै जु जाहि साधवो ।
शचीधवो धराधवो, जुपै जु जाहि राधवो ।।
सदा सुबुद्धि राधिका, पत्ती मुनीश ईश जो ।
सबै कुबुद्धि खंडको, महाव्रती अतीश जो ।।७२।।

इष्वाक वंशतारको, सु सोमवंश तारको ।
महाकुरू जु वंशतार, नाथ उग्रपारको ।।
सुविप्र वर्ण तारणो, सुक्षात्र वंश धारणो ।
सुवैश्य वंश तारणो, त्रयी उधार कारणो ।।७३।।

तुही जु शूद्र तारणो, न पुंस ढोर तारणो ।
सुरा सुराच नारकी, जु नारि भी उधारणो ।।
सही जु जन्म अंतिरै, उधारि है विनात्रयी ।
जिके सु सम्यका प्रभू, तुझै जु ध्याय ह्वै जयी ।।७४।।

सुनाभि जो उधार को, सुचक्रनाथ तारको ।
अनादि जोग धारको, सुकर्म्म भूमि कारको ।।
अनंतसौख्यि सारको, जुगादि नाथ साथको ।
सही जु आदिनाथ है, तुही अनादि नाथको ।।७५।।

महायती अजीत जो, असंभवो च शंभवो।
सदाभिनंदनो जिनो, मतीशनाथ व्रंभवो ।।
सुपद्मनाभ पद्म जो, निपद्मनाथ नाथसो ।
सही सुपास है प्रभु, रहै जु पासि साथ सो ।।७७।।

सुचंद्रनाथ चंद्रधार, चंद्रकोटि ज्योतिसो ।
अनंतज्योति धार जो, अनंतसूर द्योति सो ।।
सुपुष्प तुल्य दंत यस्य, पुष्पदंत कंत सो ।
सुशीतलो श्रियंकरो, श्रियांसनाथ संतसो ।।७८।।

सदा जु वास वैसुपूजि वासुपूज्य देव जो ।
सुनिर्मलो अनंत जो, सुधर्म्मनाथ सेव जो ।।
सही सु सातिनाथ है, प्रशांत सर्व्वकारको ।
वही जु कुंथवादि जीव, रक्ष को उधार को ।।७९।।

जु कुंथवादि जीवनाथ, कुंथनाथ देव सो ।
अरो अजो रजोहरो, हमै जु देऊ सेव सो ।।
सुमल्लनाथ मल्लिनाथ मोहमल्ल मार जो ।
अनतजीत देव जो, सुव्रतनाथ सार जो ।।८०।।

मुनीशव्रत्तदायको, जिनो मुनीसुव्रत को ।
नमै सुरासुरीतरा, नमीशनां अव्रत्त को ।।
नहीं च कृष्ण भाव सो, सदा जु कृष्णरूप सो।
सही जु कृष्ण ध्येय है, सु नेमिनाथ भूप सो ।।८१।।

यदूकुलेशनाथ जो, सु यादवो उधार वो ।
शिवा जु देवि तार को, समुद्रजीत पार को ।।
प्रभो गीरीश नायको, सुराज संविडार को।
सु बालब्रह्मचारको, सुराजल उधार को ।।८२।।

सदा जु पासनाथ जो, रहै न जीक नाथ जो।
सही जु वीरनाथ जो, महासुवीरनाथ जो।।
सदा जु वर्द्धमान जो, सही सुवर्द्धमान सो।
मतिकरो गतिकरो, जु सन्मती अमान सो।।८३।।

अतीव वीर धीरवीर, है प्रभू सुनीर जो।
वसै सदा जु आप मैं, हरै जु सर्व वीर जो।।
जु पासि है अपासि है, प्रभु जु सर्वनाथ सो।
अनंत है जु एक रूप, तीर्थनाथ नाथ सो।।८४।।

इत्यादि है अनंत नांम, एक वीतराग जो।
अनादि है अनंतधाम, वाहिस्यौं जु लाग जो।।
महाविदेह क्षेत्र आदि, एकसौ जु सत्तरी।
त्रिपंच कर्मभूमि माहि, जे विभू महत्तरी।।८५।।

जिके जु अर्द्ध सिद्ध साधु, केवली निरंजना।
गणाधिपा श्रुताधिपा, जिनाधिपा अरंजना।।
सुरंजना सवै जु लोक, भारती जिनोद्भवा।
मुझै जु देऊ शुद्ध तत्व, ईश्वरी मुखोदभवा।।८६।।

दोहा

सरस्वती स्तुति—

सरवग के मुखतैं भई, सदा सारदा देवि।
वहै ईश्वरी भारती, सुर नर मुनिजन सेवि।।८७।।
अक्षर जो क्षरि है नही, अनिधन अवितप देव।
सोई अक्षर वावनी, प्रकट करै अभिलेख।।८८।।
तेतीसौं विजन जिके, सुर चौदा सव होय।
जिह्वा मूली पुलतजो, गज कुंभा कृति जोय।।८९।।

अनुस्वारो जु विसर्ग है, ए सब बावन अंक।
अ आ इ ई औ लगें, चौदा सुर जु निशंक ॥६०॥

क का आदि हकारलौं, विंजन है तेतीस।
अं अनुस्वारो जांनियै, अः विसर्ग धर ईश ॥६१॥

पुलतज कहिये उच्चसुर, वह जु त्रि मात्रा जांनि।
गज कुंभा कृति गुरनितैं, जिह्वा मूलि प्रवांनि ॥६२॥

द्वापंचाशत अक्षरा, बहुरि जिके बीजांक।
संयोगी द्वित अक्षरा, सबकौ प्रगट शिवांक ॥६३॥

सब अक्षर के आदि ही, राजै प्रणव स्वरूप।
ॐकार अपार प्रभु. आपै आप अनूप ॥६४॥

सो अक्षर नही और है, अक्षर रूप सु आप।
तातै ॐ आप है, हरै सकल संताप ॥६५॥

देव शास्त्र गुरु की कृपा, ताते आनन्द पूत।
भाषै अक्षर बांवनी, नभि जिन मुनि जिन सूत ॥६६॥

× × × ×

आगै चउदह स्वर अनुसार विसर्ग। ए षोडसाक्षर स्यामै मुख्य अकार, अकार विना ककारादि सर्व अक्षर खोडा छे। क असौ शब्द उचार कीजै। तब अइसो सुर-ककार मैं उचरै। सर्व अक्षरां कौ जीवजोग अकार छैं। तातै प्रथम ही अकार को व्याख्यान करै छै। सो एकाक्षरी नाममाला मैं अ नांम हरिहर कौ कह्यो सो हरिहर जिन भगवान ही कौ नाम छैं। पापां नै हरै। तास्यौं हर सारां का इंद्र तीस्यौं हरियम कुंजर नै भयकारी। सिंह समांन तीस्यौं। हरि सर्व कर्म्म नै जीतैं। तिस्यौं जिन सो ए नाम एक श्री जी का छै॥

श्लोक

अनादिनिधनं वंदे, जिनं हरिहराभिधं।
अलक्षं लक्षणोपेत, अमरामरमीश्वर ॥१॥

सोरठा

अकाराक्षर वर्णन—

अक्क कहिये श्रुति माहिं,
हरिहर को इह नाम है ।
तो विनु अवर सुनांहि,
हरिहर जिनवर देव तू ।।१।।

छंद बेसरी

अणोरणीया महतो महिता,
तू अद्‌भुत आतम गुण सहिता ।
तू अनंत जितदेव अभीता,
भव संतान अनंत विजीता ।।२।।

अर्द्ध मात्र तेरै नहि शत्रू,
अर्द्ध जु नारीश्वर जग मित्रू ।
तेरै कंटिक अर्द्ध न पइए,
तू अर्द्ध जु नारीश्वर कहियै ।।३।।

*अमल चक्षु तू क्षायक दिष्टी,
अनत चक्षु तू ईश्वर सिष्टी ।
अमित पराक्रम धारी राया,
अतुल सुखातम रूप अकाया ।।४।।

अचल प्रकाश अनंत सुलोकी,
लोकालोक विलोकक थोकी ।
अतुल लब्धि को तूही ईशा,
तू जु अयोनी संभव धीशा ।।५।।

---

* अनत कहतां न्यारी सर्व प्रपंच सौं न्यारी छै, क्षायक द्रिष्टि जिहकी ।।
अमित कहतां जिह की मरजाद अनंती छै ।।

अनत दान अर अनत जु लाभा,
अनत सुभोगुपभोग महाभा ।
तेरी समता तू ही सामी,
तो सौ और न अतरजामी ॥६॥

अजड अतिंद्रिय ज्ञान अनता,
तू जु विकल्प प्रवाह हनता ।
सकल्पा अर सकल विकल्पा,
मेरे मेटि जु देव अकल्पा ॥७॥

अकषाई तू परम पुनीता,
तू जु अलेसी देव प्रतीता ।
सुख जु अतिंद्रिय देहु जु मोकौ,
धोकौ द्रव्य भाव करि तोकौ ॥८॥

अमलातम तू विमल अरूपी,
अनहारी तू तृप्त स्वरूपी ।
तू जु अतेंद्री देव अजोगी,
तू जु अवेदी वेदक लोगी ॥९॥

अजरातम तू अजरण साई,
तू जु अमृत्यु अकाल गुसाई ।
तू जु असेष वितीत असेषा,
तू अचलातम जन्मन भेषा ॥१०॥

तू जु अचित्यातम अति धामी,
चितऊ कैसे तो को स्वामी ।
अल अल पूरण अत्यर्था,
तेरै नाही एक अनर्था ॥११॥

तू हि अनर्थी अर्थ न एका,
तू हि जु अर्थी अर्थ अनेका ।
जड़ रूपी अर्थनि तें न्यारा,
चेतन अर्थ तु ही जग प्यारा ॥१२॥

सकल अर्थ ए जग के झूंठे,
तेरे अर्थियती जगरूठे ।
अदभुत देव तुम्हारी प्रभुता,
तुम अधियोगी भरित सु विभुता ॥
तू जु अनस्वर रूप जिनंदा,
तू अजर्य अजीरण इंदा ।
तू जु अनंत दीप्ति भगवंता,
तू जु अग्रणी श्री अरहंता ॥१३॥

अर्हन तू अरूजा अचल स्थिति,
तू अक्षोभ विदारक भवथिति ।
अच्युत भू पामोहु उधारौ,
दीनानाथ जु विरद उजारौ ॥
असंभूश्नु है नाम जु तेरा,
मेरा हू करि देव निवेरा ।
तू अरिष्ट अति सूक्षम विमला,
तू अति निर्म्मल चिदघन अमला ॥१४॥

अनुभव नाथ अधिक तू प्यारा,
तू अशेष कलमष तें न्यारा ।
मोकौं दै निज अनुभव स्वामी,
निज अनुभूति निवास स्वधामी ॥१५॥

---

१ १३वां तथा १४वां छन्द चार पंक्तियों का है ।

अतिसंगी तू है जु असंगा,
यतिसंगी तू है जु अरंगा ।
रंगनाथ तू है अती रंगी,
लोकनाथ तू कथक त्रिभंगी ।।१६।।
तू अधर्मधक अगनि स्वरूपा,
तू अति धर्म्मी त्रिभुवन भूपा ।
तू अमूरतातम अति ज्ञानी,
तू जु अनंतग अति गतिमानी ।।१७।।
अमृतोदभव अमृत आतम,
तू अशोक ध्वज अति जगदातम ।
तू अशोक घनशोक वितीता,
शोक संताप हरौ मम जीता ।।
तू अगण्य गणती तुझ नांही,
तू अचित्य वैभव समांही ।।१८।।
अभिनंदन अभिनंदनक देवा,
तू जु अपरमेयातम भेवा ।
तू सु अरिंजय फुनि जु अभीष्टा,
तू जु असंस्कृत सब जग द्रष्टा ।।१९।।
तू अप्राकृत अवधि जु वासी,
मेरी काटि देव जम पासी ।
तू जु अनाश्वा अशन वितीता,
तू जु अनत्पय अत्पय जीता ।।२०।।
तू जु अव्ययो नाश न तेरा,
व्यय अत्पय नाम जु मरणोरा ।
त अधिकोधि गुरु जु मुनीशा,
तू न अधातम देव अधीशा ।।२१।।

---

१ १८वां छन्द तीन पक्तियो का है ।

अक्षय तू च अनगु अग्राहक,
अविज्ञेय अवितर्क अवाहक।
तू जु अगम्य अध्यातम गम्या,
अक्षप्तो तू परम जु रम्या ।।२२।।

तू अमोघ शुभ वाच जु स्वामी,
मोघन तू जु कदापि अकामी।
मोघ जु नाम कहै सु वृथा को,
तू कबहूं न वृथा वितथा कौ ।।२३।।

तू अमोघ शाशन जगनाथा,
तू अमोघ भापक जिननाथा।
तू अमोघ आज्ञादायक है,
तू जु जिनंदा सब लायक है ।।२४।।

तू जु अतींद्रिक उपमाराया,
तू अधिपति अर अधिप अछाया।
तू अचिंत्य चिंतक जगदीशा,
तेरी आज्ञा सबकै सीसा ।।२५।।

अधिदैवत तू अप्रतिघाता,
अप्रतिधो अति जगत विख्याता।
तू अमुग्ध अति मुग्ध जु लोका,
तेरी सेव न जांनहि बोका ।।२६।।

अमित सुज्योति श्री भगवंता,
तू जु अमोमुह ओज अनंता।
तू जु अधिष्टानं अप्रतिष्टा,
तेरी सर्वंग ख्यात प्रतिष्टा ।।२७।।

अभयकर तू उद्यतद्योती,
अखिलातम तू अखिल प्रज्योती ।
तू अपरधी अनत सु सक्ती,
कैसें करिहौ तेरी भक्ति ॥२८॥

तू जु अनिद्रालू जोगेसा,
तू जु अतद्रालू अतिभेसा ।
तू जु अनामय आमय त्यक्ता,
व्यक्त अव्यक्त सुव्यक्ता व्यक्ता ॥२६॥

अनुभवगम्य सुगम्य अनूपा
अलभ अकथ्य अवाच्य अरूपा ।
अजर अछेद्य अभेद्य अतीसा,
अमर अलभ्य सुलब्ध यतीशा ॥३०॥

अचर अचिंतित तू जु अशब्दा,
अति भवदाह वुझावन अब्दा ।
तू जु अनिंदित वंदित देवा,
परम अनदी अकल अभेवा ॥३१॥

अतिदुर्लभ अतिवल्लभ स्वामी,
अतिपावन अतिभावन नामी ।
अति सु दयाल अनुत्तर साई,
अति सु कृपाल अपाल गुसाई ॥३२॥

अतिधर्म्मी अभिवद्य जिनिंदा,
अतिज्ञानी अजरामर इंदा ।
अतिमर्म्मी अथकंद निकंदा,
अतिध्यानी अघचूर मुनिंदा ॥३३॥

अतिदानी अति सुंदरनाथा,
अत्युत्तर पर अतिगुण साथा।
तू जु अलक्ष अचक्ष अवर्णा,
तू जु अनक्ष अपक्ष अकर्णा ॥३४॥

अतिगति अपरस अतिपति तू ही,
तू अतिचक्षु अबाल प्रभू ही।
तू जु अनंबर अंबर स्वामी,
अक्षजीत तू अति अभिरामी ॥३५॥

तू जु अजीत अभीत अकल्ला,
तू जु अतीत प्रतीत अटल्ला।
तू जु अमूरित मूरति जैना,
तू अति सूरति अदभुत वैना ॥३६॥

अति धीरज तू अतुल अचल्ला,
अमरण अमृत अवश अखिल्ला।
अरज अजो अजरो च अमल्ला,
तू जु अवस्पादेय असल्ला ॥३७॥

अरस अगंध जु रूप न तेरै,
अफरस तू हि जु शब्द न प्रेरै।
अग अभयो जु अविक्त गुसांई,
अक्रिय रूपी अमन असांई ॥३८॥

अभिप्राय सु जाकै नही कोऊ,
अभिप्राय जु ज्ञायक इक होऊ।
अपर अपार अजड़ अरनाथा,
अकर अवक्त वि अतिवडहाथा ॥३९॥

तू अविकार अनजन स्वामी,
तू अनगार अरजन सामी ।
अति अधिकार जु एक तुही है,
गति गति ज्ञायक ज्ञायक तूहि सही है ।।४०।।

अवधिगम्य च साय हमारा,
सर्वाधिक्य सुरूप तुम्हारा ।
अक्षातीत अक्षविलीत,
अअरवीत परमप्रतीत ।।४१।।

अक्षर तू अक्षर तैं न्यारा,
अक्षर भासत जगत उधारा ।
अति दुषहर अघहर अभिनदी,
अति भरपूरण एन निकदी ।।४२।।

तू जु अकर्तृम देव अनादी,
अतिभव कदन एक अवादी ।
अकलित अखिलित तू जु अनुत्तम, *
तू अतिभार अभार जगुत्तम ।।४३।।

अत्युत्तर तू नाथ अत्युत्तम,
सुखतर उत्तर तू जु जिनुत्तम ।
अभयकरण अतिधरण अनता,
अजित जिनेश्वर श्रीभगवता ।।४४।।

तु विदार अनगस्वरूपा,
अतनु जु कहिये काम अरूपा ।
अनघ प्रचार अहित हत तू है,
अचर अचार प्रभग प्रभू है ।।४५।।

* अनुत्तम कहता महा उत्तम सारा उत्तम जिह पाछै छै ।

तू जु अनंग विवर्जित सांई,
ब्रह्म स्वरूपी देव गुसांई।
असत विवर्जित शील जु तूही,
अदयावर्जित जगतप्रभूही ।।४६।।

अनृतवर्जी अदितवितर्जी,
तू जु अहिंसाप्रेर अगरजी।
अदतन लेवा तू जु अकिंचन,
तू जु अलोक निवार निरंजन ।।४७।।

तू जु अहिंसाराय अमाया,
हिंसावर्जित धर्म्म वताया।
अतत अमत तैं सहित जु नाथा,
अदत्त निकंदा तू वडहाथा ।।४८।।

अमरेश्वर पूजित जिनदेवा,
अहपति गोपनि धारहि सेवा।
चतुर निकायक पायक तेरे,
अर्कपती हरि तिमर जु मेरे ।।४९।।

अहमिंद्रनि करि तू जु पुजानां,
तू अमरेंद्र इंद्र भगवांनां।
अहिपति अधिपति सुरपति जेते,
तव दासनि के दास जु तेते ।।५०।।

*अतिहित अघहत्त अहिपति तू,
अभगत अतिगति अतिछति जति तू ।।५१।

---

* इसमें अंतिम पंक्ति नहीं है।

अधिपति तू हि जु और न कोई,
अवितथ अविगत अवहित होई ।
अखलित अचलित भाव जु तेरा,
तू जिनवर जतिवर सब केरा ।।५२।।

तू अरिहंता अर्हं जु मिता,
तू जु अनंता श्रीअरहंता ।
अर्हत तू जु अविद्याहारी,
अर्क अनंत समोद्युति धारी ।।५३।।

तू जु अनंत सुदर्शी ईशा,
तू असपर्शी एक अधीशा ।
अर्द्ध सु चक्री वंद्य तुही है,
तू जु त्रिखंडी नाथ सही है ।।५४।।

अखिल जु चक्री वंदहि तोकौ,
चक्रपती पति दै शिव मोकौं ।
अखिल सु मंडलिका नृप सेवैं,
अनगारा मुनि तोहि जु लेवै ।।५५।

अणुव्रत धर श्रावक जे स्वांमो,
तोहि जु पूजहि तू गुणग्रांमी ।
अवरत समकित धर थुत तू ही,
अमरासुर पूजित जगदूही ।।५६।।

असुरसुरा सव तोहि जु ध्यावें,
अपछर गणसुर धरि गुण गावै ।
तूं अभिध्येय विकासक देवा,
तू अभिधांन प्रकास अछेवा ।।५७।।

तू अभिधाता अतिगरापाता,
तू जु प्रमाता नाथ अघाता ।
अतिगुण-पूरा अतिसयधारी,
अतिभवदूरा निकट विहारी ॥५८॥

अमरांणी इक तोकौं वंदै,
इक भव धरि वह कर्म निकंदे ।
अमरेस्वर अमरांणी दोऊ,
शची सुधर्मा तो मय होऊ ॥५६॥

अब्रह्मनिंदक अधिक जिनंदा,
ब्रह्मचर्य धर तू जू मुनिंदा ।
अवला निंदक तू जु प्रभूजी,
अवल विलोकइ तू जु विभूजी ॥६०॥

तू जु अगृद्ध सुगृद्धि न तेरैं,
अति जु अकिंचन रंच न प्रेरैं ।
परम अकिंचन प्रकट करेवा,
अदुरित रूप जु अदुरित देवा ॥६१॥

अवला-तजक अलंपट ज्ञांनी,
अवला अधमपुरी परवांनी ।
अदयावर्जित श्रीपति स्वांमी,
अदया नर्कपुरी पदगांमी ॥६२॥

अधम पुरुष अदया कौं लागैं,
त्यागि अहिंसा पापहि पागैं ।
ते सठ लहहि न शिवपुर वासा,
दुरगति भोग लहैं अघदासा ॥६३॥

अदया अदतन अवला जाके,
अनृत अब्रह्म गहि न ताकै ।
परम अकिंचन है भगवाना,
अवला संग न जसुधन धाना ।।६४।।

तू जु अशील तणों अवहाला,
शील स्वरूप अरूप अहीला ।
दु शति टीला एद न तेरै,
शील निरूपक एनन प्रेरै ।।६५।।

तू जु अकेला कर्मदहता,
तू जु अचेला एक अनंता ।
तू जु अकिंचन मूल गुसाई,
तू जु अलध्य असंधि अमाई ।।६६।।

तू जु अजघा वज्र भुजघा,
तू जु अलघा किनहिंन लघा ।
तू अभिलाप विवर्जित ज्ञानी,
अंतरहित अंतरगति जानी ।।६७।।

अतुल बली अतिभार धरैया,
अनंत सुखी अतिभोग करैया ।
अन उपभोग प्रपूरण स्वामी,
तू जु अयोगी जोग अकामी ।।६८।।

अति तिक्षाहर क्षम इक तूही,
तू जु अमाना अजित प्रभूही ।
तू जु अदंति दंभ न जाकै,
तू जु अचती कपट न ताकै ।।६९।।

तू जु अमार्दव नासक एका,
तू जु अनार्जव छंड अनेका ।
तू जु अदूज दूजि न तेरै,
अकपट अकपाट सु प्रभु तेरे ॥७०॥

तू जु अनूट अकंट गुसांई,
अनृतवर्जित धर्म्म कराई ।
नाहि अलीक सुशासन तेरौ,
अतितिक्षा जिनहित जु धर्णेरौ ॥७१॥

जपैं अनार्जव नाश प्रवीनां,
तोहिन पावहि मार्दव हीनां ।
अनिधन भाव जु तो तैं लहिये,
असत अतत माया तैं रहिये ॥७२॥

तू जु अशौच प्रहार सु सूचा,
पूज अधातु अगात सु ऊचा ।
तू जु अजात न जातक काको,
तू जु अभूप प्रभु सुरमाकौं ॥७३॥

तू जु अनूप अनंद स्वरुपा,
दूरि नही तू दूरि अरूपा ।
तू जु असंयमहर यमधारी,
यम हारी तू संयमहारी ॥७४॥

संयम कारण तू अविकारी,
अति संयमधरनाथ अपारी ।
तू विभूयम भर निय स्वरूपा,
अनियमहारी तप जु अरूपा ॥७५॥

अति तपकर अति तपधर स्वामी,
अति तपभर अति तपहर नामी ।
अति तप अनशन आदिक प्रगटा,
अति तप–ज्वर–रोगादिक विघटा ॥७६॥

अति तप विनिंदक अति तप भाया,
अनशन रूप अभूष अकाया ।
अदन नही तेरैं कवहू जी,
अनशन भास कहै जु विभूजी ॥७७॥

अवमोदर्य प्रसंसक तू है,
तप तेजस्वी तू जु प्रभू है ।
अति वृतिपरिसंख्या क्षायक तू,
अति रसनायक सब लायक तू ॥७८॥

तू अतिरस अर रसपरित्यागी,
अतिरित शय नाशन तप भागी ।
तू विविक्त शय्यासन देवा,
तू जु अकायक लेश अभेवा ॥७९॥

अति हि कायकी क्लेश देनां,
संकलेस भाव नविलेनां ।
छह विध बाहिर तप तू भाषै,
छह विधि अंतर तप हू राखै ॥८०॥

तू अपवित्र जु भावन राखै,
तू जु पावित्रा तम रस चाखे ।
तेरे प्रायश्चित नहि होई,
पाप लगै नहि तोहि जु कोई ॥८१॥

अभ्यंतर तपों का वर्णन—

तू प्रायश्चित तप दायक है,
तू जु जिनिंदा मुनिनायक है।
अविनय रूप जु धर्म न तेरा,
विनयप्रकासी तू जु घरोरा ॥८२॥

तू अविनय मुनि वंदक ईशा,
विनयमूल जसु धर्म अधीशा।
तेरो विनय जु सवको करई,
वे भयभासक तू भवहरई ॥८३॥

अतिथिनि कौं आदेशक तू ही,
अतिथिनि को पति एक प्रभू ही।
तूं जु अवैया व्रत्त करेवा,
अवरनि कौं इह तप जु कहेवा ॥८४॥

अतुलित संयमभर अतिरंगी,
अनघ अचंभी अकलितरंगी।
अति श्रुति योग्य जु जे मुनिराया,
वहजु अपूजक तिन करि ध्याया ॥८५॥

अरति विहंडी रतिपति दंडी,
अवगुण छंडी अविनय खंडी।
अति स्वाध्यायी जे मुनिराजा,
तिन करि ध्येय सदा जिनराजा ॥८६॥

अति पूरण वह आप जिनंदा,
अति श्रुतधारक अति श्रुत इंद्रा।
अति श्रुतपूरण श्रुति जु उलंघा,
केवल रूपी देव अलंघा ॥८७॥

अति व्युतसर्ग उदेश करांई,
अति व्युतसरगी मूल गुसांई ।
अतिशय ध्यांनी अतिशय ज्ञानी,
अनुपम शुकल प्रपूरण ध्यानी ॥८८॥

अध्ययनो ध्यानो इक तेरौ,
ध्यान रूप तू पति सब केरौ।
अतित्यागी अतिभागी देवा,
अति त्यागोत्तम आप करेवा ॥८९॥

अत्याकिंचन मूलविभू है,
धर्मराज तू एक प्रभू है ।
आप अकिंचन सर्वसु जापें,
इह अदभुत गति देख कु तापै ॥९०॥

अपवर्गा कहिये जो मुक्ती,
तू मुक्तीश देहु मुझ भक्ती ।
सर्वसमूहा सर्वमई तू,
सर्व रिद्धिधर कर्म्मजयी जू ॥९१॥

अतिहि सथूला है जु निरंजन,
सिद्धि वृद्धि भरवह जु अकिंचन ।
ब्रह्मचर्य तैं लभ्य जु सोई,
ब्रह्ममई मूरति जु सुहोई ॥९२॥

अतनु विदार जु आपकारा,
काम जु दाइक काम प्रहारा ।
तू जु अध्यातम सार अनादी,
अध्यातम देव कई अवादी ॥९३॥

अति भव चूरण अति जगनाथा,
मयरगजितो अजित जितहाथा ।
तू जु अध्यातम मूल प्रसिद्धा,
अविरुध अनिरुध अनुभव सिद्धा ॥९४॥

अखिल सुनायक देव अनाथा,
अखिल सुदायक आप असाधा ।
अखिल सुज्ञायक आप अलेखा,
अखिल सुव्यापक आप अभेषा ॥९५॥

अखिल सुकारक कारक नांही,
अखिल सुधारक अखिल जु पांही ।
अखिल सुतारक अखिलाचारा,
असुचि विडारा अतिगत्ति भारा ॥९६॥

अनघ अधारा अतनु प्रहारा,
अति जगसारा भुवन उजारा ।
अकलक लोइक नाथ अभू है,
अवधि जु कंद अनंद प्रभू है ॥९७॥

अनत अपार करम गण हरिया,
अखिलप्रकास अतुल गुण भरिया ।
तू जु अशक्य विवर्णन सांई,
शक्ति नांहि को वर्ण कराई ॥९८॥

अलख निरूपक एक तुही जो,
तू जु अवाच्य अनिर्णय ही जो ।
तू जु अकथ्य परुपण सांई,
अलभ सुमहिमा जगत गुसांई ॥९९॥

अखिलाकारा अखिलाधारा,
अखिल स्वरूपा अखिल सुभारा।
अगम प्रतिष्टा नाथ अपारा,
अखिल जु भूपा अखिल जु पारा ॥१००॥

अति सुखकारा अमरकरा,
अखिल सुसेवित स्वामि अधारा।
अनत सु ज्योतिस्वर मुनि प्यारा,
अनत सुरश्मी तिमिर प्रहारा ॥१०१॥

अनुभव मूरति तू जु कृपाला,
निज अनुभूति स्वरूप दयाला।
तेरी परणति गुण अनुभूती,
तेरी शक्ति जु व्यक्ति प्रसूती ॥१०२॥

अनवरत जु निरतर तू ही,
व्यापि रह्यौ सरवत्र समूही।
अनिश नाम तिहारौ स्वामी,
जपिहैं ते नर हौहि अकामी ॥१०३॥

अविरतिनाशक वृत्ति स्वरूपा,
अविरत अवृत्त रहित अनूपा।
अव्रत त्यागि तोहि जे ध्यावें,
ते जगजीवन तो मोहिं आवें ॥१०४॥

असि आऊसा मत्र सु तेरा,
कर्मकलक हरौ सब मेरा।
असि आऊसा जिन जन जपिया,
माया मोह महा तिन क्षपिया ॥१०५॥

अति गति देव अगति गति देवा,
अतिपति नाथ न जानूं सेवा ।
अतिजुग ईस अतुल जग पेवा,
अतिजित जीत न सकिहूं सेवा ।।१०६।।

अति जति स्वामि अलंकृत रामां,
अक्षर रूप अनक्षर नामां ।
अति मुनिपाल अतुल सुखधामां,
अति अघटाल अनंदित कामां ।।१०७।।

अति रति त्यागक अति गुणनाथा,
अतिहित स्वामी अखिल सुख साथा ।
अति मतिधीश अनत वड़हाथा,
अकरम अकरण रूप असाथा ।।१०८।।

अनुभव रूप अधिक सुखकारी,
अभय जु मूल परम रसधारी ।
अति दुखहरण सु नाम तिहारा,
अतिभव दूरि करो जु हमारा ।।१०९।।

अति सुखिया अति श्रीयुत राया,
अनुभव मात्र जु आगम गाया ।
अचल असंखि प्रदेश जु ईशा,
बोध प्रमाण सदा जु अधीशा ।।११०।।

अदभुत गति तेरी जु गुसांई,
तू जु अजान अकारक सांई ।
तू जु अकर्त्ता कर्त्ता कर्मी,
तू जु अभुक्ता भोगक धर्मी ।।१११।।

अधिक सुखासुख रूप विराजा,
अति आनंदमई भव पाजा।
अतिशीली अतिभाव जगीसा,
अतिशर्मी शिवमूल अनीशा ॥११२॥

अति धननाथ अनादि अनंता,
अच्युत अगरिणत श्रीभगवंता।
अमित जगत दुखहरण दयाला,
अखिल दया परदेव कृपाला ॥११३॥

अतिशय सागर अखिल जु पीवा,
अनुपद्रित अति शिवसुख दीवा।
अति पापिष्ट जु जे नर स्वामी,
तोहि न पूज हितू जु विरामी ॥११४॥

अवनीपति पूजित बडभागा,
अजस निवारक देव विरागा।
तू हि अनंतमती सुजिनिंदा,
तूहि अनतगती सु मुनिंदा ॥११५॥

अष्ट अग समकित के तूही,
भाषै जिनवर गुण जु समूही।
अष्ट अग के धारक जे हैं,
ते सवर्त्त ही ख्यात किये है॥११६॥

अजन और अनंतमती जो,
राव उदायन कर्म्म हती जो।
रेवती राणी जिनवर भक्ता,
फुनि जु जिनेंद्र भक्त जिन रक्ता ॥११७॥

वारिषेण श्री विष्णुकुमारा,
वज्र कुमार महामुनि प्यारा।
ए अष्टातम अंग स्वरूपा,
तू सबको शिवदायक भूपा ॥११८॥

इनमैं कैयक तदभव तारे,
कैयक जन्मांतर जु उधारे।
जब तारे जब तू ही तारै,
तो विनु औरन कर्म निवारै ॥११६॥

अष्टाह्निका महात्म्य—

अष्टम दीप नाम नंदीश्वर,
ता महि तोहि जु पूजहि सब सुर।
वर्ष एक मैं तीन जु बारा,
कातिक फागुण सुचिव सुवारा ॥१२०॥

अमल पक्ष मैं तीन अठाई,
अंतिमु वसु दिन पूज कराई।
अष्टमि सौं ले पूनिम तांई,
निति निति पूज करें अधिकाई ॥१२१॥

अष्ट दिवस कौ व्रत तैं भाख्यो,
अष्ट गुणनि परि द्रिढकरि राख्यो।
सिद्ध चक्र है नाम जु यांकौ,
या करि पइए पति कमला कौ ॥१२२॥

सम्यक्त्वादि अष्ट महा जे,
गुणी प्रभू तो मांहि लहाजे।
तिनकौ इह व्रत अठ दिन करहीं,
ते शिव गति अव सुरगति वरही ॥१२३॥

अष्टाह्निक तुव गुण व्रतस्वांमी,
तू अष्टातम ऊरघ धांमी ।
अष्टाह्निक व्रत करि जव ध्याये,
कोडीभड को कोढ़ गुमाये ॥१२४॥

अति ताकी पतिवरता वाला,
कोडीभड नरपति श्रीपाला ।
जलनिधि मैं कोडीभड तारे,
फेरि भवोदधि तें जु उधारे ॥१२५॥

अखिल ऋद्धि भड कौ तुम दीनी,
इह तुम्हरी महिमा जग चीनी ।
अष्ट चक्रवर्ति तैं ही तारे,
अष्ट हली तैं ही जु उधारे ॥१२६॥

चौं चक्री इकवल तारैंगो,
आप समांन करी धारैंगो ।
अष्ट भेद लौकांतिक देवा,
तुव जपि पावैंगे भव छेवा ॥१२७॥

अठ विधि लौकांतिक कौ आयू,
अष्टहि सागरतें हि वतायू ।
अठ विधि ऋद्धि लहैं तुव भक्ता,
तू जु अष्ट विधि कर्म विमुक्ता ॥१२८॥

अठ विधि योग प्रकाशक ईसा,
अठ विधि पूजा जोगि अधीशा ।
अष्ट प्रकारी पूज करैं जे,
तेरी जिनवर अष्ट हरैं जे ।
अष्ट हरौ हमरे हरि देवा,
अष्ट गुणादे हो जु अछेवा ॥१२९॥

अवगम भूषित देव अकाया,
अष्ट धरा को तू इक राया ।
अष्ट सुसम्यक दर्शन ईशा,
अष्ट जु सम्यक ज्ञान अधीशा ।
तेरहि विधि चारित्र जु होई,
सब को भासक तू जिन सोई ।
त्रयी रूप है तू जु अभेदा,
एक रूप तू सर्व सुवेदा ।।१३०।।

अष्ट सिद्धि अर नव निधि द्वारै,
तेरे कु भी अर जुगु दारै ।
तू वसु ऋद्धि मूल जग स्वामी,
तू वसुधा महि अदभुत धामी ।।१३१।।

अठविधि प्रवचन माता जे हैं,
पंच समिति अय गुप्ति गने हैं ।
अष्ट शुद्धि धारक मुनि भक्ता,
तू जु अष्ट विधि कर्म विमुक्ता ।।१३२।।

अष्टम गुण थानक तैं श्रेणी,
उपशम क्षपक रूप सुख देनी ।
उपशम वारे द्वै इक भवलैं,
क्षपक विहारे तद्भव शिवलैं ।।१३३।।

अष्टम गुण नीचैं नहि शुक्ला,
इह तेरौ उपदेश जु अकला ।
चौथौ गुण सौं सप्तम ताई,
धर्म ध्यान नही होइ जु साई ।।१३४।।

अष्टम सौलै चउदम लौ फुनि,
शुक्ल ध्यान ही धारहि वर मुनि ।
पहिलौ शुक्ल जु ग्यारम लौह्वै,
दूजो शुक्ल सु बारम को ह्वै ॥१३५॥

तेरम चौदम भगवत रूपा,
परम शुक्लमय त्रिभुवन भूपा ।
तीजौ शुक्ल सयोग अवस्था,
चौथौ शुक्ल अयोग व्यवस्था ॥१३६॥

सिद्धि दशा मैं ध्यान न कोई,
धारण ध्येय ध्यान निज होई ।
धरम शुक्ल द्वै शिव के दायक,
आरति रुद्र कुजन्म भ्रमायक ॥१३७॥

इह तुम्हनै उपदेश जु दीनौ,
सो सम्यक्ती जीवनि चीनौ ।
मोकौ देहु धर्म अरु शुक्ला,
आरति रुद्र निवारौ विकला ॥१३८॥

अष्टम धरपति अतरजामी,
अष्टम धर दाय अभिरामी ।
अष्टापद है तेरै थाना,
तू अष्टकपति शिव लतिराना ॥१३९॥

अष्टापद तै भूषित कीयो,
अष्टापद तै शिवपुर लीयो ।
अष्टापद कैलास जु गिर है,
ताकौ पति तू ऋषभ सुथिर है ॥१४०॥

अष्टापद व्याघ्रादिक दुष्टा,
तुझ दासनि परि ते नहि रुष्टा ।
अष्टापद कंचन हू कहिये,
कंचन त्यागि जु तोहि जु गहिये ।।१४१।।

अष्टमि चउदशि कौ व्रत देवा,
तू ही जग मैं मगर करेवा ।
तू अष्टांग डंडवत योझा,
अष्टक स्वामि अर्हद अरोझा ।।१४२।।

अठमल सम्यक के तू नासै,
तू अध्यातम रूप विकासै ।
नैकत सर्व्व स्वरूप तुम्हारा,
अतिमित दोष हरौ जु हमारा ।।१४३।।

अष्ट भेद हैं विंतर देवा,
तिन मैं इंद्रादिक वसु भेवा ।
योतिष सुर जे पंच प्रकारा,
एउ शक्रादिक अठ धारा ।।१४४।।

भवनपती दश भेद कुमारा,
सुर्ग निवासी दोय प्रकारा ।
सुर्गपती अर भवनपती जे,
तिनमैं इंद्रादिक दश लीजे ।।१४५।।

त्रायसत्रिंसत लोक जु पाला,
योतिष विंतर तैं ए टाला ।
भव नर सुर्ग मांहि दश भेदा,
तेईसौं अहमिंद्र अभेदा ।।१४६।।

सब देवनि कौ तू ही देवा,
सब करि पूजित एक अभेवा।
अठ विधि तेरै एकन दीसै,
तू अठविधि अठविधि विधि पीसै ॥१४७॥

यम नियमाशन प्राणायामा,
प्रत्याहार सुधारण नामा।
ध्यान समाधि जु अष्ट प्रकारा,
तू जु प्रकासै रहित विकारा ॥१४८॥

सहस अठारह शील अधीशा,
मोकूं शील रूप करि ईसा।

तू जु अनत गुणातम ज्ञानी,
शैलेसी किरिया परवानी ॥१४९॥

अष्टादश जे कोटाकोटी,
सागर भोगधरा जब लोटी।
तब प्रगटे श्री ऋषभ जु देवा,
कर्मभूमि विधि प्रगट करेवा ॥१५०॥

दश क्षेत्रनि मैं कलप जु होही,
ठारा दोय बीस इतनौही।
ठारा भोग दोय है कर्म्मा,
वसि जु कोडाकोडि स्वधर्म्मा ॥१५१॥

अवसर्पिणी उतसर्पिणी दस दस,
सागर त्रीस जु कोडा कोडिस।
काल अनत भये अर ह्वैगे,
लोक लोकपति यो जु रहैगे ॥१५२॥

पंच भरत ऐरावत पंचा,
इनमैं ह्वै भू सुख दुख संचा।
दश क्षेत्रनि मैं रीति न एका,
और ठौर है एक विवेका ॥१५३॥

सर्व जु भेद कहै जिन तू ही,
तू अमितातम कलष समूही।
अष्टादस नहि दोष जु तेरैं,
ए वड दोष लगे सव केरैं ॥१५४॥

गुण रूपो तू परम प्रधानां,
सर्व दोषहर मोख विधानां।
अष्टादश कोटी जु तुरंगा,
त्यागहि चक्री होय इकंगा ॥१५५॥

तेरह रंग रागि निज रंगा,
भंग भूति तजि होहि अभंगा।
सहस अठाइह राणी जाकै,
देव विद्याधर अनुचर ताकै ॥१५६॥

सो रावण विषयनि मैं पागौ,
जगत भूति तजि तोहिन लागौ।
तदभव मुक्त भयो नहि तातैं,
अधमपुरी लहि पाई घातें ॥१५७॥

तो महि पागि होयगौ मुक्ता,
जब ध्यावैगौ ह्वै जु विरक्ता।
अष्टाविसति मूल जु सुगुणा,
तिनके धारक मुनिवर निपुणा ॥१५८॥

सर्वे मुनीश्वर तेरे दासा,
दास उधारक तू जु उदासा।
अठवीसा है मोह प्रकारा,
ते सब चूरि किये तैं भारा ॥१५९॥

गुण यत्र जु मैं ते सब पीसे,
ग्रैसो तू जु ग्रधीस जगीसे।
लाव अठवीसा देवल तेरैं,
पूजैं सुर्गं सुऋद्धि घणेरे ॥१६०॥

अष्टविसति है जु अपिडा,
प्रकती भेद जु चउदह पिडा।
चौदह के ह्वै पैंसठि भेदा,
एवै मिलि ह्वैं त्रिणवै वेदा ॥१६१॥

नाम कर्म के ए जु विकारा,
ज्ञानावरण सुपच प्रकारा।
दर्शन आवरणी नव भेदा,
अ तराय फुनि पच विवेदा ॥१६२॥

है मोहो ह्वै अष्टावासी,
तीन मिथ्यात कषाय पचीसी।
वेदनि कर्म जु दोय गनेसी,
आऊ चौविधि तू जु हनेसी ॥१६३॥

गोत्र कर्म ह्वै नीचर ऊचा,
दोय प्रकार जु सूच असूचा।
अष्ट कर्म ए दायक भैहे,
कवहू तो महि नाथ न ग्रैहैं ॥१६४॥

अष्टनि के से अर अटताली,
तैं सब भेव हरे भ्रमजाली।
तू जिन कर्म हरो हर अवसा,
वशकीये तैं त्रिभुवन स्ववशा ॥१६५॥

जीव समास जु हैं गुन्नीसा,
पूर्णोत्तर गुनियें अड़तीसा।
सबको रक्षक तू जु जिनेश्वर,
सब भेदनि तैं रहित शिवेश्वर ॥१६६॥

अठतीसौं परि एक अधिक ह्वं,
कल परकल पातीस भेद ह्वै।
सब ऊरध लोकहि कै ऊपरि,
तेरो वास जु है सबकै सिरि ॥१६७॥

नाहि वासनां तो मै कोऊ,
वासदेन हारी इक होऊ।
अठतालीसौं काव्य जु तेरी,
भक्तामर की ऋद्धि घनेरी ॥१६७॥

ते निवसौ मेरे घटि देवा,
मानतुंग दुख दूरि करेवा।
एक ऊन अडतालीसाजे,
घातिक प्रति अति मलिन महाजे ॥१६८॥

ते सब नासहि तेरे भक्ता,
तू सौ अर अठताल विमुक्ता।
चौवीसौं माता अरताता,
ए अठताल तो थकी ख्याता ॥१६९॥

अट्ठावन के आधे स्वामी,
गुणतीसौं रतनत्रय नामी ।
ते सब भेद देहु किरपा करि,
फुनि अभेद रूपो करि भवहरि ।।१७०।।

एक घाटि करिये जु अठावन,
जोव समास जु ह्वै सत्तावन ।
जीव रक्षरणा तेरौ पथा,
तू योगीश्वर रहित जु गथा ।।१७१।।

* एक अधिक अढसठि सौ उपरि,
ए निश्चै पावैं शिव भवतरि ।
कैयक तदभव केयक जन्मैं,
पावै तुव पर ह्वैतो तन्में ।।१७२।।

अढसठि वर्ष जु ऊपरि एका,
गुणहत्तरी जीवी जु विवेका ।
एकादशमौ रुद्र जु स्वामी,
पारवती प्राणेश्वर नामी ।।१७३।।

तोहि ध्याय हासी तो सरिखा,
तू तीर्थंकर पूरण पुरिषा ।
अढसठि के आधे चोतीसा,
येहै अतिशय तो करि ईशा ।।१७४।।

---

* १६६ जीव–मोक्षका अधिकारी छे—२४ तीर्थंकर, २४ पिता २४ माता, २४ कामदेव, ६ वासुदेव, ६ प्रतिवासुदेव, ६ नारद, ६ बलभद्र, ११ रुद्र, १४ कुलकर १२ चक्री—

[मूल प्रति की टीका]

अड़सठि तीरथ मौतिक न्हांवैं,
तो विनु शिव पुर पंथ न पावैं।
अठहत्तरि के आधे देवा,
ऊरध लोक सु प्रथम कहेवा ॥१७५॥

गुणतालीसौं नाहि जु जाचौं,
ऐसो करलो मैं हरि राचौं।
अस्सी मंदिर तेरे स्वामी,
पंचमेरु मैं हैं अभिरामी ॥१७६॥

षोडस षोडस एकक सुरगिर,
धारहि तेरे सीख सदाथिर।
कै अस्सी कै इक्यासी जो,
कै चउरासी पच्यासी जो ॥१७७॥

प्रकति अघाती तेरम ठाणैं,
तू सब भेद भाव परमाणैं।
असी करो मोसौं जिनराय,
नई नई नहि धारौं काय ॥१७८॥

तेरी निजदासा प्रभू ह्वै कैं,
आऊं तुंव पुरि जग जल दैकें।
अठयासी के आधे देवा,
चउ चालोसा टारि विभेवा ॥१७९॥

मद मूढत्व अनायत नाजे,
संकादिक अर भय विसनाजे।
पंच अतीचारा प्रभु टारे,
द्वैवीसी द्वै दू अघसारे ॥१८०॥

ए समकित के शत्रु जु पापा,
मोतैं सकल निवारि सु आपा ।
अठयासी तैं तीन घटैं जब,
प्रकति पच्यासी निवल महासब ।।१८१।।

त्रेसठि नासि जु केवल पावैं,
पच्यासी तजि तो महि आवैं ।
जीव समास अठयाणव सेती,
छुटि करि सीझैं प्रकति सुरेती ।।१८२।।

है अठयाणव जीव समासा,
जग वासिनि के भेद निरासा ।
तू ही ख्यात करै जिन स्वामी,
सबकौ पालक अंतरजामी ।।१८३।।

पंच जु थावर चउदह भेदा,
तिन में च्यारि सु अष्ट विभेदा ।
पृथ्वी जल अर अगनि जु वायू,
सूक्षम बादर अष्ट गिनायू ।।१८४।।

निश्येतर सूक्षम अर बादर,
द्वै प्रत्येक मिले षट थावर ।
अष्ट सुषट मिलि चउदश भेदा,
पूरण इतर अलब्ध जु वेदा ।।१८५।।

चउदह को तिगुणे जब करही,
द्वै बीसी द्वै अधिके वरही ।
द्वै सुर द्वै नारक गनियैं,
पूरण इतर गनै चउ भनिये ।।१८६।।

विकलत्रय पूरण अर इतरा,
फुनि जु अलब्ध मिलें नव चितरा।
मनुज तणें नव भेद सुनौं अब,
षट अर तीन मिलें ह्वै नव सब ॥१८७॥

भोग कुभोग मलेछ जु खंडा,
पर्यापित अौ इतर जु मंडा।
अरिजखंड मांहि द्वै भेदा,
गर्भज सन्मूर्छन जिन वेदा ॥१८८॥

गर्भज होय सुदोय प्रकारा,
पूरण इतर सही निरधारा।
सन्मूर्छन अलवधही होई,
षट द्वै इक मिलि नव विधि सोई ॥१८६॥

पंचेंद्री पसु हैं चउतीसा,
तिनके भेद कहे जु जतीसा।
कर्मभूमि के समनां अमनां,
गर्भज जलचर थलचर गगनां ॥१६०॥

पर्यापित अौ इतर गनौं ए,
द्वादश सूत्र प्रमांण सुनौं ए।
फुनि सन्मूर्छन समनां अमनां,
जलचर थलचर नभचर गमनां ॥१६१॥

पूरण इतर अलब्ध मिलें जब,
ह्वैं दश आठ गिनें जु भेद सब।
भोगद्रु भोगभूमि के समनां,
नभचर थलचर द्वै द्वै गमनां ॥१६२॥

अलवध गर्भज मै ह्वै नाही,
जलचर नाहि जु भोग धराही।
वारा टारा ह्वै ह्वै सव ए,
चउतीसा पसुहे है अव ए ॥१६३॥

वैयालीसा नव चौतीसा,
पच्यासी तिरयच गतीसा।
नव मनुजा ह्वै सुर ह्वै नारक,
इन सव भेदनि तै तू फारक ॥१६४॥

अठ अधिका निवै तू भाषै,
सर्वे समासा तू ही राखै।
पच्यासी नव चउ जव मिलही,
ह्वै कम इकशत जव सव रहही ॥१६५॥

ए त्रस थावर भेद सवै ही,
भये होहिगे है जु अवैही।
जिनवर तू सव कौ प्रतिपालक,
श्री भगवत सकल दुख टालक ॥१६६॥

इन भेदनि तै मोहि निकासै,
शुद्ध रूप कर प्रभु अविनासै।
इनकी रक्षक करि हरि मौको,
इनतै रहित करहु तुझ धोकौ ॥१६७॥

सोरठा

ठारा वारा च्यार ए, चउतीस जु भेद पशु।
नौ विकलत्रय धार, वैयालीस जु थावरा ॥१६८॥

नौ मनुजा द्वै देव, द्वै नारक ए ठ्याणवै ।
इन में तेरी सेव, करहि तिके ही श्लाघ्य जी ॥१९९॥

ए सब ही अति खेद, जगत निवासी अति दुखी ।
जो जन ह्वै निरवेद, खेद रहित ह्वै शिव लहै ॥२००॥

जीव रपिक जो साध, सो पावै जगदीस कौं ।
करही जीव जु वाध, वह रुलिहै संसार मैं[1] ॥२०१॥

छंद वेसरी

अष्टोत्तर शत हैं मणि काजै,
माला के तुव गुण गणि काजै ।
तिण करि तोहि जपैं जे जीवा,
ते ताकौं पावैं जग पीवा ॥२०२॥

पण तीसाक्षर षोडश अंका,
षट अर पंचाक्षर चतुरंका ।
द्वै अर इक अक्षर के नामा,
तेरे जाप जपैं सुख धामा ॥२०३॥

अष्टोत्तर शत पाप निवारैं,
तोहि भजैं ते आप उधारैं ।
ते अष्टोत्तर अघ हैं कैसे,
जीव विषै कर्दम हैं जैसे ॥२०४॥

संरंभो च समारंभो जी,
आरंभो है अघ खंभोजी ।
ए त्रय पापा मन वच कायै,
नव भेदा ह्वै गुरु समझायें ॥२०५॥

---

१ इसका नाम वेक्षरी में दिया है।

नव कौ कृत कारित अनुमति,
करिति गुन करे सत्तवीस ठीक धरि।
चउ कपाय तें गुणिये ते सव,
अष्टोत्तर शत ह्वै अघ ए तव ॥२०६॥

ए सव पापा दूरि पुलावैं,
जव गुण मणिका कोय फिरावैं।
अघहारी तूं अमृतधारी,
अमृत रूपो पतित उधारी ॥२०७॥

हरिसौ अर अठतार जु मेरे,
केवलदै वदौ पद तेरे।
अष्ट तणों सौ अर अठताला,
हमरे घातक टारि विशाला ॥२०८॥

पंच शरीर गने ए तेही,
पंद्रह गने अधिक दश एही।
टारि जु हमरे सौ अरठावन,
अपनौ वास देहु मन भावन ॥२०९॥

वरष अढाईसै जव वीते,
पारसनाथ पछै जु अतीते।
तव प्रगटे श्री जिनवर वीरा,
वर्द्धमान अति गुणह गभीरा ॥२१०॥

तिन सव रीति वसी ही भाषी,
जैसी तेवीसनि नैराखी।
चौवीसम अंतिम जिनस्वामी,
सनमति नाथ जु अतरजामी ॥२११

अर्क विमान जु योजन अठसैं,
मनुज लोकथी उपरि निवसैं।
ससि मंडल है अठसैं अस्सी,
ससि सूरिज सव तोहि नमसी ॥२१२॥

ससि अर अर्क जु तेरैं वसि है,
तू त्रिभुवन पति सव कौं ससि है।
तारागृह नक्षत्रादिक जे,
तेरे दास जु शक्रादिक जे ॥२१३॥

योतिगकौं इंद्र जु है चंदा,
अर्क प्रतिदौ अह्नि करंदा।
सातसैंकरे अर निर्वंगनि,
योजनतारा मंडल जो फुनि ॥२१४॥

मनुज लोक थी इह जु विचारा,
नव सत योजन योतिष धारा।
योतिष कौ मंडल दससौ परि,
योजन तारागण तें ऊपरि ॥२१५॥

सर्व ज्योतिसी तेरे दासा,
ज्योतिरूप तूं परम उदासा।
अष्टाधिक दश सत शुभलक्षण,
तेरे कहियै तू जु अलक्षण ॥२१६॥

अष्टोत्तर शत लक्षण स्वामी,
नवसैं विजन जे अभिरामी।
ते सव धारहि तेरी वपु जो,
तू परमातम शिवपद पथजो ॥२१७॥

अयुत लक्ष कोट्यादिक गिनती
अमम अरुट भासक तू सुजती।
अमित अनंत असंख जु एका,
संख्या नांहि सुत्त जु अनेका ॥२१८॥

उदधि असंख असखि जु दीपा,
तिन को दीपक तू अवनीपा।
अस्सी चउ अधिका लख जौनी,
मेरी मेटि जु पकरन्न मौनी ॥२१९॥

अगणित जीवा तैं जु उधारे,
अगणित कर्म्मा तैं जु पछारे।
अहिकौ अहिपति कौ पद दीयौ,
अगनि जरत जिह नाम सुनीयो ॥२२०॥

अहि-पतनी पदमावति कीनी,
दोऊनै अति भक्ति जु चीनी।
अहितारे अजहू सुरकारे,
तोसौ तू ही अमर अधारे ॥२२१॥

चारुदत्त दीयो तुव नामी,
अज पायो सुरलोक सुधामी।
जीवक सेठ सुनायो मंत्रा,
नमोकार नामा शिवतंत्रा ॥२२२॥

भरत सुन्यौ स्वानैं चितधारी,
अघतैं रहित भयो शुभकारी।
अति पापातम सार जु मेया,
तोतैं सुर पद सुख बहुलेया ॥२२३॥

अति असपरस जु चंडालादिक,
तां तें शिव पायो धरि भव इक ।
अरणि निवासी जे मुनिराया,
अवनी तज तैं मुक्ति पठाया ।।२२४।।

अभयातम तू देव अभेवा,
अभय कुमार कियो जु अछेवा ।
अचितनाथ जु अर्चा तुम्हारी,
अर्चें ते नर पावें अमरी ।।२२५।।

अमरपुरी सुख भोगि बहुत जुग,
नर ह्वै अमरण होंहि रहित रुग ।
अष्ट जिती ध्वनि तुम्हरी जिनपति,
जे ध्यावें निजि मनि तजि सब छति ।।२२६।।

ते निज निश्चय पाय स्वरसरति,
पहुचैं लोक शिखर तजि जगतति ।
अव्जोपमक्रम देव तुम्हारे,
अलि सम सुर नर मुनिवर कारे ।।२२७।।

तजि अभिमान जपैं जे जग जन,
ते अवनीधर पावहि पद जिन ।
अनुचर होय जु सेवहि तोंही,
त्यागि अहंकृत भाव विमोही ।।२२८।।

अनुचर तारक एक तुही है,
तू अपवर्ग जु दायक ही है ।
एक अनुभित भाव सु भू है,
तु जु अहंकृत रहित प्रभू है ।।२२९।।

अर्जुन पांडव तैं जु उधारचौ,
द्रुपद सुता को सब दुख टारचो।
धर्मपूत अर भीम उधारे,
नकुल सु सहदेवा निजकारे ॥२३०॥

अनिरुध कुमर प्रद्युमन पूता,
पूत पिता तैं कीने पूता।
अवधिनाथ तू अनवधि स्वामी,
अनरन भूप सुतारक नामी ॥२३१॥

अनरन रावसु रघुपति दादा,
तुव भजि मुक्त भयो तजि कादा।
अतिवल खगपति महवल ताता,
तुव भजि सिद्ध भयो अति पाता ॥२३२॥

अपर अकंपन राव उधारा,
मेघेस्वर कौतूहक तारा।
राव अकपन कासीराया,
श्रीसुलोचना तात कहाया ॥२३३॥

मेघेस्वर हथनापुर कौ पति,
पति सुलोचना कौ शिव सुखतति।
नाथ वंस अर सोम जु वसा,
ते जु उधारे तू जु निरशा ॥२३४॥

तव परसाद भये वै राजा,
तव परभाव किये निज काजा।
अर्कपति तू अर्क उधारा,
तू अर्केन्द्र अर्क गण तारा ॥२३५॥

अर्ककीर्ति कौं मुक्ति जु दीनी,
अर भरतेस थकी भलकानी ।
दिक्षा लेत जु भरथ उधारचौ,
अग्रज चक्री पार उतारचो ॥२३६॥
अग्रेश्वर तू सवकैं आगैं,
सुर नर मुनिजन तुव पद लागैं ।
अप्रधान तू आप प्रधानां,
सकल सुज्ञायक श्री भगवानां ॥२३७॥
अ कहियैं जग मैं हरिहर कौं,
ते ध्यावैं केवल पदधरकौं ।
हरि नारायण हर जो रुद्रा,
इनको भेद न जानहि क्षुद्रा ॥२३८॥*
हरि हर मुनिवर जिनकौं ध्यावैं,
जिन विनु जग जन जन्म गुमावैं ।
अन्य नारि सम मिथ्या परणति,
जो मैं धारी सठमति दुखतति ॥२३९॥
सो मेरी मेटौ जग नाथा,
निज परणति कौं देहु जु साथा ।
पर परणति तैं मै दुख पायौं,
आप विसारि सु जन्म गमायौ ॥२४०॥
अमित अपार जीव तैं तारे,
ते मोपैं किम जांहि सम्हारे ।
पैं गुर की सुनि वांणी स्वामी,
कैयक भाषे भार्षों नामी ॥२४१॥

---

* भावार्थ—हरि कहतां वासुदेव अथवा हरि कहता इंद्र अर हर कहतां रुद्र सो ए सारा केवल अवस्था नैं ध्यावै छै। [मूल प्रति की टीका]

अग्निभूति अर वायु जु भूति,
सालिग्राम ग्राम मैं सोती ।
पहिली मुनि सौ वाद ज कीनौ,
पाछै तेरो धर्म जु चीनौ ।।२४२।।

ते दोऊ तैं स्वर्ग पठाये,
वनके अशुभ समस्त उठाये ।
अग्निभूति तैं सप्तम भव मैं,
कृष्ण पुत्र ह्वै आये तुव मैं ।।२४३।।

अग्निभूति कौ जीव जु मदना,
भयो प्रद्युम्न मदन जु कदना ।
वायुभूति भो शबु कुमारा,
दोऊ तुव भजि उतरे पारा ।।२४४।।

अवर विप्र ह्वै ते द्वै भैया,
कौसाबी नगरी जु वसैया ।
जेठौ वल मैं अगनि जु भूती,
लहुरौ सठमति वायु जु भूति ।।२४५।।

पहले तोकौ तन मनि ध्यायो,
जिन मारग कौ गुण बहु गायौ ।
तातैं तेर शिवपुर आयौ,
सूरमित्र गुर कौ मन भायो ।।२४६।।

दूजै तोकौ ध्यायो नाही,
भयो गुरद्रोही जग माही ।
कोढी ह्वै मूवो सो पापी,
भयो गदहरी अति सतापी ।।२४७।।

सूरी ह्वै फुनि कुकरी हूवो,
महादुखी ह्वै वह जन मूवो।
भयो अंध चिंडाली देहा,
जिन तुमसौं कीनौं नहि नेहा ॥२४८॥

ह्वै चिंडाली तुव गुन भायो,
अगनिभूति को सवद सुहायौ।
नागश्री नामा द्विज पुत्री,
भई धर्म रुचि अति हि पवित्री ॥२४९॥

सूरमित्र के सुनि जिन वैना,
तुम ध्याये त्रिभुवन पति जैना।
तुम परसाद षोडशम सुर्गा,
तिन पायो प्रभु बहु सुख दुर्गा ॥२५०॥

फुनि सुकुमारी सेठ ह्वै स्वांमी,
तुमकौं ध्याय भयो बहु नामी।
अति उपसर्ग जीति वह ध्यांनी,
गयो जु सरवारथसिद्धि ज्ञांनी ॥२५१॥

इक भव धरि वह तो मैं मिलिहैं,
तेरो दास न जग मैं रुलि है।
तेरे दास अनंतहु उधरे,
तोकौं पाय बहुत जन उबरे ॥२५२॥

अमरपती है तेरौ दासा,
इक भव धरि पावै शिव वासा।
वसु विधि लौकांतिक सुर ऋषि जे,
इक भव धरि पावै ऋषि गति जे ॥२५३॥

अर्हमिद्रनि तूही धारेगौ,
नव पचानुत्तर तारैगौ ।
अमराणी जु शची है देवा,
भव अंतरि पावै भव छेवा ।।२५४।।

दाहिण शक्रा लोक जु पाला
तुव जपि पावै पद जु विशाला ।
असन पान खादिमनहि तेरै,
क्षुधा त्रिषा नहि तोहि जु घेरै ।।२५५।।

अस्नादिक अर भूषन कोई,
वस्त्रादिक तेरे नहि होई ।
अदन भक्ष कौ नाम जु कहियें,
तेरे असन बसन नहि चहियै ।।२५६।।

अहमेवादिक तो मै नाही,
तू जु अहंकृत रहित महाही ।
अहंकार अरमान न तेरै,
दूरि करौ लागे प्रभु मेरै ।।२५७।।

दोहा

अहंकार मय इह जगत, याकौ त्याग सुमोष ।
इह तुम्हरौ उपदेश है, उत्तम गुणगण कोष ।।२५८।।
त्यागि अहंकृति जिन तुझे, ध्यायो दीन दयाल ।
तिनि पायो तू गुणमई, निर्गुण परम कृपाल ।।२५६।।
कुमर अशोक रु रोहणी, तेरे भक्त अनन्य ।
ते अशोक धरतें कियै, अति सुखिया अति धन्य ।।२६०।।

अरजन पूत जु अथमनां, नाव अभिमनां जास ।
सो तेरे परसाद तैं, पायो अमर विलास ॥२६१॥

अकलंक को निकलंक द्वै, भाई जिनमत दास ।
तिनकी तुम राखी कला, कियो बोधमत नास ॥२६२॥

कुमर अमैरुचि अभमती, भाई बहन सुजांन ।
ते तुम कीनें आपुनें, धरे पंथ निरवांन ॥२६३॥

अद्भुत तोसौ को नहीं, जग दातार जगेस ।
मोहू दीजै मोख मग, सुनि विनती सुजिनेस ॥२६४॥

तू अनादि अनिधन प्रभु, तू अविक्त अतिविक्त ।
अहमिंद्रनि कर अर्च्य तू, तू अतिंद्र जग तिक्त ॥२६५॥*

तू अमूर्त दर्शी प्रभू, अर अगाध भवपार ।
अतिगाहन तू गहन हर, मोहू पार उतार ॥२६६॥

तू अलक्ष लखिया विभू, तू अगम्य गम को जु ।
जे अगम्य गम काज ना, अव होलक तिन कौ जु ॥२६७॥

जे अभक्ष भक्षक जना, तिनकौ निंदाकार ।
जे अतत्व रोचक नरा, तिनकौ नाहि उधार ॥२६८॥

अहो अहिंस्य स्वरूप जौ, परम अहिंसा कार ।
सदा अहिंसक देव जौ, करै सकल उपगार ॥२६९॥

अहो रात्रि मुनिवर जपैं, जाकौं ते निज रूप ।
पावैं अल्प जु काल में, वह मुनि पति जग भूप ॥२७०॥

अह्नि विषै भोजन करैं, पिवहि नरजनी नीर ।
अह्नि विषै मैथुन तजैं, तुव मत रत्त गृहि धीर ॥२७१॥

---

* प्रति में २६६ संख्या नहीं है, पर हमने क्रमशः संख्या दी है । इसी कारण आगे ३०० की संख्या में एक छंद कम रह गया है ।

अह्नि दिवस कौ नाम है, तू ही जिनवर अह्नि।
कर्म काठ जाल न परो, जो इक दीसै वह्नि ॥२७२॥

छंद बेसरी

[1] तत्व अनेहा अविहित स्वामी,
अचल अखंडित अखलित धामी।
अगणित द्रव्य अरूपी जोई,
अचर अमूरति अमर जु होई ॥२७३॥

अतुल अदेशी एक प्रदेशी,
प्रचुरातम जड रूप अलेशी।
अणु भरिताखिल लोक निवासी,
काल द्रव्य जो अकल अभासी ॥२७४॥

समवरती जो है जु असखा,
वर्तन लक्षन अलख अकखा।
द्रव्य सुगुण पर्याय समूहा,
वह जु अनामी सर्व जु दूहा ॥२७५॥

काल चक्र [2] परणति है ताकी,
पर्यय रूप कदापि न थाकी।
तामैं हौ भरमत हौ नाथा,
दीनानाथ गहौ मुझ हाथा ॥२७६॥

---

१ अनेहा कहता काल [मूल प्रति की टीका]

२ व्यवहार परणति काल की समय घडी प्रहर दिन रात्रि इत्यादि छै अर निस्चै परणति षटगुणी हानि वृद्धि छै [मूल प्रति की टीका]

कालचक्र तैं मोहि उवारे,
अपनौं वासदेहु गुण भारे।
तो विनु काल न किहिन जीते,
कालनाथ तू काल अतीते ।।२७७।।

[1] अणु खंधा नहि तो मैं कोऊ,
चेतन तू जु अमूरति होऊ ।।२७८।।

अणु द्रव्यं खंधा पर्याया,
फरसादिक गुण बीस वताया।
ते गुण मो तैं टारि जु स्वांमी,
निज गुण दें ब्यारचौं अभिरामी ।।२७९।।
केवलदर्शन केवलज्ञाना,
केवलवीरज सौख्य प्रधाना ।
[2] इनहि आदि दे अमित जु दै हौ,
अपनौं करि अपुनैं पुर लैहो ।।२८०।।
अणु कालाणु अर पुगलाणु,
दुहु कौ ज्ञायक तू जु प्रमाणु ।
मिलन शक्ति तैं रहित जु एका,
दूजी मिलत जु शक्ति अनेका ।।२८१।।
अमर तूहि शिव तोतैं होवैं,
अमरासुर नर तुव मुख जोवे।
देव सकल कहिवे के अमरा,
अमर सही तू कबहूं न मरा ।।२८२।।

---

१ इस छन्द की संख्या का चरण १ पंक्ति का ही है।

२ प्रति में पुनः संख्या १ से शुरू की गई है; पर हमने इन छन्दों की संख्या लगातार क्रमशः ही रखी है, जबकि कई स्थलों पर संख्या मे ऐसा अवरोध पाया है गया। लगता है प्रतिलिपकार ने पुनः इनको सुधारा नहीं है।

अनत सु अधिकाधिक्य तुही जो,
अनत सुदिन करते जसही जो।
अनत निशाकर जीत नियंता,
अनत होकर रस्मि जयंता ॥२८३॥

अलत विवर्जित ईश अकेला,
असुधि विवर्जित धीश अचेला।
वस्तु अशुद्ध न तों मैं पइए,
केवल शुद्ध रूप तू गइए ॥२८४॥

नांहि अनातम भाव जु तोमैं,
हरहु अनातम भाव जु मो मैं।
तो विनु आतम भाव न लहिये,
तजें अनातम तोहि जु गहिये ॥२८५॥

अस्ति करंता अस्ति धरंता,
तू अस्तित्व स्वरूप अनंता।
तू अनाप्त भावनि तें न्यारा,
तोहि अनाप्त न पांवहि प्यारा ॥२८६॥

अस्ति जु काय पंच हैं स्वामी,
तिनकौ भासक तू जु अनांमी॥
अस्ति निरूपा अस्ति अधारा,
अस्तिर नास्ति स्वरूप अपारा ॥२८७॥

अस्ति नास्तिकौ प्रगट जु ईशा,
अस्ति नास्ति धर है जगदीशा।
अमित प्रदेशी गुण जु अनंता,
गुण पर्याय स्वभाव धरंता ॥२८८॥

अखिल प्रदेशी सिद्धि स्वरूपा,
अतिसय थूल असाध्य अनूपा ।
तू अप्राकृत देह जु स्वांमी,
तु जु अबाध्य अराध्य अरांमी ॥२८९॥

तू जु अभक्त सुभक्त न काकौ,
तू सु प्रभु तारक भगता कौ ।
तू जु अनाकृति आकृति रहिता,
अकृत [1] अकृति बोध जु सहिता ॥२९०॥

तू जु अरुंधा अचर अचंपा,
बोहथ भवकी तू जु अझंपा ।
अखिलातम अकुलातम स्वामी,
अकलातम अमलातम नांमी ॥२९१॥

अचलातम अजडातम भूपा,
अमितातम अमितीस अनूपा ।
अगती [2] गती दायक तू ईशा,
असित भाव वर्जित जगदीसा ॥२९२॥

अन्न औषधी शास्त्र जु अभया,
ए चउ दांन कहे तू विभया ।
अन्न पांन निरदूषण लैकैं,
तोहि जु ध्यावें निज मन दैकें ॥२९३॥

ते संता पावे तत तेरा,
तू निरदूषण भूषण मेरा ।
अन्न चीरण अर जलहि जु छाणा,
इह तेरौ मत है जु प्रवाणां ॥२९४॥

---

१ अकर्तृम छै १ अकपट छै १ [मूल टीका]
२ अगति गति मोक्ष कौ नाम छै जहां सौ फेरि गति नहीं ।

अन्न जला विनु और जिकेही,
जिह्वा स्वाद जु होइ तिकेही।
ते नही स्वादें तेरे भक्ता,
अन्न वारि ले तो महि रक्ता ॥२६५॥

अणु भोजन ले तोहि जु ध्यावें,
सर्व स्वाद जे दूरि बहावें ।
ते निज स्वाद लहैं निज भक्ता,
जिन रस चाखि जु विषय विरक्ता ॥२६६॥

छंद पाधरी

अरविंद चक्षु अरविंद पाय,
अरविंद हस्त अति गंध काय।
अरविंद वदन जगजीत देव,
मधुकर मुनि सुर नर असुर भेव ॥२६७॥

अतिनंदानंद अनंद देव,
अति अकथ अपूरव असम टेव।
अतिनाथ जु देव अनंत नाम,
अतिसाथ जु एक अनंत धाम ॥२६८॥

अतिहाथ अछेव अवेव वेव,
अणुमति अमती किम योज्ञ सेव।
अतिहित जु अनंत अनंत ज्ञांन,
अतिमित जु अनंतानंत मान ॥२६९॥×

× ३०० पद्य पूर्ण होने मे हमारे क्रम में १ संख्या कम पडती है। वह पद्य संख्या मूल प्रति मे २६६ सं. वाली नहीं है। इस प्रकार हमने अपने क्रम में अवरोध नहीं किया है।

अति अतुल अनंतानंत रूप,
अति अमल अलिप्त जु लोक भूप ।
मति श्रुति अवधी अर तुरिय ज्ञान,
धारी मुनिहू नहि सकहि गान ॥३००॥
अनुमति की कौन जु आत देव,
इक नांम अधार जु देव देव ।
इह विनति जु धारहु दीनबंधु,
लेहो निज पुरि अर हरहु बंध ॥३०१॥

छंद भुजंग प्रयात

अनंतर्द्धि सिद्धि तुही देव देवा,
अचिंतर्द्धि वृद्धि तुही नंत भेवा ।
अमेयर्द्धि पूरं असंख्येय स्वामी,
अनंदित्व भाव तुही सर्वजांमी ॥३०२॥
सर्वस्य अग्रो तुही अग्रनाथा,
तुही अग्रिमो अग्रजाता असाथा ।
तुही अग्र अग्रेश्वरो ईशराया,
तुही पर्म तत्वं अरूपी अकाया ॥३०३॥
अलेषो अभेयो अलेशो अशेशो,
अहेयो अमेयो अदेहो अदेसी ।
अडंको अटंको अनंको अवंको,
असंको अरंको अकंपो अपंको ॥३०४॥
अगाधो अवाधो अनंगो अभंगो,
अनामो अकामो अरंगो असंगो ।
अपापो अपुन्यो अनेको अछेपो,
अनाथो अजोगो अभोगो अलेपो ॥३०५॥

अरोगो असोगो अगंधो अबंधो,
अमोघो अचिंत्यो अकोपो अनंद्यो ।
अदीनो [१] अनीनो अछीनो अहीनो,
अरीसो अनीशो अलीनो निलीनो ।।३०६।।

अलिगो अदंभो अमोहो अदोही,
अधीशो अतीशो अछोहो अकोहो ।
अखंडो अडंडो अफंदो अछंदो,
अरूढो अमूढो अनंदो अमंदो ।।३०७।।

अनादी अनंतो अवेदो अभेदो,
अवादी असंतो अरागो अखेदो ।
अदोपो असोपो विमोपो अकोपो,
अनोपो जु चोषो अरोषो अधोषो ।।३०८।।

सोरठा

तू जु अफरसो देव, अरसो अरजो विरज तू ।
तू जु अद्वंद अछेव, अतिलीनी अतिधर्म्म तू ।।३०९।।

छप्पय छंद

अतिरामो अभिराम तू जु अतिदांन अनंता ।
अतिधामो अतिशुद्ध तु जु अतिबुद्ध प्रसंता ।।
अतिशांतो अतिनाम तू जु अतिगूढ सुरूढा ।
अतिरूढो अवदात तूं जु अतिरंग अगूढा ।।
अत्युदार अनगार तू अत्युधार जगदेव है ।
अत्युदात अतिचंग तू जु अनंत अछेव है ।।३१०।।

---

१ अनीनो कहता जिहको कोइ धनी नहीं, आप ही धनी छै ।

अतितातो अतित्रात तू जु अतिवीर प्रवीरा।
अतिपातो अतिसार तू जु अतिचार अनीरा ।।
अतिधीरो अतिमित्र तू जु अतिस्वामि अनादी ।
अतिरूपो अतिभूप तू जु अतिपूत अवादी ।।
अधिकारी अतिरम्य तू अति सु पुन्य अवधूत है।
अभिचारो अतिशूर तू अति चूर जु अतिभूत है ।।३११।।

अतिपति तू अति ऊंच तू जु अतिसौच अनंदा।
अतिपूरण अतिवुद्धि तू जु अतिदूर अफंदा ।।
तू अमरामर देव ज्योति मय तेरो रूपा।
सर्वज्योति जितदेव तू जु अतिछवि जिनभूपा ।।
सो सौ तू ही देव है और न देव कदापि कौ।
तू पूरण परमात्मा भगवानो जु उदापि कौ ।।३१२।।

तू जु अहिंसा शक्त त्यक्त अदया सव तूही।
तू अनृत परिहार करण सर्व गुण जु समूही ।।
सव परि तू जु दयाल नांहि कर मनि परि जैनां।
अमृत तुल्य महान नाथ तुव अदभुत वैनां ।।
अदत प्रत्यक्त जु तू सही अब्रह्म तिक्त सुब्रह्म तू ।
अवध अवाध अकिंचनो परमेश्वर पर ब्रह्म तू ।।३१३।।

अपरद्रव्य कौ त्याग वस्तु तैं तेरे स्वामी।
अनृतमाया जाल तासु की लेशन कामी ।।
अमला कमला पासि पासि रूपा नहि कमला।
वहिरंगा ने दूर तू जु अंतर लछि विमला ।।
तू श्री व्यक्त अभीत है, अलभ अभाव अगृद्धि तू ।
अवध निरूपो गुण मई, ऋद्धि वृद्धि घर सिद्धि तू ।।३१४।।

तू जु अरोर अरोग तू जु श्रीयुक्त अनंता।
तू श्रीवांन जिनेस रहित अवला अरहंता ।।

अनुभूती जो लछि और को लछि जु नांही ।
तू अनुभूति स्वरूप वह जु तोही के मांही ।
व्रतरूपो समधार तू अक्रिय भाव वितीत है ।
क्रिया रहित तू अक्रियी कूटस्था जगजीत है ।।३१५।।

तू अघ छेदक देव तू जु है अतत विहंडी ।
असत विहंडक तू जु पूज अभिनंद अखंडी ।।
अति व्रह्मेश्वर ईश धीश तू है जु अरूपी ।
परगट रूप दयाल एक तू हो जु अनूपी ।।
अति यतिभूपो अतिशयी अतिशय रूप अनूप है ।
अतिगति रूपो अतिधृती अतिचन्द्र जु अतिभूप है ।।३१६।।

अरनि वितीते तू जु पूज तू अनय वितीता ।
तू जु अपुण्य वितीत पुण्य पापनि तैं वीता ।।
रहित अनीति सुनीति तत्वनि नीत जु तूही ।
तू अपराध वितीत जीत तू कर्म समूही ।।
सदा जु अरीति अनीति ते अधरम ते न्यारौ तू ही ।
तू जु अनाशामय जिती अमतविजीत कहै सही । ३१७।।

अमति कुमति नहि संगि, संगि तेरै निज बोधा ।
अगनि उधाग्क देव तू जु निजरत अति सोधा ।।
अतिक्रम वितिक्रम नाहि नांहि तेरै अति चारा ।
अणाचार को लेश नाहि तेरै जु लगारा ।।
तू अति चारु मनोज्ञ है अनुचरगण तेरै मही ।
अनुक्रम क्रम नहि पाइए, नांहि अनारज तो मही ।।३१८।।

अशुभ वितीतसु तू जु पूज तू असुचि विजीता ।
मोहतरणी जु अनीक एक तैं ही सव्र जीता ।।
तेरै नाहि अनीकनंत गुण ते जु अनीका ।
नीका ते जु दयाल नांहि को तिन समनीका ।।

कहैं अनीक जु फौज को नीक अनीक जु गरानिको।
तू अनीकधर गुणमई आज्ञा पूरहि मुनिनि की ॥३१६॥

सप्त अनीक जु धार इंद्र है तेरो दासा।
षट् सेनाधर चक्रिदास कौ होय जु दासा ॥
अवर सकल नृप च्यारि धारंही सेना स्वामी।
तू सबको पति ईश एक वड भूप अनामी ॥
तो समसेना तो कनै, अवर ठोर दीखै नहीं।
तू अनीकपति एकलौ अमित अनीक जु तोमहीं ॥३२०॥

तू जु अलीक न होय तोहि नहि लहहि अलीका।
अव्रत त्यक्त दयाल तू जु है नाथ सुनीका ॥
अतिशयवंत अनंत तू जु जिन अति मुनिनाथा।
अनुन्नित वीत अभीत एक तू अमित जु साथा ॥
अतिरिल भूपो अतिव्रती अतिविरतो अवनीप तू।
अकरम देव अतिहितू एक एव जगदीप तू ॥३२१॥

अतिसय सागरनाथ सकल अन्याय अतीता।
तू जु अमंत्रि अमंत्र मंत्रमय तू जु अजीता ॥
नाहि अमात्य[1] जु कोह होय तेरै दरवारा।
दुर्गकोट को नांहि आप दीपै इक भारा ॥
तो सौ रावल तू सही अजड अकर चिनमय प्रभू।
एक रावलौ रावरौ और नांहि रावलक भू ॥३२२॥

अभिजित जतिपति तू जु पूज अति नगन स्वरूपा।
अतिशर्म्मातम देव तू जु अतिशय वडभूपा ॥
अतिशय तंत्र जु एक अवर नहि तो विनु अतिशय।
तू अतिभूति विशालनाथ तू रहित सकल भय ॥

---

१ अमात्य कहता परधान। मूल प्रति की टीका।

अविहित मिथ्यामत सवैं विहित शिवागम सार तू ।
जिन आगम भासक विभो अस्ति नास्ति नयधार तू ।।३२३।।

तू अतिभूमि क्षमा जु क्षांतिधर एक तुही जो ।
तू अप तुल्य[1] दयाल पापमल नाशक ही जो ।।
तपति हरण अति अमल जीव सम तू जग जीवन ।
अनल[2] समो भगवान दहन कर कर्म महावन ।।
अनिल[3] समो विनु संग तू महावली हुत भुज सखा ।
वात वलय आधार जो लोक सकल दायक सुखा ।।३२४।।

तू अभतुल्य[4] अलिप्त तू जु अभमांन अमांनो ।
नभ है तेरे मांहि तू जु नभ मांहि वषांनो ।।
अनुपम मांनो तू जु पूज तू अचलपती जित ।
अकल समांनो नाथ अकुल सम तू जु जगत हित ।।
नांहिकिसी सौ पूज तू, अखिल सरीसौ हे प्रभू ।
ज्ञेयाकार अनंत जो ज्ञान भाव तेरै विभू ।।३२५।।

अर्कसमो अतिभास मोह तिमर जु को हंता ।
ममता रजनी मेटि बोध दिवस सु प्रगटंता ।।
भव्य कमल प्रतिफुल्ल करण जो पथ चलावे ।
विषै विनोद मिटाय नादि सूते जु जगावै ।।
जीव जु चकवो मति प्रिया विषम विरह तिनकौ हरै ।
अभवि उलूका नहि लखे, अर्क अमित द्युति तू धरै ।।३२६।।

अति जु अनंत प्रताप ताप नहि तेरै सवही ।
मिथ्या भवजु राहु तोहि वेठै नहि कबही ।।

---

१ जल तुल्य निर्मल शीतल छै   १ अप कहजे जीव कहजे जल का नाम छै
२ अनल अग्नि कौ नांम छै ।   [मूल प्रति की टीका]
३ अनिल पौन को नाम छै ।   ,,
४ अभ कहता आकाश ।   ,,

वाकौ नांव जु मित्र तू जु है साचौ मित्रा।
अर्क नहीं तो तुल्य तू जु अति रश्मि विचित्रा ॥
अह्नि करण अवगम भई, अहो अहोकर अरुण तू।
अजड भाव कर देव है, सेत न स्यांम न अरुण तू ॥३२७॥

असु प्रांणनि कौ नाम तू जु[1] असुभृत गणनाथा।
अतुल प्रमाण जु ईश, असम सम तू जु अनाथा ॥
अगणित उदर नूर नांहि नख द्युति सम तेरे।
अभमानो अभिमांन तू जु हरि साहिब मेरे ॥
अवधिन अविधिन तो विषै, अतिविधि मूल जु तू जिना।
अतिगति ध्यान निधान तू, अतुलित ग्रमकर तू दिना ॥३२८॥

सोरठा

अति अविगति तू देव, गति गति कौ ज्ञायक प्रभू।
सुखदायक है सेव, अन्य न चाहैं अनत प्रभू ॥३२९॥

छप्पय

जो जु अविद्या कंद तासु को है जु निकंदा।
अनुपम नाथ सु तू जु पूजि तू अखिल अनंदा ॥
अति सुगम कहै तू जु देव तू अभय विहारी।
असम्य मयक जे जीव तोहि पावैं न उधारी ॥
अगम गमक जे पापिया तोहि न पावै नाथ जी।
अगम गमक पुनि जोगिया तजहि न तेरौ साथ जी ॥३३०॥

---

1. असुभृत कहतां प्राणी जीव त्यांका गणा समूह त्यांकौ नाथ है।

[मूल प्रति की टीका]

तू अविज्ञेय अछेय नांहि परमादसु तो मैं ।
तू अप्रमत्त जिनिद नित्य निवसै प्रभु मोमैं ।।
मैं परमादी मूढ नांहि लखीयो पद तेरौ ।
अविषय अतिशय रूप तू जु हरि तिमिर जु मेरौ ।।
जा करि तोहि लखों प्रभू, वहै दृष्टि दै साइयां ।
नांम अपार जु जासु के सो तू जगत गुंसाइयां ।।३३१।।

अतिठामो अतिग्राम तू जु अतिधाम अनामा ।
अतिहित मंत सु संत नांहि तेरैं धन धामा ।।
अस्वादिक चतुरंग सेन तजि तोहि नृपाजैं ।
ध्यावे तन मन लाय होंहि प्रभु पति विटपाजे ।।
अष्टम धर लहि सासती सिद्ध भाव पांवहि तिके ।
सर्व त्याग तोहि जु भजैं, ह्वै तो सम जिन जन जिके ।।३३२।।

तू जू अगोचर नाथ एक गोचर केवल मे ।
तू जु अनालस भाव नित्य निवसै देवल मैं ।।
अलंकार नहि कोय होय तेरै न अभूषन ।
भूख न प्यास न कोय नांहि को वसन न दूषन ।।
तू देवलमै सिद्धलोक मै है सही ।
घटि घटि अंतर साइयां वसे अनाशक्तो तुही ।।३३३।।

सोरठा

अशनादिक भाव नांहि जुतु तो मैं पाइए ।
ज्ञानमूल जगराव, तू अनत भाव जु धरें ।।३३४।।

तू जु अदर्शन नांहि, सदा सुदर्शन है प्रभू ।
दरशन तेरै मांहि, केवल एक अनंत धी ।।३३५।।

छंद वेसरी

अति तू भूषण अति निरदूषन,
अतिहि तृप्त प्रभु प्यास न भूषन ।
अति नीरै प्रभु मांनहु दूरन,
अति जड़ चूरन अति सुख पूरन ।।३३६।।

+अति जग पारग अति शिव मारग,
अति सु उधारक धर जिन मारग* ।।३३७।।

अति भू मोचक अतिगुण रोचक,
अति दुखरोधक अतनु असोचक ।
अति भू दायक, अतिगुण लायक,
अतिमुनि नाअक अतिरस भायक ।।३३८।।

अतिक्षम क्षमकर अतियम यमधर,
अतिशम दमकर अतिजप तपवर ।
अति भू क्षमपर अति यतनाकर,
अति ×उपरमकर अति समताधर ।।३३९।।

अति भू पोषक अतनु विसोषक,
अतिजन मोषक अतिहित घोषक ।
अवगुण टारक समकित कारक,
अतनु प्रभारक अमन प्रचारक ।।३४०।।

अतिनर अतिभर अतिकर,
अतिवर अतिपर अतिचर अतितर ।
अतिचिर अतिथिर अतिगिर, अतिगुर,
अतिधर अतिहर अतिहरि जिनवर ।।३४१।।

+ शिव मारग कहतां-मोक्ष मारग, कल्याण मारग, [मूल प्रति की टीका]
* यह पद्य दो पंक्तियों का है । × उपरम कहतां वैराग्य । ,,

अतिसुख सागर अतिगुण आगर,
अतिनर नागर अतिजय जागर।
अति सु उजागर प्रभुरतनाकर,
सुर नर चाकर तू जिन ठाकुर ।।३४२।।

अतिभव ज्ञायक अनुभव दायक,
अतियुग नायक अतिसुर पायक ।
अतिभव नाशक अभय प्रकाशक,
अतिगति भासक अभव विकासक ।।३४३।।

अतिमुनि कारक अतिमुनि तारक,
अतिमुनि धारक अतिमुनि पारक ।
अति आर्याकर अति श्रावकधर,
अति समकित धर समकित धरकर ।।३४४।।

अतिभव भयहर अतिशिव सुखकर,
अति परमेश्वर अति भूतेसुर ।
अति सुग हर गति अति जु त्रिजगपति,
अतिछति अतिजति अतिमिति अतिगति ।।३४५।।

सोरठा

तू अनुकूल सदैव, प्रतिकूलो नहिं क्वापि ।
दूजे ह्वैं तोसौ दैव, अनुकूला ते भव तिरैं ।।३४६।।
अवग्रह ईहा आदि, भेद जिके मतिज्ञान के ।
तू भाषै जु अनादि, तीन सतक अर तीस छह ।।३४७।।
अमन अतिंद्री तू जु, इंद्री और अनिंद्रिया ।
तो महि नाही पूज, नाम अनिंद्री मन तणौ ।।३४८।।

अजर अजन्मा देव, तू जु अकर्मा राजई।
दै भव भव निज सेद, तू सु अभर्म्मा है प्रभू ।।३४९।।
तू जु अमर्मा देव, कर्म ठौर तेरैं नही।
तू सब मर्म सुवेव, तू जु अचर्म्मा चर्म्म विनु ।।३५०।।
तू जु अश्रम्मा नाथ, श्रम खेद जु तो मैं नही।
श्रमहर सुख तुव साथ, तू जु अवर्मा वर्म विनु ।।३५१।।
वर्म जु बगतर नाम, मर्म विना बगतर किसै।
तेरे आवै काम, तू जु स्वशर्मा रांम है ।।३५२।।
सबकी रक्षक नाथ, तातैं सबको वर्म तू।
मरमी तू बड़हाथ, मर्म न छेदै कोय को ।।३५३।।

सवैया तेईसा

तू जु अमातृ अपितृक देव सदा जु अपुत्रक है जु अलौकिक।
तू जु अबंधु अबंधननाथ अबाधक एक महाजु अचौकिक ।।
तू जु असाधक साध्य स्वरूप अदंभिक ईश जिनेश अरोपिक।
तू जु अराधक तार अराध्य अनंध अखंध असंध अगोपिक ।।३५४।।

तू जु अबंधक अदंक नाहि, अनिंदित नंदित है जु अरंजित।
तू जु अनिंगित इंगित नांहि, अलंकित नाथ सदाजु अनंजित ।।
तू जु असंकित है जु अबंकित, देव अलंघित नित्य अगंजित।
तू जु अचंभिक है जु अमंदित, ईस अखंडित सर्द अधंजित ।।३५५।।

तू जु अनिंदक पूज अवंदक, नित्य अफंदक है जु अबंदक।
तू जु अखंडक वोध अमंदक, पाप निकंदक है जु अछदक ।।
तू जु अहंडक है जु अदंडक नाथ अछंडक नित्य अकंटक।
पुंस न नारि सुरो नवि मानव, ढोर न नारक तू जु अपंढक ।।३५६।।

तू जु अडंकित है जु अचंपित देव अझंपित नित्य अलंपित ।
तू जु अदंडित है जु अकिंचित नाथ अवंचित वोध विजृंभित ।।
तू जु अकंषित है जु असंखित ईश अखिंचित राय अकंपित ।
तू जु अभैवृत स्वामि अखैहित एक अजैवित धीश निशंकित ।।३५७।।

तू जु अलुंटक तात अवचक है जु अभंडक नित्य अभंजक ।
देव अचिंतक ईश अनंतक नाथ अरंजक भूप अपंडक ।।
पूज अभंजित स्वामि असंगित है जु महांध्रिप एक असंधक ।
संघ उधारक आप अकारक पार उतारक सूत्र अलंधक ।।३५८।।

दोष अमंडित है गुण मंजित नित्य असंचित ईश अरंजन ।
नाथ अटंकित तात अरंगित स्वामि अजंजित आप निरंजन ।।
नांहि विकार विभाव जु जामहि एक अनेक स्वरूप अकिंचन ।
नाहि लप्पो कछु जाय अनूपम द्वैत अद्वैत स्वभाव अभंजन ।।३५९।।

छंद अरिल्ल

लप्पो जाय नहि नाथ, तू जु अलपित सही ।
अलप बहुत नहि एक तू जु द्वै है वही ।।
अत्युज्जल तू देव, अभिक्षमी है विभौ ।
अत्युत्कर जगदीस, अतीयमी है प्रभो ।।३६०।।

अतितेजस अतिसीत अतिदमी अतिगुरु ।
अति ठाकुर अतिजीत, अतिसमी अति धुरू ।।
अतिसाहिब अधिकार, उपरमी तू सही ।
अति सागर विधि रूप, अति जती है तुही ।।३६१।।

अतिलायक अणगार, अणगारी तू नही ।
तुही आगरो देव, गुणनिको है सही ।।
अतिनागर निज रूप, गुणागर सांईयां ।
अतिजोगी जगजीत, अलेष गुसांइया ।।३६२।।

अति जागर तू देव, उजागर ज्ञान कौ।
सोवै नांहि कदापि प्रभू है ध्यांन को।।
अटल भाव धर एक अचल भाव जु सदा।
अमल भाव जगदीस, मलिन नांही कदा ।।३६३।।

तू जु अनंग विभाव, टार कोई सहै।
तु जु असंग स्वभाव सुधारक धीश है।।
तू जु अचिंत्य प्रभाव प्रभू है सासता।
तू जु अहिंस स्वरूप नांहि को नासिता ।।३६४।।

तू जु अशुद्ध विभाव नाशनो ईश है।
सदा अभेद स्वभाव भासनो धीस है।
नांहि अभव्य स्वभाव, भव्य भाव जु नही।
तू शुद्धत स्वभाव परिणांमिक सही ।।३६५।।

चौपई

तू हि अलंघि भाव भुषो जु, तू हि अपावन जन नूषो जु।
तू जु अमूरत भाव सुपषो, तू जु अधूरत भावा सषो ।।३६६।।

तू जु अगोध भाव दंडोजु, तू जु अनित्य भाव षंडोजु।
तू अजडत्व विकासी देव, तू अचलत्व प्रकास अभेव ।।३६७।।

तू जु अचिंत्य भाव करि भरो, तू जु अलक्ष भाव हैं वरो।
तू जु अलोक भाव कौ जांन, तू अवलोकन कर गुणवांन ।।३६८।।

अखिल भाव भावक तू नाथ लोकाकास प्रमांण अनाथ।
तू जु अमोहत्वादि प्रधांन, अस्तित्वादिक गुणह निधांन ।।३६९।।

तू जु अलोभत्वादि अधार, तू जु अधमगति तारनहार।
तू जु अधोगति हारी हरो, तू अरिचक्र विदारी अरो ।।३७०।।

तू जु अशुभ गणटारक ईश, तू जु अशीलें हीलक धीश।
तू अदयत्व विघाटक देव, अकर रोग वर्जित अतिभेव ।।३७१।।

अखिल भोग डारक जोगीस, अखिल जोग टारक भोगीस।
मन वच काय तणें जे जोग, तिन तें रहित अमित सुख भोग ।।३७२।।

अखिल व्रत उपदेशक गुरो, अणुव्रत उपदेशकहू धुरो।
अखिल भूति दर्शिक भगवांन, निखिल भूतिरयागिक धनवांन ।।३७३।।

अतुल भाव फरसी मुनि मेस, अचल भाव दरसी जगतेश।
अमल भाव सरसीरुह सूर, सदा जु अविचल भाव सुपूर ।।३७४।।

अटल सु देवो अमल जु काय, अकल स्वज्योती अतुल जु राय।
अजड स्वरूपी विमल प्रभाव, अकर अकारक अकरण राव ।।३७५।।

अकरम और असंपर दान, परदर विनु कौले सनमांन।
तू निज अपादांन जगदीस, अधिकरणो भगवत अधीश ।।३७६।।

पर पट्कारक तौ मैं नांहि, निज षटकारक तेरे मांहि।
तू कर्त्ता कर्म्मा निज क्रिया, संप्रदान तू है विनु त्रिया ।।३७७।।

तू निज शक्ति अपादानो जु, तू आधारो अधिकरणो जु।
अकरदाय तू अपर जु नाथ, अमलनाथ तू श्री जगनाथ ।।३७८।।

अमर छाय तू नहि मुरझाय, अमित छाय तूं है जु अछाय।
अमर ध्येय तू अमित प्रभाव, असमकाय तू रहित विभाव ।।३७९।।

अतुल देव देवनि के देव, तेरी तुलना कोई न देव।
अखिल भाय तू अनंत जु नाथ, जगत राय तू मुनिगण साथ ।।३८०।।

अखिल भात तू अखिल जु त्रात, अखिल तात जू अखिल जु पात।
असम धीर तू अखिल जु गात, तू जु अरूपी देव अजात ।।३८१।।

छंद त्रोटक

तू ही जु अनुद्धत देव अरं,
तू हि जु अनुज्झित भावचिरं।
तू ही अनया सो ईश परं,
तू ही अद्वितीयो धीरधुरं ।।३८२।।

तू ही सु अनाकाशो जु वरं,
तू ही जु अवैर करो विचरं।

तू ही जु अनावासो विहरं,
आवास वितीतो नाथ पुरं ॥३८३॥
तू ही जु अनुत्कंठो विथरं,
तू ही जु अनाभासो अजरं।
ईशो जु अनाविल है अपरं
धीशो जु अनाश्रित है अकरं ॥३८४॥
देवो जु अनाकुल भाव थिरं,
कर्म्मामय भैषज रूपसुरं।
नाथो जु अनाशक्तात्म गुरं,
पूज्यो सु अनातम विभावहरं ॥३८५॥
तू ही जु अबाधित सूत्रकरं,
तू ही जु असाधितसाध्यतरं।
तू ही जु अनुद्वेगो अजुरं,
तू ही जु अनौपम्यो अदुरं ॥३८६॥
अक्षय गुणरासी पति नगरं,
अत्ययनासी जिनपति सुगरं।
तेरो अवधारण योग्यगिरा,
तू ही जु अपूरव रूप धिरा ॥
सर्वे जु अगोचर भाव जिके,
तू ही गोचर कर नाथ तिके ॥३८७॥
पावै जु अनालस साध तुमं,
गांवै जु अनागस संघ तुमं।
तू ही जु अदूषित देवप्रभू,
तू ही जु अक्षोभित लोकविभू ॥
तू ही अतिभासी धीश जिना,
तू ही अतिभारी ईश दिना।
तू ही अतिभारी मांन जयो,
तू ही जु अचूको ज्ञान मयो ॥३८८॥
तू ही जु अविभचारी सुमुनी,
तू ही अधिचारी नाथ दुनी।
स्वामी जु अभूलो एक तुही,
भूलो सब जग जन औठ सही ॥३६०॥

छंद त्रिभंगी

जब लग्गि अतिंद्रिय बोध निरिंद्रिय,
इंद्रिय निंद्रिय रहित जिना।
जीवो नहि पावत तोहि सुतावत,
अखिलन पावत रूप दिना।।
तू ही जु अवाच्यो मुनिहि जु जाच्यो,
कितहु न राच्यो सर्वगुरु।
तू अखिल सुवाच्यो नाथ अजाच्यो,
निजरस राच्यो देवगुरु ।।३९१।।

जो साधु अतंद्रा वसहिजु कंद्रा,
मत जिनचंद्रा दिढजु धरैं।
ते जपहि जु तोही,
ह्वै निरमोही छांडि सबोही ध्यांन करैं।।
तू है अनुभूती रूप विभूती,
नांहि प्रसूती क्वांि धरै।
अतिरिक्त विभावो शुद्ध स्वभावो,
अमित प्रभावो कालहरे।।३९२।।

तू है अकलंक को ईशचिदं,
को नित्य अपंको देवहरी।
तू असमजु नाथो है अति साथो,
अति वडहाथो रहित अरी।।
तू ही अपरा पर है जु सुधाहर,
पूज सुधाकर लोकपती ।
प्रभुजी अतिपात्रो है अति छात्रो,
ज्ञानहि मात्रो शुद्ध जती ।।३९३।।

तू अति भूतेस्वर है जु महेश्वर,
देव जिनेश्वर अतुल गुणो ।
तू अनत विधानो नाथ अमानो,
अतिगति दानो तत्व गुणो ।।
तू ही जु अरूपी अनत जु रूपी,
परम अनूपी बोधकरो ।
तू पात्र जु रहितो पात्र विमहितो,
निजरस सहितो कर्महरो ।।३६४।।

तू है अतिचारी जिन अविचारी,
अतिगति भारी धर्मपरो ।
है जू अविलीनो नाथ अदीनो,
नाहि अधीनो सिद्ध वरो ।।
देवो अति चेता मुक्ति सुनेता,
है जु प्रणेता चित्तहरो ।
अति ही मदहारी साधु सुधारी,
अमृतधारी मृत्य हरो ।।३६५।।

तू अति शम धारी अगरवतारी,
अति भवहारी शिव जु वरो ।
तू है अतिपारी अति अविकारी,
भव्य उधारी जिन विथरो ।।
तू अतिरित माया अतिरित काया,
अतिरित जाया क्षेत्र धरो ।
तू है अतिक्षेत्री सर्व सुनेत्री,
मोह विजेत्री जगत गुरो ।।३६६।।

तू प्रभु अवधूतौ अतिहि जु पूतो,
है अभूतो भूत महा ।

तू है अतिकामो पुनि जु अकामो
राम विरामो नाम लहा ।।
अतिकर्म ज नाशा अति जु अनाशा,
रहित जु आसा सतधरो ।
जीवनि कौ पालक दोप जु टालक,
काम अहारक सवैं सुरो ।।३९७।।

दोहा

तू जु अनातको प्रभू, है जु अनावे सोहु ।
पूजि अनादेशो तुही व्यापि रह्यो जगि जोहु ।।३९८।।

तेरो निर्माता नही, रचिता जग मै कोय ।
अनिर्मातृ भगवान तू अनिर्वोच्य को होय ।।३९९।।

अति भूतीश्वर असम तू वर पात्रा जु महत ।
तोहि जपै निज मात्र तू, विनु गात्रो भगवत ।।४००।।

अतिजेता अतिभूप तू, अतिधर्मी अतिधर्म ।
अति जु भर्म रहितो तुही, अति शर्म्मी विनु कर्म्म ।।४०१।।

कवित्त

तू अतिकर्म जु टारक स्वामी,
शुभकर्मा नहि अशुभ जु कोय ।
अतिपुण्यो शुद्धत्व मात्र है,
तासौ देव जु तूही होय ।।

तू अनघेशनाथ अतिछात्रो,
अतिरिक्तो छात्रनितैं सोय ।
तू अलषेशनाथ अति गात्रो,
अत्यंतो अत्यर्थ न दोय ॥४०२॥

तू अतिनाथ अतित जु पात्रो,
अति सुहितू अत्यंत जु भ्रात ।
अतिभृत्या तेरै जिनस्वामी,
अतिचेतन तू अमित सुतात ॥
अति जु अनंत भेदधर तू ही,
आप अभेदो है अनिपात ।
तू सामान्य विशेषातम है,
एकानेक जु भेद अजात ॥४०३॥

जो अतिक्रांति विश्रांति दयाला,
अरिहंता अतिशांत मुनीश ।
सुरनर मुनिवर खग तिरकौ मन,
हरै न चोरो अति जगदीश ॥
सांच भूठ जे जगत प्रपंचा,
जानें सव अररहित जु रीस ।
जीव रसिक जो नासक कर्मा,
निरग्रंथो अति कमलाधीश ॥४०४॥

इह अदभुत गति देखहु तापैं,
सो अध्यातम धारसु सार ।
अध्यातमि कौ तारक देव,
असुधारिनि कौ है प्रतिपार ॥

अश्व जु स्पदन हस्ति सुपाय,
कदेन हार सबकौ दातार ।
सब सेना ते रहित जु स्वामी,
सेनाधर सैवै दरबार ॥४०५॥

अतिसै जगके दासन मागै,
दै अतिशय चउतीस जु मोहि ।
अष्ट जु प्रातिहारहू देहो,
केवल दै विनऊ कहा तोहि ॥
देहु अनतचतुष्टय निश्चै,
तू अतिशय तन चिदघन होहि ।
अतिशय प्रातिहार नहि देतो,
अनत चतुष्टय दै प्रभु सोहि ॥४०६॥

हू जु अजाण जान तू करई,
निज सपति दै श्री भगवान ।
अभ विन पावै तेरौ पुर जो,
तू भवितार कहै अति जान ॥
तू जु अभीरु भीरू न पावै,
अभिध्येयो तू है अभिधान ।
अहमेवादिक तो मैं नाही,
तू अभिधाता अनुपम मान ॥४०७॥

तू अतिध्येय सु तू अतिज्ञेयो,
अप्रमेय तू हे अतिमेय ।
अदभुत सार जु तू शिव सारो,
अतिशय सागर है जु अहेय ॥

तो सौं अतिशय वरण जु तूही,
और न दीसैं जग मैं ज्ञेय।
मेरी इह विनती सुनि देवा,
देहु अभै पद निज मैं लेय ॥४०८॥

दोहा

अति थारौं आधार तू, अनत वसैं जगदेव।
अदभुत अध्यातम विमल, तु ही प्रकास अछेव ॥४०६॥

त्रिभंगी छंद

अथ अतिप्यास की ढाल—

अतिमतिकारा अतिश्रुतिसारा,
अवधि अधारा अतिधारा।
है अतिसुखसारा अमन प्रचारा,
अवगम*–वारा धर प्यारा ॥
है अति विचरइया अति विहरइया,
अति विथरइया अतिसारा।
है लक्षण गारा अतिशय कारा,
अतिसमवारा अतिप्यारा ॥४१०॥

अति ही वित भरिया अतिचित धरिया,
अतिगति हरिया अतिहारा।
है अत्युत्च्चंडा अति सुखपिंडा,
अगति विहंडा अतिप्यारा ॥

---

* अवगम कहतां ज्ञान

प्रभु अतिगति कहिया अतिरति रहिया,
अति गणधरिया अतिसारा ।
है अतिगुण धुरिया अतिभव तरिया,
अतियम हरिया अतिप्यारा ॥४११॥

अरति जु हरिया रंग सुकरिया,
संघ उधरिया अतिकारा ।
गुण सग न तजिया संग जु तजिया,
मुनिगण भजिया क्षम वारा ॥
जिन अतिगति पिंडा आप अपिंडा,
अव्रतछंडा अतिफारा ।
है अतनु सु दंडा अत्त नहि खंडा,
उपर मयंडा जनप्यारा ॥४१२॥

है अनघ अधारा अभय प्रहारा,
अगम अपारा अघटारा ।
है तथ्य सु धारा अवितथ धारा,
अविधि विडारा अतिप्यारा ॥
अति परगुण रहिता अति निज सहिता,
सुरनर महिता अतिपारा ।
है अविरस रसिया, अतिगुण लसिया,
अवगम वसिया अतिप्यारा ॥४१३॥

अति अतिथि अधारा वितथ विदारा,
पथ्य सुधारा अतिसारा ।
है अतत विडारा अव्रत डारा,
अतिव्रत वारा अतिप्यारा ॥

अकलित अविरूपा अचलित भूपा,
अतुल अनूपा अतिवारा ।
है अनुभव कारा अतिभव हारा,
अकथ अपारा जिन प्यारा ।।४१४।।

अति अतिशय मंडा अनुशय छंडा,
सौख्य करंडा अविकारा ।
है अनुभव पिंडा अतिशय खंडा,
अतिगति खंडा अतिप्यारा ।।
है अपगति खंडा अविगत पिंडा,
अतिहित मंडा अविधारा ।
है अति अघदंडा अति जु प्रचंडा,
कर्मविहंडा अतिप्यारा ।।४१५।।

है अविरति हारा विरति विहारा,
अतनु प्रहारा अणगारा ।
है भूति विथारा अखलित धारा,
अप्रमतवारा अतिप्यारा ।।
है अमित विथारा सार सुसारा,
अति जगपारा अतिचारा ।
है अतिक्रम टारा मल जु विडारा,
अदरस हारा अतिप्यारा ।।४१६।।

है अकर अकारा अजर जरारा,
अमर करारा अविचारा ।
है अतिगुण गारा अठमद डारा,
अविनयटारा अति प्यारा ।।
है अतिसुख वारा अकुलित डारा,
अतिशम धारा अतिगारा ।

अठदश जु हजारा शील प्रकारा,
अनतीचारा धर प्यारा ॥४१७॥

है अति तिक्षारी अतिक्षिम धारी,
अलख जगारी अतिभारी ।
है क्षण क्षण धारा आप सम्हारा,
ज्ञान अपारा धर प्यारा ॥
है अतिमद मारा अमद सुधारा,
अतिसै बारा जगतारा ।
है अतिसवेगी नाथ अवेगी,
आपुन एगी अतिभारा ॥४१८॥
है गति अति धारा रहित जु भारा,
अति निज लारा परहारा ।
है अति जस भारा अति गति प्यारा,
कृपण विडारा जगभारा ॥
है अकृपण धारा त्याग सुधारा,
शक्ति अपारा तप धारा ॥४१९॥

है अतितप वारा अतप पसारा,
अतितप कारा अणगारा ॥
हे तप ज्वर हारा तप जप प्यारा,
अति तप चारा अतिप्यारा ।
है अतितप चडा अतप सुदडा,
शक्ति अखडा अति धारा ॥
है नहि असमाधा साधु समाधा,
नित्य अवाधा हर प्यारा ॥४२०॥

हे त्याग अखडा तप जु प्रचडा,
आप प्रचडा व्रतकारा ।

दस भेद जु धारा साधु उधारा,
वह अविकारा उरहारा ।।
अति वैयाव्रत्ता कहइ सुव्रत्ता,
रहइ निरत्ता हरिहारा ।
है अकपट गारा कपट प्रहारा,
विश्व विहारा अघहारा ।।४२१।।

है अतिभव हंता अति अरिहंता,
प्रभु अरहंताक्षर धारा ।
अति अनुभवकारा परिगह डारा,
सर्व अधारा गुण गारा ।
है आरिज तारा भगत उधारा,
अति आचारा जग प्यारा ।।
है अनुभव वारा वह अति प्यारा,
अगमि प्रचारा अभिचारा ।।४२२।।

है अतिश्रुति धारा वहुश्रुत प्यारा,
अति आधारा गणतारा ।
है अवितथ कारा अतत विडारा,
अमत जुहारा -अतिधारा ।।
है प्रवचनसारा अवचन वारा,
अति श्रुतिपारा धर तारा ।
ए अवसि जु करणा निति प्रति चरणा,

कहइ अवरणा मुनि प्यारा ।।४२३।।
है वह अति प्यारा मुनि जु उधारा,
अवसि प्रचारा धरतारा ।
है अब्रह्म धूका सीलनि कूपा,
रत्न प्ररूपा रजहारा ।।

है अपथ विडारा मारग सारा,
अप्रतिहारा हरि प्यारा।
है अमद सुकरिया शक्ति सुभरिया,
अतिक्षम धरिया व्रतधारा ॥४२४॥

है वत्सल भावा रहित विभावा,
वह जिन रावा हर प्यारा।
प्रभु अनुभव दाया अतिशय काया,
अतिशमि भाया अतिवारा ॥
है अतिहित भारा अतिद्युति धारा,
अनुभव वारा अति प्यारा।
है अति सति पारा असत प्रहारा,
अतिमल टारा अतिसारा ॥४२५॥

है भवजल तारा अतिमल कारा,
अनुभव वारा अति प्यारा।
है अति सुविचारा अशुचि निवारा,
अघरम डारा भव-डारा ॥
है अमत प्रहारा अगति प्रहारा,
अनुभव वारा अति प्यारा।
है अभियम धारा सयम पारा,
इंद्रिय टारा व्रत गारा ॥४२६॥

है रक्ति प्रहारा भोगत जारा,
अनुभव वारा अति प्यारा।
है अगम अपारा अकरम चारा,
अकरण कारा अगिवारा ॥
है अवरण धारा अमरण कारा,
धर्म अधारा धन धारा।

है धर्म अकिंचन पाप निकंचन,
दोष न रंचन धृति धारा ॥४२७॥

है अतिछति वारा अति अधिकारा,
ब्रह्म विहारा अविकारा ।
है विश्व विथारा विश्व अधारा,
अनुभव वारा अति प्यारा ॥
है अति भवकूला अति रस भूला,
अनुभव मूलो अजरारा ।
है अतिशय भूपा अनुभव रूपा,
अति गुणवारा अति प्यारा ॥४२८॥

है अतिघन नामा अति घनधामा,
अति अभिरामा अतिकारा ।
है मुनिमन हारा अति दुखटारा,
अनुभव वारा अति प्यारा ॥
है अतिहित धारा अहित प्रहारा,
दोऊ टारा जिन प्यारा ।
है देव अरागा वीतसुरागा,
अतिवड भागा जग प्यारा ॥४२६॥

—

सवैया ३१

असि मसि कृषि और वानिज को लेस कोऊ,
नांहि तेरे पुर मैं न शिल्पि पशु पालनां ।
पठन न पाठन है शिष्य गुर भेद नांहि
स्वामि और सेवक को भेद न निहालनां ॥

तू तो जिन एक रूप दोय रूप भाव तेरौ।
तेरौ पुर शुद्ध रूप जहां वस कालनां।
मोह नांहि द्रोह नांहि नांहि जु विभाव कोऊ।
जहां तू विराजै देव सबै भ्रम जालनां ॥४३०॥

असि धारी तू जु नांहि, खग्ग नांहि तेरै हाथ
खग्ग धारा सम जिन, मारग प्रकाश तू।
शस्त्र वस्त्र नांहि तेरै, अस्त्रको न नाम कोऊ
दूषन न भूषन, जो भूख को विनाश तू।
अस्पादिक भेद जे सु जीविका उपाय नाथ
कर्म भूमि, लागत जो आदि ही विभास तू।
असुधारी प्राणिगण पावैं मोष तोहि जपि
मोक्ष कौ जु दाता एक दीखै स्व विलाश तू ॥४३१॥

अरुण प्रकास होय ताकैं पहली जु नाथ,
उठि भव्य जीव तेरौ नाम उर मैं धरै।
मध्यकाल सायंकाल अरध निसाजु मांहि,
तोही सौं लगाय चित्त कांम क्रोध कौं हरै।
अनडल वांवणतू, अनडन तोसौं और,
सुर नर मुनिजन तो ही क्यों जप्यौ करै।
तूही एक ज्ञान रूप चेतना निधांन देव।
तो हीं कौ जु ध्याय साधु वेगि भौ-दधी तरै ॥४३२॥

सोरठा

मेरे टारि जु देव, अनिरक्षा अनिगुप्तमय।
अकस्मात दै सेव, अमरण अमृत देहु मुझ ॥४३३॥
तू जु अकार स्वरूप, सर्वाक्षर मय देव तू।
ब्रह्मरूप जग भूप, दौलति करण जु तू सही ॥४३४॥

अस्मिन् भवदधि मांहि, रागादिक जे क्षार जल।
तो विनु दूजो नांहि, अमी देन हारै प्रभु ॥४३५॥

अमी जु अंमृत नाम, तू जु अमी और सु नहीं।
अमी सांघवो रांम, तोहि त्यागि और न जपै ॥४३६॥

अर्थ अमी को एह, विद्यमांन कौ नाम है॥
अमी सुधा हु कहेह, तो सौं नांहि अंमी जु को ॥४३७॥

अवग्रह ईहा और, फुनि अवाय जु धारणा।
मतिज्ञान के दौर, तीन शतक छत्तीस जे ॥४३८॥

तिनकौ भाषक एक, केवल रूपी देव तू।
तेरो इह जु विवेक, जड चेतन न्यारे करै ॥४३९॥

तू हि अनुत्सेको जु, उत्सेको गर्व जु सही।
तू गर्वारि जिनो जु, मांनी तोहि न पांवही ॥४४०॥

नाम रहित कौ ठीक, कहैं अपेत जु ग्रंथ मैं।
तू जु अपेत विलीक, सत्य उपेतो तू सही ॥४४१॥

श्रीपाल चरित्र

रचनाकाल —सं० १८२२ फागुण सुदी ११

रचना स्थान .—जयपुर (राजस्थान)

अथ श्रीपाल चरित्र भाषा लिख्यते

दोहा

तीर्थङ्कर चोवीस जिन, धर्म राज के ईस।
गुण अनन्त मंडित प्रभु, नमत सक्र सत सीस ॥१॥

सकल विघन हर सर्म कर, सिद्धचक्र अतिसार।
ताकूं वदुं भाव सूं, छोडि जगत भ्रमजाल ॥२॥

———

चौपई

वंदु त्रिविध गुरु गुण खान, राग रहित ज्ञानी अधिकान।
सप्तम गुण ठाणे मुनि गये, चढि के खिपक श्रेणी सिध भये ॥३॥
श्री जिन कमल थकी धुनि खिरी, गणधर देव प्रगट विसतरी।
तीन जगत कूं अति सुखकार, सारद वंदु भवदधि तार ॥४॥
श्री जिन श्रुत गुरु नमि पांय, सिद्धचक्र नमिहूं हित लाय।
जा परसाद श्रीपाल नरेस, कहूं चरित्र महासुभ भेष ॥५॥
जंबू भरत आरज उर आन, मगध देस स्वरथल सम जान।
राजग्रही तामें पुर सही, श्रेणीक भूप सम्यकधर कही ॥६॥
नारि चेलणा ता घर सती, सम्यक आदि गुणांकर जुती।
ताके अभयकुंवर सुत नाम, सो अतिरूप बुद्धि को धाम ॥७॥
ऐसे राज करे नरराय, इक दिन सभा ठये सुख पाय।
एते आयो इक वनपाल, करी वीनती अति गुणमाल ॥८॥
भो नृप भाग तिहारे सही, वर्धमान जिन आये कही।
समोसरण विपुलाचल आय, तिष्ठे हरि सुर जै जै लाय ॥९॥
इम सुणि राय महासुख लेय, सिंघपीठ ते उतरयो जाय।
सात पैंड ता ओडी जाय, अपनो सीस नमायो राय ॥१०॥

पट भूषरण मालो कूं दीये, अष्ट द्रव्य अपने कर लीये ।
पुर में आनन्द भेरी दिवाय, नगर लोक अरु बंधु मिलवाय ।।११।।
वहु सबद उछाह जय लाय, पहुंचे समोसरन में आय ।
तीन प्रदक्षरणा दे नर ईस, गये मांहि निज नायो सीस ।।१२।।
अष्ट दरव ते पूजे राय, फिर वहु भक्ति करी अधिकाय ।
गोतमादि गराधर कूं नयो, मनख थान फिर वैठत भयो ।।१३।।
तव जिनवर की वाणी खिरी, दिव्य ध्वनि अतिसैं करि भरी ।
पुन्य पाप मुनि श्रावक धर्म, तत्वादिक कें भाखे मर्म ।।१४।।
देव मनख तिर्यंच वहु जान, देस देस नर की भी वानि ।
दिव्य ध्वनि अतिसैं करि खिरी, भिन भिन जीव समझि चित धरी ।।१५।।
जो संसै ता जीव उर होय, ताको ज्वाव परनमे सोग ।
अधभुत रचना जिन की वानि, श्रेंरिएक देखि हरष अति मानि ।।१६।।
फिरि श्रेरिएक जिनकूं सीस नाय, ऐसे विनती करी सुभाय ।
सीधचक्र पूजा करि सोय, को फल किन भवि पायो जोय ।।१७।।
ताकी कथा सुनन को चाव, भाखो देव दया रस भाव ।
तव जिन ध्वनि विन अक्षर खिरी, अर्थ गंभीर सकल रस भरी ।।१८।।
सुरिए गोतम गराधर मुनि ईस, भाखे कथन नवों निज सीस ।
उर थिर आन निसुनो सव कथा, भाखत गणी भई विधि यथा ।।१९।।
जंवू दीप नाभि सम मेर, ताकी दक्षरण दिसा भ्रतहेर ।
तामे षट खंड पंच अनार्ज, आरज एक तहा सुख कार्ज ।।२०।।
मालव देस उजेरणी ग्राम, तहां जिनवर के अति सुभ धाम ।
भोजन तहां मुनी नित करे, धर्म ध्यान जुत जन अनुसरे ।।२१।।
सव जिन भक्त वाणी जिन भने, खान पान धन आदिक घने ।
परस परे सव ही जिन हिते, पुर कटुंब सुखी गुरण किते ।।२२।।
पुर में दीन नरा नहि कोय, सव ही जीव पुन्याधिप सोय ।
सव जन कोमल सज्जन भाय, मानों भोग भूमि जन आय ।।२३।।

इत्यादिक परजा सब सुखी, को विध कोय जीव नहीं दुखी।
ऐसो नग्र उजेणी धाम, प्रजापाल राय को नाम ॥२४॥
नारी सौभागसुन्दरि जान, कन्या दोय भई गुणखान।
स्वरसुन्दरि जेठी को नाम, मेणासुन्दरी गुण की धाम ॥२५॥
रूप जेसो सुर कन्या एव, साहस बुधी धर्म नित सेव।
दोऊ सुता बु......सुखकार, तब भणनें कू मेली सार ॥२६॥
जोसी सिवसर्म इक दुज जानि, कन्या भणे बडी इस थान।
स्व प्रतिवेद भणी वहु सही, मिथ्या आगम पढि मद भई ॥२७॥
मेणासुंदरि छोटी सुता, महा वडभागीरु गुणजुता।
येक दिन जिन वंदन कूं गई, त्रिभवन तिलक चैताले सई ॥२८॥
तहां जिन पूजे हरष वढाय, फिरि वंदे जिन धर्म मुनिराय।
नय निज सीस ठई मुनि पास, धर्म सुण्यो सब सुख की रास ॥२९॥
लये अणूव्रत कन्या सही, फिरि मुनि तें इम वीनती ठई।
भौ प्रभु धर्म जिनेस्वर सार, मोहि पढावो सुख करतार ॥३०॥
मुनि ढिग कन्या पढे सुभाय, जिन मन रहसि जतीवत बाय।
प्रथमानु आदिक चव जोग, कन्या भणी महा सुख भोग ॥३१॥
धर्म अधर्म रूप लखि लियो, जान्यो तत्व भेद जिन चयो।
देव धर्म गुरु दिढता लाय, सम्यक् जुत अणुव्रत वराय ॥३२॥
या जग संग उच्च ते सही, क्या क्या गुण उपजे नहीं कही।
नीच संगतें दूषण कोय, कोन कोन उपजे नहीं सोय ॥३३॥
या विधि कन्या दोऊ सार, नाना कला पढी सुखकार।
इक दिन वडी सुता कू सही, वंछित वर जांचो नृप कही ॥३४॥
कन्या तत्र भाखी सुनि तात, अहिछत नग्र राय सुभ गात।
वैरदामन नाम है सही, तासूं व्याह करूं इम कही ॥३५॥
तव राजा बहु ठानि उछाह, कियो वडी कन्या को व्याह।
मेणासुंदरी इक दिन सही, पूजे जिन गंदोदक लही ॥३६॥

तात पास लाई तब सुता, गधोदक सिर लायो पिता।
धारी सनेह सुता सु कही, मागो वर मनवछित कही ।।३७।।
तब यह कन्या सील की खानि तात थकी इम वचन जु ठानि।
अहो तात नारी किम देय, मन बछित वर देस्या लेय ।।३८।।
अथवा नारि कुसीली होय, सो वछित वर मागे जोय।
संत शील कुल ऊची नार, सो वर कबहू न जाचे धार ।।३९।।
मात पिता ताकू परणाय, सोही वर यह नीति कहाय।
पीछे सुभ अरु असुभ सु जोय, कर्म उदैसाहै सौ होय ।।४०।।
सुख दुख होय भाग तें सही, ताकू मेट सके नही कोइ।
ताते पिता सला तुम होय, ताही कू परणावो जोय ।।४१।।
तात वचन सुन मन कोपियो, मेरो वचन सुता खडियो।
थाप्यो कर्म आपनो जानि, सो अब देहु महा दुख थान ।।४२।।
महानिद कोढी धनहीन, जानि दलिद्री सुरती दीन।
ऐसो वर लखि व्याहू सही, राखी मन काहू नहि कही ।।४३।।
इक दिन राय गयो वन थान, क्रीडा करत फिरत हित मान।
ताही वन श्रीपाल नरेस, आ निकसे पलटयो तन भेष ।।४४।।
महा कोढ तीके तन माहि लार सात सै सेवक याहि।
सोभी सर्व कोढ करि सही, वास दुरगध धार तन कही ।।४५।।
छत्र चमर सिंघासण लार, राज त्रजु ज वन्यो सब सार।
ये तन वास दुरगध अपार (महान), फैल रही सब वन के थान ।।४६।।
ऐसे श्रीपाल लखे राय, प्रजापाल जु हरष उपाय।
मन्त्रिन सू राजा इम कही, यह मेणासुन्दरि वर सही ।।४७।।
याकू राखो जागा बनाय, तब मत्री वहु मनै कराय।
राय न मानी काहू वात, कीनो हठ मूरख हरषात ।।४८।।
राय हुकम तो वन मे जानि, जागा वणाई लखि सुभ थानि।
राय जाय कन्या सू कही तो वर कोटी आन्यो सही ।।४९।।

कन्या कही सुनो मो पिता, सुभ अरु असुभ कर्म ते हुता।
जो जो सुख होनो सो होय, ताकूं मेट सकै नहिं कोय ॥५०॥
ऐसे धीर वीर वचन दियौ, सब जन सुनि के अचरज लयो।
सब जन कन्या की थुति करे, कन्या धन्य धन्य सब उचरे ॥५१॥
कोढी पति पायो है सही, तो भी मन चिंता न लही
अंतेपुर सब ही नर नारि, हा हा मुख ते वचन उचारि ॥५२॥
सब मिलि बिनती करवाहि, भो नृप कोढी कूं न विवाहि।
मैणासुन्दरि रूप जिहाज, कोढी कूं न देहि महाराज ॥५३॥
राय हठी मानी नहिं कोय, मंत्री फिर वचन भाखी सोय।
कोढी कूं न कन्या दे राय, तू बुधिवान देखि मन लाय ॥५४॥
मूरख राय तबै इम कही, भो मंत्री यह नृप है सही।
छत्र चमर सिंघासन जोय, राज चहन देखत है सोय ॥५५॥
यह वर जोग्या सुता कूं सही, मैं परणाऊं निस्चै कही।
वरज्यो सति कछु समझ्यो नांहि, इम कहि सब के वचन नसाय ॥५६॥
आय विवाह तणी विधि करी, कन्या रूप दसा अति धरी।
वर जुत आय पिता के पास, नमस्कार कीनो गुण रास ॥५७॥
तब नृप मैणासुन्दरी जोय, रूप थकी रति सी अब लोय।
देख्यो वर कोढि तनहीन, मन पछतावो पति लखि कीन ॥५८॥
आप निंद्यो आपन कु सही, मैं मति हीण यहु कहा बही।
क्रोध थकी मन नांहि विचार, कोढी कहा कहा वर नार ॥५९॥
जानि पूछि मैं कूप मझार, डारि दई कन्या गुण सार।
मो सो हठी नहीं सठ कोय, फिरि मन राजा निश्चै जोय ॥६०॥
कन्या कही सत्य सो वात, कर्म करे सो होय विख्यात।
मैं तो निमत मात्र करतार, कारज होय कर्म अनुसार ॥६१॥
पुन्य पाप मो जीव के होय, ताकूं मेट सके नहिं कोय।
यह अब मो मन निश्चै भयो, इम लखि राय सोच तजि दियो ॥६२॥

प्रजापाल धारि मन तोष, निज उर को छांड्यो सब दोष ।
वनथलि महल उतंग बनाय, मंडित कनक रतन जडवाय ।।६३।।
तहां रहै श्रीपाल नरेस, मैणासुन्दरि नारि सुभेस ।
दासी दास नगर वहु दये, ढोल्यो महल और घर ढये ।।६४।।
तिन में सब कोढी थिति करे, पूरब कर्म किये फल भरे ।
अब वह मेणासुन्दरि नारि, भक्ति करे पति की चित धारि ।।६५।।

अंतिम पाठः—

मैणा सुन्दरि अर्जिका, तजी समाधि ले काय ।
छेदि नारि के लिग कूं, सुक्र स्वर्ग हरिथाय ।।७४५।।
तीन ज्ञान राजत सदा, महा रिद्ध जुत थान ।
आयु पर्यंत सुख भोगि के, चय नर ह्वै सिव जान ।।७४६।।

चोपई

और अर्जिका थी वहु सोय, जे सब स्वर्गथान मे जोय ।
कोउ छेदि लिग स्वर जान, देवी कूंप उपजी आन ।।७४७।।
प्रथम स्वर्ग षोडषलो सही, देवी देव अर्जिका भई ।
या विधि श्रीपाल नर राय, धर्म प्रभाव थकी सुखपाय ।।७४८।।
सुर नर गति सुख भोगि अपार, फेरि सकल दुख कीने छारि ।
सुर नर खग पूजित पद होय, सिद्ध सथान पहूँचे सोय ।।७४९।।

सोरठा

ऐसो जानि हित मान, भानि प्रमाद दसा सही ।
अष्टानिक विधि जानि, शक्ति सधा करनो सही ।।७५०।।
जो सम दृष्टी होय नदीश्वर व्रत कू करै ।
सो सुरनर खग होय, शिव थानक सुख सूं लहै ।।७५१।।

दोहा

यह चरित्र श्रीपाल को, पूरन भयो सुजान ।
याकूं लखि चरम उर विषै, निश दिन राखि सचान ।।७५२।।

धर्म सकल सुखदाय है, ताते भवि उर आन ।
पाप बुद्धि दुखदा सही, छाडन की बुद्धि ठान ।।७५३।।

संवत अष्टादश शत जान, ऊपर बीस दोय फिर आन ।
फागुण सुदि इग्यार निस मांहि, कियो समापत उर हुलसाहि ।।७५४।।

दोहा

सोमसेन अनुसार ले दौलतराम सुखदाय ।
यह भाषा पूरण करी सकल संघ सुखदाय ।।७५५।।

इति श्रीपाल चरित्र संपूर्णः । लिखता पंडित पन्नालालजी को परतभनप्र परतापगढ मध्ये । धान मंडी में श्री ऋषभदेवजी के मंदिर श्री रिखभनाथ चैताले श्रीरस्तु कल्याणमस्तु संभवतु । वार दीतवार ने संवत १६२१ पोस सुदी पंचमी ।।

पद्म-पुराण-भाषा

रचनाकाल —सं० १८२३ माघ सुदी ९

रचना स्थान :—जयपुर (राजस्थान)

मंगलाचरण :—

दोहा

चिदानंद चैतन्य के, गुण अनन्त उरधार।
भाषा पद्मपुराण की, भाषूं श्रुति अनुसार ।।१।।

पंच परमपद पद प्रणमि, प्रणमि जिनेश्वर वानि।
नमि जिन प्रतिमा जिनभवन, जिन मारग उर आनि ।।२।।

ऋषभ अजित संभव प्रणमि, नमि अभिनन्दनदेव।
सुमति जु पद्म सुपार्श्व नमि, करि चन्द्राप्रभु सेव ।।३।।

पुष्पदंत शीतल प्रणमि, श्रीश्रेयांस को ध्याय।
वासुपूज्य विमलेश नमि, नमि अनंतके पाय ।।४।।

धर्म शांति जिन कुन्थु नमि, और मल्लि यश गाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि नमि, नमि पारसके पाय ।।५।।

वर्द्धमान वरवीर नमि, सुरगुरुवर मुनि वंद।
सकल जिनंद मुनिंद नमि, जैनधर्म अभिनन्द ।।६।।

निर्वाणादि अतीत जिन, नमों नाथ चौवीस।
महापद्म परमुख प्रभू, चौवीसों जगदीश ।।७।।

होंगे तिनको वंदिकर, द्वादशांग उरलाय।
सीमंधर आदिक नमूं, दश दूने जिनराय ।।८।।

विरहमान भगवान ये, क्षेत्र विदेह मझारि।
पूजें जिनको सुरपती, नागपती निरधार ।।९।।

द्वीप अढाईके विषैं, भये जिनेन्द्र अनंत।
होंगे केवलज्ञानमय, नाथ अनन्तानन्त ।।१०।।

सबको वंदन कर सदा, गणधर मुनिवर ध्याय।
केवलि श्रुतिकेवलि नमूं, आचारज उवझाय ।।११।।

वंदू शुद्ध स्वभावको, धर सिद्धनको ध्यान।
संतनको परणामकर, नमि दृग व्रत निज ज्ञान ॥१२॥

शिवपुर दायक सुगुरु नमि, सिद्धलोक यश गाय।
केवलदर्शन ज्ञानको, पूजूं मन वच काय ॥१३॥

यथाख्यात चारित्र अरु, क्षपकश्रेणि गुण ध्याय।
धर्म शुक्ल निज ध्यान को, वंदू भाव लगाय ॥१४॥

उपशम वेदक क्षायिका, सम्यग्दर्शन सार।
कर वंदन समभावको, पूजूं पंचाचार ॥१५॥

मूलोत्तर गुण मुनिनके, पच महाव्रत आदि।
पंच समिति और गुप्तत्रय, ये शिवमूल अनादि ॥१६॥

अनित्य आदिक भावना, सेऊं चित्त लगाय।
अध्यातम आगम नमूं, शांति भाव उरलाय ॥१७॥

अनुप्रेक्षा द्वादश महा, चितवें श्रीजिनराय।
तिनकी स्तुति करि भावसों, षोडशकारण ध्याय ॥१८॥

दशलक्षणमय धर्मको, धर सरधा मनमांहि।
जीवदया सत शील तप, जिनकर पाप नसाहिं ॥१९॥

तीर्थंकर भगवान के, पूजूं पंच कल्याण।
और केवलनिको नमूं, केवल अरु निर्वाण ॥२०॥

श्रीजिन तीरथ क्षेत्र नमि, प्रणमि उभय विधि धर्म।
थुतिकर चहुँ विधि संघकी, तजकर मिथ्या भर्म ॥२१॥

वदूं गौतम स्वामिके, चरण कमल सुखदाय।
वंदूं धर्म मुनीन्द्रको, जम्बूकेवलि ध्याय ॥२२॥

भद्रबाहुको कर प्रणमि, भद्रभाव उरलाय।
वंदि समाधि सुतंत्रको, ज्ञावतने गुण गाय ॥२३॥

ग्रंथों का स्मरण

महा धवल अरु जयधवल, तथा धवल जिनग्रन्थ।
वंदूं तन मन वचन कर, जे शिवपुरके पंथ ॥२४॥
षट्पाहुड नाटक जु त्रय, तत्वारथ सूत्रादि।
तिनको वंदूं भाव कर, हरें दोष रागादि ॥२५॥
गोमटसार अगाधि श्रुत, लब्धिसार जगसार।
क्षपणासार भवतार है, योगसार रसधार ॥२६॥
ज्ञानार्णव है ज्ञानमय, नमूं ध्यान का मूल।
पद्मनंदि पच्चीसिका, करे कर्म उन्मूल ॥२७॥
यत्नाचार विचार नमि, नमूं श्रावकाचार।
द्रव्यसंग्रह नयचक्र फुनि, नमूं शांति रसधार ॥२८॥
आदिपुराणादिक सवै, जैन पुराण वखान।
वंदूं मन वच काय कर, दायक पद निर्वाण ॥२८॥
तत्वसार आराधना-, सार महारस धार।
परमातम परकाशको, पूजूं बारम्बार ॥३०॥

पूर्वाचार्यों का स्मरण :—

वंदूं विशाखाचार्यवर, अनुभव के गुण गाय।
कुन्दकुन्द पद धोक दे, कहूं कथा सुखदाय ॥३१॥
कुमुदचंद्र अकलंक नमि, नेमिचंद्र गुण ध्याय।
पात्रकेशरी को प्रणमि, समंतभद्र यशगाय ॥३१॥
अमृतचंद्र यतिचंद्र को, उमास्वामि को वंद।
पूज्यपाद को कर प्रणमि, पूजादिक अभिनंद ॥३३॥
ब्रह्मचर्यव्रत वंदिके, दानादिक उर लाय।
श्रीयोगीन्द्र मुनीन्द्रको, वंदूं मन वच काय ॥३४॥
वंदूं मुनि शुभचंद्रको, देवसेनको पूज।
करि वंदन जिनसेन को, जिनके सम नहिं दूज ॥३५॥

पद्मपुराण निधान को, हाथ जोडि सिरनाय।
ताकी भाषा वचनिका, भाषू सब सुखदाय ।।३६।।
पद्म नाम बलभद्रका, रामचन्द्र बलभद्र।
भये आठवे धार नर, धारक श्री जिनमुद्र ।।३७।।
ता पीछे मुनिसुव्रतके, प्रगटे अति गुणधाम।
सुरनरवंदित धर्ममय, दशरथ के सुत राम ।।३८।।
शिवगामी नामी महा, ज्ञानी करुणावंत।
न्यायवंत बलवंत अति, कर्म हरण जयवंत ।।३९।।
जिनके लक्ष्मण वीर हरि महाबली गुणवंत।
भ्रातभक्त अनुरक्त अति, जैनधर्म यशवंत ।।४०।।
चन्द्र सूर्य से वीर ये, हरे सदा परपीर।
कथा तिनोकी शुभ महा, भाषी गौतम धीर ।।४१।।
सुनी सबै श्रेणिक नृपति, धर सरधा मन माहि।
सो भाषी रविषेणने, यामे संशय नाहिं ।।४२।।
महासती सीता शुभा, रामचद्र की नारि।
भरत शत्रुघ्न अनुज है, यही बात उर धारि ।।४३।।
तद्भव शिवगामी भरत, अरु लव-अंकुश पूत।
मुक्त भये मुनिवरत धरि, नमै तिने पुरहुत ।।४४।।
रामचन्द्रको करि प्रणामि, नमि रविषेण ऋषीश।
रामकथा भाषू यथा, नमि जिन श्रुति मुनिईश ।।४५।।

[अंजना और पवनजय कुमार का मिलाप]

अथानंतर[1] पवनजयकुमार ने अंजनासुन्दरी को परण कर ऐसी तजी जो कबहू बात न बूझै, सो वह सुन्दरी पति के असंभाषणतैं अर कृपादृष्टि कर न

---

१ षोडस पर्व।

देखवेतैं परम दुःख करती भई। रात्रि में भी निद्रा न लेय, निरंतर अश्रुपात ही झरा करैं, शरीर मलिन होय गया, पतिसौं अति स्नेह, वनी का नाम अति सुहावै, पवन जावै सो भी अति प्रिय लागै, पति का रूप तो विवाह की वेदी में अवलोकन किया हुता ताका मन में ध्यान करवो करै अर निश्चल लोचन सर्व चेष्टा रहित बैठी रहै। अंतरंग ध्यान में पति का रूप निरूपण करि वाह्य भी दर्शन किया चाहै सो न होय। तदि शोककरि बैठी रहै, चित्रपटविषैं पति का चित्राम् लिखने का उद्यम करै, तदि हाथ कांप करि कलम गिर पड़ै, दुर्बल होय गया है समस्त अंग जाका, ढीले होय कर गिर पड़े हैं आभूषण जाके, दीर्घ उष्ण जे उच्छ्वासनिकरि मुरझाय गए हैं कपोल जाके, अंग में वस्त्र के भी भार करि खेद कों धरती संती, अपने अशुभ कर्मों को निंदती, माता-पितानि को वारंवार याद करती संती, शून्य भया है हृदय जाका, दुःख कर क्षीण शरीर, मूर्च्छा आय जाय, चेष्टा रहित होय जाय, अश्रुपात करि रुक गया है कंठ जाका, दुःख कर निकसै हैं वचन जाके, विह्वल भई संती दैव कहिए पूर्वोपार्जित कर्म ताहि उलाहना देय चन्द्रमा की किरण हू करि जाकौं अति दाह उपजै अर मंदिर विषैं गमन करती मूर्च्छा खाय गिर पड़ै अर विकल्प की मारी ऐसा विचार करि अपने मन ही में पति सौं वतलावै कि हे नाथ! तिहारे मनोज्ञ अंग मेरे हृदय में निरंतर तिष्ठै हैं, मोहि आताप क्यों करै हैं अर मैं आपका कछु अपराध नहीं किया, निःकारण मेरे पर कोप क्यों करो, अब प्रसन्न होवो, मैं तिहारी भक्त हूँ, मेरे चित्त के विषाद को हरो। जैसें अंतरंग दर्शन देवो हो, तैसें वहिरंग देवो। यह मैं हाथ जोड़ विनती करूं हूँ। जैसैं सूर्य बिना दिन की शोभा नाहीं अर चन्द्रमा बिना रात्रि की शोभा नाहीं अर दया क्षमा शील संतोषादि गुण बिना विद्या शोभै नाहीं, तैसें तिहारी कृपा बिना मेरी शोभा नाहीं, या भांति चित्तविषैं बसै जो पतिताहि उलाहना देय। अर बड़े मोतियों समान नेत्रनितैं आंसुवनि की बूंद झरैं, महा कोमल सेज पर अनेक सामग्री सखीजन करैं परन्तु याहि कछु न सुहावै, चक्रारूढ़ समान मन में उपज्या है वियोग में भ्रम जाकों, स्नानादि संस्कार रहित कभी भी केश समारै गूंथै नाहीं, केश भी रूखे पड़ गये, सर्व क्रिया में जड़ मानों पृथ्वी का ही रूप होय रही है। अर निरंतर आँसुवनि के प्रवाहतैं मानों जलरूप ही होय रही है। हृदय के दाह के योगतैं मानों अग्निरूप ही होय रही है। अर निश्चलचित्त के योगतैं मानों वायुरूप ही होय रही है अर शून्यता के योगतैं मानों गगनरूप ही होय रही है। मोह के योगतैं आच्छादित होय रहा है ज्ञान जाका, भूमि पर डार दिए हैं सर्व अंग जानैं, बैठ न सकै अर तिष्ठै तौ उठ न सकै अर उठै तौ देही कों थांभ न सकै सो सखीजन का हाथ पकड़ि विहार करै सो पग डिग

जाय अर चतुर जे सखीजन तिनसों बोलने की इच्छा करै परंतु बोल न सकै अर हसनी कबूतरी आदि गृह पक्षी तिनसों क्रीडा किया चाहै पर कर न सकै। यह विचारी सबों से न्यारी बैठी रहै, पति मे लग रहा है मन अर नेत्र जाका, निःकारण पतितै अपमान पाया सो एक दिन एक बरस बराबर जाय। यह याकी अवस्था देखि सकल परिवार व्याकुल भया सब ही चितवते भए कि ऐता दुःख याहि बिना कारण क्यो भया है। यह कोई पूर्वोपार्जित पाप कर्म का उदय है। पिछले जन्म मे यानै काहूके सुख विषैं अतराय किया है, सो याकै भी सुख का अतराय भया। वायुकुमार तो निमित्तमात्र है। यह बरी भोरी निर्दोष याहि परणकरि क्यों तजी, ऐसी दुलहन सहित देवनि समान भोग क्यों न करै। यानै पिता के घर कभी रचमात्र हू दु.ख न देख्या सो यह कर्मानुभव कर दुःख के भारकों प्राप्त भई। याकी सखीजन विचारैं हैं कि क्या उपाय करैं, हम भाग्यरहित हमारे यत्न-साध्य यह कार्य नाही, कोई अशुभकर्म की चाल है, अब ऐसा दिन कब होयगा, वह शुभ मुहूर्त शुभ वेला कब होयगी जो वह प्रीतम या प्रिया कों समीप लेय बैठेगा अर कृपा दृष्टि कर देखेगा, मिष्ट वचन बोलेगा, यह सब के अभिलाषा लग रही है।

अथानंतर राजा वरुण ताकै रावणसो विरोध पडया, वरुण महा गर्ववान रावण की सेवा न करै, सो रावण ने दूत भेज्या। दूत जाय वरुणसो कहता भया। दूत धनी की शक्ति कर महाकाति को धरै है। अहो विद्याधराधिपते वरुण ! सर्व का स्वामी जो रावण तानै यह आज्ञा करी है जो आप मोहि प्रणाम करो अथवा युद्ध की तैयारी करो। तब वरुण ने हँसकर कही, हो दूत ! कौन है रावण, कहाँ रहै है जो मोहि दबावै है। सो मैं इंद्र नाही हूँ जो वृथा गर्वित लोकनिंद्य हुता, मैं वैश्रवण नाहीं, यम नाहीं, मैं सहस्ररश्मि नाही, मैं मरुत नाहीं रावण के देवाधिष्ठित रत्नोकरि महा गर्व उपज्या है, वाकी सामर्थ्य है तो आवो, मैं वाहि वैरहित करूंगा अर तेरी मृत्यु नजीक है जो हमसों ऐसी बात कहै है। तब दूत जायकर रावणसो सर्व वृतांत कहता भया। रावण ने कोप कर समुद्र-तुल्य सेना सहित जाय वरुण का नगर घेर्‌या अर यह प्रतिज्ञा करी जो मैं याहि देवाधिष्ठित रत्न बिना ही वश करूंगा, मारूं अथवा बांधू।

तब वरुण के पुत्र राजीव पुण्डरीकादिक क्रोधायमान होय रावण के कटकपर आए। रावणकी सेना के अर इनके बड़ा युद्ध भया, परस्पर शस्त्रनि के समूह छेद डारे। हाथी हाथियों से, घोड़े घोड़ों से, भट

भटोंसे महायुद्ध करते भए। बड़े–बड़े सामंत डसि डसिकरि लाल नेत्र हैं जिनके वे महाभयानक शब्द करते भए। बड़ी देर तक संग्राम भया। सो वरुण की सेना रावण की सेनाओं कछुइक पीछे हटी। तब अपनी सेना को हटी देख वरुण राक्षसनिकी सेनापर आप चल करि आया, कालग्नि–समान भयानक। तब रावण दुर्निवार वरुण को रणभूमि विषैं सन्मुख आवता देखकर आप युद्ध करने को उद्यमी भया। वरुणकै अर रावणकै आपस विषैं युद्ध होने लगा अर वरुणके पुत्र खरदूषणसों युद्ध करते भए। कैसे हैं वरुणके पुत्र? महाभटोंके प्रलय करनहारे अर अनेक माते हाथियों के कुंभस्थल विदारनहारे। सो रावण, क्रोधकरि दीप्त है मन जाका, महाक्रूर जो भृकुटि तिनकरि भयानक है मुख जाका, कुटिल हैं केश जाके, जब लगि धनुप के बाण तान वरुणपर चलावै तब लग वरुणके पुत्रों ने रावण के बहनेऊ खरदूषण को पकड़ लिया।

तब रावण मन में विचारी जो हम वरुणसों युद्ध करैं अर खरदूषण का मरण होय तो उचित नाहीं, तातैं संग्राम मनै किया। जे बुद्धिमान हैं ते मंत्रविषैं चूकैं नाहीं। तब मंत्रियोंने मंत्रकर सब देशोंके राजा बुलाए। शीघ्रगामी पुरुष भेजे। सबनिकों लिखा, बड़ी सेना-सहित शीघ्र ही आवो। अर राजा प्रह्लाद पर भी पत्र लेय मनुष्य आया सो राजा प्रह्लाद ने स्वामीकी भक्तिकरि रावणके सेवकनिका बहुत सन्मान किया अर उठकर बहुत आदरसों पत्र माथे चढाया अर बांच्या। सो पत्रविषैं या भांति लिखा था कि पातालपुर के समीप कल्याण रूप स्थानक मैं तिष्ठता महाक्षेमरूप विद्याधरोंके अधिपतियोंका पति सुमालीका पुत्र जो रत्नश्रवा, ताका पुत्र राक्षसवंशरूप आकाशविषैं चंद्रमा ऐसा जो रावण सो आदित्यनगर के राजा प्रह्लादकों आज्ञा करै है। कैसा है प्रह्लाद? कल्याणरूप है, न्यायका वेत्ता है, देश–काल–विधान का ज्ञायक है, हमारा बहुत वल्लभ है। प्रथम तो तिहारे शरीरकी कुशल पूछे है, बहुरि यह समाचार है कि हम कों सर्व खेचर भूचर प्रणाम करै हैं, हाथोंकी अंगुली तिनके नखकी ज्योतिकर ज्योतिरूप किए हैं निज शिरके केश जिनने, अर एक अति दुर्बुद्धि वरुण पाताल नगरमें निवास करै है सो आज्ञातैं पराङ्मुख होय लड़नेको उद्यमी भया है। हृदयकों व्यथाकारी विद्याधरों के समूहकरि युक्त है। समुद्र के मध्य द्वीपको पायकर वह दुरात्मा गर्वको प्राप्त भया है, सो हम ताके ऊपर चढ़कर आए हैं, बड़ा युद्ध भया। वरुण के पुत्रों ने खरदूषण को जीवता पकड्या है

सो मंत्रियों ने मंत्र करि खरदूषणके मरणकी शंकातैं युद्ध रोक दिया, तातैं खरदूषण कौं छुड़ावना अर वरुण को जीतना सो तुम अवश्य शीघ्र आइयो, ढील मत करियो। तुम सरिखे पुरुष कर्तव्यमें न चूकैं, अब सब विचार तिहारे आयवे पर है। यद्यपि सूर्य तेजके पुंज है तथापि अरुण सरिखा सारथी चाहिए। तब राजा प्रह्लाद पत्रके समाचार जानि मन्त्रियोंसों मंत्र कर रावणके समीप चलनेकों उद्यमी भया। तब प्रह्लाद को चलता सुनकर पवनंजयकुमार ने हाथ जोडि गोड़निर्तें धरती स्पर्श नमस्कार विनती करी। हे नाथ! मुझ पुत्रके होते सते तुमको गमनयुक्त नाहीं, पिता जो पुत्र को पालै है सो पुत्रका यही धर्म है कि पिताकी सेवा करै तो जानिए पुत्र भया ही नाहीं। तातैं आप कूच न करैं, मोहि आज्ञा करैं। तब पिता कहते भये, हे पुत्र! तुम कुमार हो, अब तक तुमने कोई युद्ध देख्या नाहीं, तातैं तुम यहां रहो, मैं जाऊंगा। तब पवनजयकुमार कनकाचल के तट समान जो वक्षस्थल ताहि ऊंचाकर तेज के धरणहारे वचन कहता भया—हे तात! मेरी शक्ति का लक्षण तुमने देख्या नाहीं, जगत के दाहवेमें अग्नि के स्फुलिंगे का कहा वीर्य परखना। तुम्हारी आज्ञारूप आसिपाकर पवित्र भया है मस्तक मेरा, ऐसा जो मैं इन्द्रको भी जीतनेको समर्थ हूं, यामें संदेह नाहीं। ऐसा कहकर पिताकों नमस्कार कर महा हर्ष संयुक्त उठकरि स्नान भोजनादि शरीरकी क्रिया करी अर आदरसहित जे कुल में वृद्ध हैं तिन्होंने असीस दीना। भाव सहित अरहंत सिद्ध को नमस्कारकरि परम कांति को धरता संता महा मंगलरूप पितासों विदा होवेकों आया सो पिताने अर माताने मगल के भयतैं आंसू न काढ़े, आशीर्वाद दिया। हे पुत्र! तेरी विजय होय, छाती सों लगाय मस्तक चूम्या।

पवनंजयकुमार श्री भगवान का ध्यान धर माता पिता को प्रणाम करि जे परिवार के लोग पायनि पड़े तिनकौं बहुत धैर्य बंधाय सबसों अति स्नेह कर विदा भए। पहले अपना दाहिना पाव आगै धर चले। फुरकै है दाहिनी भुजा जिनकी अर पूर्ण कलश जिनके मुख पर लाल पल्लव तिनपर प्रथम ही दृष्टि पड़ी। अर थंभसों लगी हुई द्वारै खड़ी जो अजना सुन्दरी आंसुवनिकरि भीज रहे हैं नेत्र जाके, तांबूलादिरहित धूसरे होय रहे हैं अधर जाके, मानो थंभविषै उकेरी पुतली ही है। कुमार की दृष्टि सुन्दरी पर पड़ी सो क्षणमात्रविषैं दृष्टि संकोच कोपकरि बोले। हे दुरीक्षणे कहिए दुःखकारी है दर्शन जाका, या स्थानकतैं जाओ, तेरी दृष्टि उल्कापात समान है, सो मैं सहार न सकूं। अहो बड़े कुलकी पुत्री कुलवंती! तिनमें यह ढीठपणा कि मनै किए भी निर्लज्ज ऊभी रहै। ये पतिके अतिक्रूर वचन सुने तो भी याहि अति प्रिय लागै जैसै

घने दिन के तिसाए पपैये कों मेघ की बूंद प्यारी लागै, सो पति के वचन मनकरि अमृत समान पीवती भई, हाथ जोड़ि चरणारविंद की ओर दृष्टि धरि गदगद वाणीकर डिगते डिगते वचन नीठि नीठि कहती भई—हे नाथ ! जब तुम यहां विराजते हुते, तबहूं मैं वियोगिनी ही हुती; परन्तु आप निकट हैं सो आशाकरि प्राण कष्टतैं टिक रहे हैं, अब आप दूर पधारें हैं मैं कैसे जीऊंगी। मैं तिहारे वचनरूप अमृत के आस्वादनेकी अति आतुर, तुम परदेश कों गमन करते समय स्नेहतैं दयालु चित्त होयकर वस्ती के पशु पक्षियों को भी दिलासा करी, मनुष्यों की तो कहा बात ? सबको अमृत समान वचन कहे, मेरा चित्त तिहारे चरणारविंद विषैं है, मैं तिहारी अप्राप्तिकर अति दुःखी, औरनिकी श्रीमुखतैं एती दिलासा करी, मेरी औरनिके मुखतैंही दिलासा कराई होती। जब मोहि आपने तजी तब जगत में शरण नाहीं, मरण ही है। तब कुमार ने मुख संकोचकर कोपसों कही, मर। तब यह सती खेद-खिन्न होय धरती पर गिर पड़ी। पवनकुमार यासों कुमयाही विषैं चाले। वड़ी ऋद्धि सहित हाथी पर असवार होय सामंतों सहित पयान किया। पहले ही दिनविषैं मानसरोवर जाय डेरे भए, पुष्ट हैं वाहन जिनके, सो विद्याधरिनी की सेना देवों की सेना समान आकाशतैं उतरती संती अति शोभायमान भासती भई। कैसी है सेना ? नाना प्रकार के जे वाहन अर शस्त्र तेई हैं आभूपण जाके। अपने २ वाहनों के यथायोग्य यत्न कराए, स्नान कराए, खानपान का यत्न कराया।

अथानंतर विद्या के प्रभावतैं मनोहर एक वहुखणा महल वनाया, चौड़ा और ऊंचा सो आप मित्र सहित महल ऊपर विराजे ? संग्राम का उपज्या है अति हर्प जिनके, झरोखनि की जाली के छिद्रकरि सरोवर के तट के वृक्षनिकों देखते हुते, शीतल मंद सुगंध पवनकरि वृक्ष मंद मंद हालते हुते अर सरोवरविषैं लहर उठती हुती, सरोवर के जीव कछुवा, मीन, मगर अर अनेक प्रकार के जलचर गर्व के धरणहारे तिनकी भुजानिकरि किलोल होय रही हैं। उज्जवल स्फटिकमणि समान निर्मल जल है जामें नाना प्रकार के कमल फूल रहे हैं, हंस, कारंड, क्रौंच, सारस इत्यादि पक्षी सुन्दर शब्द कर रहे हैं जिनके सुनने तैं मन अर कर्ण हर्प पावैं अर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। तहां एक चकवी, चकवे विना अकेली वियोगरूप अग्नितैं तप्तायमान अति आकुल, नाना प्रकार चेप्टा की करणहारी, अस्ताचल की ओर सूर्य गया सो वा तरफ लग रहे हैं नेत्र जाके अर कमलिनी के पत्रनिके छिद्रों विषैं वारंवार देखै है, पांखनिकौं हलावती उठै है अर पड़ै है।

अर मृणाल कहिए कमल की नाल का तार ताका स्वाद विप-समान देखै है, अपना प्रतिविम्व जलविषैं देखकरि जानै है कि यह मेरा प्रीतम है,

सो ताहि बुलावै है सो प्रतिबिंब कहा आवै। तदि अप्राप्तितैं परम शोक को प्राप्त भई है। कटक आय उतर्या है सो नाना देशनिके मनुष्यो के शब्द अर हाथी घोडा आदि नाना प्रकार के पशुवनि के शब्द सुनकर अपने वल्लभ चकवा की आशा कर भ्रमै है चित्त, जाका, अश्रुपात सहित हैं लोचन जाके, तट के वृक्ष पर चढि चढिकरि दशो दिशा की ओर देखै है, प्रीतम को न देखकरि अति शीघ्र ही भूमिपर आय पडे है, पाख हलाय कमलिनी की जो रज शरीर के लागी है सो दूर करै है सो पवनकुमार ने घनीवेर तक दृष्टि धारि चकवी की दशा देखी, दयाकर भीज गया है चित्त जाका, चित्त मे ऐसा विचारै है कि प्रीतम के वियोग करि यह शोक रूप अग्निविषै वलै है।

यह मनोज्ञ मानसरोवर अर चन्द्रमा की चादनी चदन-समान शीतल सो या वियोगिनी चकवी को दावानल समान है, पति विना याको कोमल पल्लव भी खड्ग समान भासै है। चन्द्रमा की किरण भी वज्र के समान भासै है, स्वर्ग हू नरकरूप होय आचरै है। ऐसा चितवनकर याका मन प्रिया विषै गया। अर या मानसरोवर पर ही विवाह भया हुता सो वे विवाह के स्थानक दृष्टि मे पडे सो याको अति शोक के कारण भए, मर्म के भेदनहार दु सह करौत समान लागे। चित्तविषै विचारता भया—हाय! हाय! मे क्रूरचित्त पापी, वह निर्दोष वृथा तजी, एक रात्रि का वियोग चकवी न सहार सकै तो बाईस-वर्ष का वियोग वह महासुन्दरी कैसै सहारै? कटुक वचन वाकी सखीने कहे हुते, वाने तो न कहे हुते, मैं पराए दोषकरि काहे को ताका परित्याग किया। धिक्कार है मो सारिखे मूर्ख को, जो विना विचारे काम करै।

ऐसे निष्कपट प्राणी को विना कारण दु ख अवस्था करी, मै पापचित्त हूँ, वज्र समान है हृदय मेरा जा मने एते वष ऐसी प्राणवल्लभा को वियोग दिया, अब क्या करू, पितासो विदा होयकर घरतै निकस्या हू, कैसे पाछा जाऊ, बडा सकट पड्या, जो मै वासो मिले विना सग्राम मे जाऊ तो वह जीवै नाही अर वाके अभाव भये मेरा भी अभाव होगया जगत विषै जीतव्य समान कोई पदार्थ नाही तातै सर्व सदेह का निवारणहारा मेरा परम मित्र प्रहस्त विद्यमान है वाहि सर्वभेद पूछू। वह सर्वप्रीति की रीति मे प्रवीण है। जे विचार कर कार्य करे है, ते प्राणी सुख पावै है ऐसा पवनकुमार को विचार उपज्या सो प्रहस्त मित्र ताके सुखविषै सुखी दुखविषै दुखी याको चितावान देख पूछता भया कि हे मित्र! तुम रावण की मदद करने को वरुण सारिखे योधासो लडने को जावो हो, सो अति प्रसन्नता चाहिये तब कार्य की सिद्धि होय आज तिहारा वदन रूप कमल क्या मुरझाया दीखै है, लज्जा को

हजकरि मोहि कहो, तुमको चिंतावान देखकर मेरे व्याकुल भाव भया है। तब पवनंजय ने कहा—हे मित्र ! यह वार्ता काहू सो कहनी नाहीं। परन्तु तुम मेरे सर्व रहस्य के भाजन हो तोसूं अंतर नाहीं। यह वात कहते परम लज्जा उपजै है। तब प्रहस्त कहते भये जो तिहारे चित्त विषैं होय सो कहो, जो तुम आज्ञा करो सो बात और कोई न जानेगा, जैसें ताते लोहे पर पड़ी जलकी बूंद विलाय जाय, प्रकट न दीखै, तैसें मोहि कही बात प्रकट न होय।

तब पवनकुमार बोले–हे मित्र ! सुनो–मैं कदापि अंजना-सुन्दरीसों प्रीति न करी सो अब मेरा मन अति व्याकुल है, मेरी क्रूरता देखो ऐते वर्ष परणे भए सो अब तक वियोग रहा, निष्कारण अप्रीति भई, सदा वह शोककी भरी रही। अश्रुपात करते रहे अर चलते समय द्वारे खड़ी विरह रूप दाहसों मुरझा गया है मुख रूप कमल जाका, सर्व लावण्य संपदारहित मैंने देखी, अब ताके दीर्घ नेत्र नीलकमल समान मेरे हृदयको बाणवत् भेदैं हैं, तातैं ऐसा उपायकर जाकरि मेरा तासों मिलाप होय। हे सज्जन ! जो मिलाप न हो यगा तो हम दोनों का ही मरण होयगा। तब प्रहस्त क्षणएक विचारकरि बोले-तुम माता पितासों आज्ञा मांग शत्रु के जीतवे को निकसे हो, तातैं पीछे चलना उचित नाहीं अर अब तक कदापि अंजना-सुन्दरी याद करी नाहीं अर यहां बुलावैं तो लज्जा उपजै है तातैं गोप्य चलना अर गोप्य ही आवना, वहां रहना नाहीं। उनका अवलोकन कर सुख संभाषण करि आनंद रूप शीघ्र ही आवना। तब आपका चित्त निश्चल होयगा। परम उत्साहरूप चलना, शत्रु के जीतने का निश्चय किया सो यही उपाय है। तब मुद्गर नामा सेनापति को कटक रक्षा सौंपकरि मेरुकी वंदनाका मिसकरि प्रहस्त मित्र सहित गुप्त ही सुगंधादि सामग्री लेय करि आकाशके मार्गसों चाले। सूर्य भी अस्त होय गया अर सांझका प्रकाश भी गया, निशा प्रगट भई अंजनासुन्दरी के महल पर जाय पहुंचे। पवन कुमार तो बाहिर खड़े रहे, प्रहस्त खबर देनेकों भीतर गए, दीपक का मंद प्रकाश था, अंजना कहती भई कौन है ? वसंतमाला निकट ही सोती हुती, सो जगाई, वह सब वातोंविषैं निपुण उठकर अंजनाका भय निवारण करत भई। प्रहस्तने नमस्कारकरि जब पवनंजय के आगमनका वृत्तान्त कह्या तब सुन्दरी प्राणनाथ का समागम स्वप्न समान जान्या, प्रहस्त सों गद्गद वार्ताकरि कहती भई हे प्रहस्त ! मैं पुण्यहीन पतिकी कृपाकरि वर्जित, मेरे ऐसा ही पाप कर्मका उदय आया, तू हमसों कहा हंसै है, पतिसों जिसका निरादर होय वाकी कौन अवज्ञा न करै ? मैं अभागिनी दुःख अवस्थाकों प्राप्त भई, कहांतैं सुख अवस्था होय। तब प्रहस्त ने हाथ जोड़ि नमस्कारकरि

विनती करी–हे कल्याणरूपिणि ! हे पतिव्रते ! हमारा अपराध क्षमा करो, अब सब अशुभ कर्म गए। तिहारे प्रेमरूप गुण का प्रेर्या तेरा प्राणनाथ आया। तेरेसे अति प्रसन्न भया तिनकी प्रसन्नताकरि कहा कहा आनंद न होय, जैसे चंद्रमाके योगकरि रात्रिको अति मनोज्ञता होय।

तब अंजनासुन्दरी क्षण एक नीची होय रही अर वसंतमाला प्रहस्तसों कही—हे भद्रे ! मेघ बरसै जब ही भला, तातैं प्राणनाथ इनके महल पधारे सो इनका बड़ा भाग्य अर हमारा पुण्यरूप वृक्ष फल्या। यह बात होय रही हुती ताही समय आनंदके अश्रुपातकरि व्याप्त होय गए हैं नेत्र जिनके सो कुमार पधारे ही, मानों करुणारूप सखी ही प्रीतमकों प्रियाके ढिग ले आई। तब भय-भीत हिरणी के नेत्र-समान सुन्दर हैं नेत्र जाके ऐसी प्रिया पतिकों देख सन्मुख जाय हाथ जोड़ि सीस निवाय पांयनि पड़ी। तब प्राण वल्लभने अपने करतैं सीस उठाय खड़ी करी। अमृत समान वचन कहे कि हे देवी ! क्लेश का सकल खेद निवृत होवै। सुन्दरी हाथ जोड़ि पतिके निकट खड़ी हुती। पति ने अपने करतैं कर पकड़करि सेजपर विठाई, तब नमस्कार कर प्रहस्त तो वाहिर गए अर वसंतमाला हू अपने स्थान जाय बैठी। पवनंजय कुमारने अपने अज्ञानतैं लज्जावान होय सुंदरीसों वारंवार कुशल पूछी अर कही हे प्रिये ! मैंने अशुभ कर्म के उदयतैं जो तिहारा वृथा निरादर किया सो क्षमा करो। तब सुन्दरी नीचा मुखकरि मद मंद वचन कहती भई, हे नाथ ! आपने पराभव कुछ न किया, कर्मका ऐसा ही उदय हुआ।

अब आपने कृपा करी, अति स्नेह जताया सो मेरे सर्व मनोरथ सिद्ध भए। आपके ध्यानकर संयुक्त मेरा हृदय सो आप सदा हृदय ही विषै विराजते, आपका अनादरहू आदर समान भास्या। या भांति अंजना सुन्दरी ने कह्या तब पवनंजयकुमार हाथ जोड़ कहते भए कि हे प्राणप्रिये ! मैं वृथा अपराध किया। पराए दोषतैं तुमको दोष दिया सो तुम सब अपराव हमारा विस्मरण करो। मैं अपना अपराध क्षमावने निमित्त तिहारे पायनि परूं हूं, तुम हम सों अति प्रसन्न होवो, ऐसा कहकर पवनञ्जयकुमारने अधिक स्नेह जनाया तब अंजना सुन्दरी पति का ऐसा स्नेह देखकरि बहुत प्रसन्न भई। अर पति कों प्रियवचन कहती भई, हे नाथ ! मै अति प्रसन्न भई, हम तिहारे चरणारविंदको रज है, हमारा इतना विनय तुमकों उचित नाही ऐसा कहकर सुखसों सेज पर विराजमान किए, प्राणनाथ की कृपाकरि प्रिया का मन अति प्रसन्न भया अर शरीर अतिकांतिको धरता भया, दोनों परस्पर अतिस्नेहके भरे एक चित्त भए। सुखरूप जागृति रहे, निद्रा न लीनी। पिछले पहर अल्प निद्रा आई, प्रभात का

समय होय आया तब यह पतिव्रता सेजसों उतर पति के पायं पलोटने लगी, रात्रि व्यतीत भई, सो सुखमें जानी नाहीं। प्रातः समय चन्द्रमा की किरण फीकी पड़ गई। कुमार आनंद के भार में भर गए अर स्वामी की आज्ञा भूल गए, तब मित्र प्रहस्त ने, कुमार के हितविर्षे है चित्त जाका, ऊंचा शब्द कर वसंतमाला को जगाकर भीतर पठाई अर मंद मंद आपहु सुगंधित महलमें मित्र के समीप गए। अर कहते भए, हे सुन्दर ! उठो, अब कहा सोवो हो ? चन्द्रमा भी तिहारे मुखकी कांतिकरि रहित होय गया है। यह वचन सुनकर पवनंजय प्रबोध को प्राप्त भए। शिथिल है शरीर जिनका, जंभाई लेते, निद्रा के आवेश करि लाल हैं नेत्र जिनके, कानोंको वांए हाथ की तर्जनी अंगुलीसों खुजावते, खुले हैं नेत्र जिनके, दाहिनी भुजा संकोचकरि अरिहंतका नाम लेकर सेजसों उठे, प्राणप्यारी आपके जगनेतैं पहिले ही सेजसों उतरकरि भूमिविर्षे विराजै है, लज्जाकर नम्रीभूत हैं नेत्र जाके, उठते ही प्रीतम की दृष्टि प्रियापर पड़ी। बहुरि प्रहस्तको देखकरि, "आवो मित्र" शब्द कहकर सेजसों उठे। प्रहस्त ने मित्रसों रात्रि की कुशल पूछी, निकट बैठे, मित्र नीतिशास्त्रके वेत्ता कुमारसों कहते भए कि हे मित्र ! अब उठो, प्रियाजी का सन्मान बहुरि आयकर करियो, कोई न जानैं या भांति कटक में जाय पहुँचैं अन्यथा लज्जा है। रथनूपुरका धनी किन्नरगीत नगर का धनी रावण के निकट गया चाहै है सो तिहारी ओर देखै है। जो वे आगैं आवैं तो हम मिलकर चलैं। अर रावण निरंतर मंत्रियोंतैं पूछै है जो पवनंजयकुमारके डेरे कहां हैं अर कब आवेंगे, तातैं अब आप शीघ्र ही रावण के निकट पधारो। प्रियाजीसों विदा मांगो, तुमको पिता की अर रावण की आज्ञा अवश्य करनी है। कुशल क्षेमसों कार्यकर शिताब ही आवेंगे तब प्राणप्रियासों अधिक प्रीति करियो।

तब पवनंजय ने कही, हे मित्र ! ऐसे ही करना। ऐसा कहकर मित्रको तो बाहिर पठाया अर आप प्राणवल्लभासों अतिस्नेहकर उरसों लगाय कहते भए, हे प्रिये ! अब हम जाय हैं, तुम उद्वेग मत करियो, थोड़े ही दिनोंमें स्वामी का कामकर हम आवेंगे, तुम आनंदसों रहियो। तब अजनासुंदरी हाथ जोड़कर कहती भई, हे महाराजकुमार ! मेरा ऋतुसमय है सो गर्भ मोहि अवश्य रहेगा। अर अबतक आपकी कृपा नाहीं हुती, यह सर्व जानैं हैं सो माता पितासों मेरे कल्याण के निमित्त गर्भका वृत्तांत कह जावो। तुम दीर्घदर्शी सब प्राणियोंमें प्रसिद्ध हो। ऐसे जब प्रियाने कह्या तब प्राणवल्लभाकों कहते भए। हे प्यारी ! मैं माता पितासों विदा होय निकस्या सो अब उनके निकट जाना बनै नाहीं, लज्जा उपजै है। लोक मेरी चेष्टा जान हंसेंगे, तातैं जब तक तिहारा

गर्भ प्रकाश न पावै ताके पहिले ही मैं आऊं हूं, तुम चित्त प्रसन्न राखो अर कोई कहै तो ये मेरे नाम की मुद्रिका राखो, हाथों के कड़े राखो, तुमको सब शांति होयगी, ऐसा कहकर मुद्रिका दई अर वसंतमाला को आज्ञा दई इनकी सेवा बहुत नीके करियो, आप सेजसों उठे, प्रिया विषैं लगा रहा है प्रेम जिनका, कैसी है सेज ? संयोग के योगतैं बिखर रहे हैं हार के मुक्ताफल जहां अर पुष्पनिकी सुगंध मकरंदतैं भ्रमै हैं भ्रमर जहां। क्षीरसागर की तरंग समान अति उज्ज्वल बिछे हैं पट जहां, आप उठकर मित्र के सहित विमान पर बैठि आकाशके मार्ग चाले। अंजना सुंदरी ने अमंगल के कारण आंसू न काढे। हे श्रेणिक ! कदाचित् या लोकविषैं उत्तम वस्तु के संयोगतैं किंचित् सुख होय है सो क्षणभगुर है अर देहधारियों के पाप के उदयतैं दु:ख होय है, सुख-दु:ख दोनों विनश्वर हैं, तातैं हर्ष विषाद न करना। हो प्राणी हो ! जीवों को निरंतर सुख का देनहार दु:खरूप अंधकार का दूर करणहारा जिनवर-भाषित धर्म सोई भया सूर्य ताके प्रतापकरि मोह-तिमिर हरहु।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषावचनिका विषैं पवनंजय अंजनाका संयोग वर्णन करने वाला सोलहवां पर्व पूर्ण भया ॥१६॥

[अंजना के गर्भ का प्रगट होना और सासू द्वारा घर से निकाला जाना]

अथानंतर कैयक दिनों विषै महेंद्र की पुत्री जो अंजना ताके गर्भ के चिन्ह प्रगट भए। कछुइक मुख पांडुवर्ण होय गया मानों हनुमान गर्भ मे आया सो तिनका यश ही प्रगट भया है। मंद चाल चलने लगी जैसा मदोन्मत्त दिग्गज विचरै है, स्तन युगल अति उन्नति को प्राप्त भए, श्यामलीभूत है अग्रभाग जिनके, आलसतैं वचन मंद मंद निसरै, भौंहों का कंप होता भया, इन लक्षणनिकरि ताहि सासू गर्भिणी जानकर पूछती भई कि तैंने यह कर्म कौनतैं किया। तब यह हाथ जोड़ प्रणाम कर पति के आवने का समस्त वृत्तांत कहती भई तदि केतुमती सासू क्रोधायमान भई। महा निठुर वाणीरूप पाषाण कर पीडती भई अर कहा हे पापिनि ! मेरा पुत्र तेरेतैं अति विरक्त, तेरा आकार भी न देख्या चाहै, तेरे शब्द को श्रवणविषै धारै नाहीं, माता-पितासों विदा होयकर रणसं

ग्राम को बाहिर निकस्या, वह धीर कैसैं तेरे मंदिरमें आवैं. हे निर्लज्ज ! धिक्कार है तुझ पापनकों। चंद्रमाकी किरण समान उज्जवल वंशकों दूषण लगावनहारी, यह दोनों लोक मैं निंद्य अशुभक्रिया तैनें आचरी अर तेरी यह सखी वसंतमाला याने तोहि ऐसी बुद्धि दीनी, कुलटाके पास वेश्या रहै तव काहेकी कुशल ? मुद्रिका अर कड़े दिखाए तो भी ताने न मानी, अत्यंत कोप किया। एक क्रूर नामा किंकर बुलाया। वह नमस्कार कर आय ठाड़ा भया। तब क्रोध कर केतुमतीने लाल नेत्र कर कहा, हे क्रूर ! सखी सहित याहि गाड़ी में बैठाय महेंद्रनगरके निकट छोड़ आवो। तब क्रूर केतुमती की आज्ञातैं सखी सहित अंजना कों गाड़ी में बैठाकर महेंद्रनगर की ओर ले चल्या। कैसी है अंजना सुन्दरी ? अति कांपै है शरीर जाका, महा पवनकर उपड़ी जो बेल ता समान, निराश्रय, अति आकुल कांतिरहित दुःखरूप अग्निकर जल गया है हृदय जाका, भयंकर सासूकों कछु उत्तर न दिया, सखीकी ओर धरे हैं नेत्र जानै, मनकर अपने अशुभ कर्मको वारंवार निंदती अश्रुधारा नाखती, निश्चल नहीं है चित जाका, सो क्रूर इनको लेय चाल्या सो क्रूरकर्मविषैं अति प्रवीण है। दिवसके अंतमें महेंद्रनगरके समीप पहुंचाय कर नमस्कार कर मधुर वचन कहता भया। हे देवी ! मैं अपनी स्वामिनी की आज्ञातैं तुमको दुःख का कारण कार्य किया, सो क्षमा करहु। ऐसा कहकर सखी सहित सुन्दरीकूं गाड़ीतैं उतार विदा होय गाड़ी लेय स्वामिनीपै गया। जाय विनती करी—आपकी आज्ञा प्रमाण तिनकूं तहां पहुंजाय आया हूं।

अथानंतर महा उत्तम महा पतिव्रता जो अंजनासुन्दरी ताहि पतिके योगतैं दुःख के भारतैं पीड़ित देख सूर्य भी मानो चिंताकर मंद होय गया अर रुदनकर अत्यंत लाल होय गए हैं नेत्र जाके, ऐसी अंजना सो मानो याके नेत्र की अरुणता कर पश्चिमदिशा रक्त होय गई, अंधकार फैल गया, रात्रि भई, अंजना के दुःखतैं निकसी जो आंसून की धारा तेई भए मेघ तिनकर मानों दसों दिशा श्याम होय गई अर पंछी कोलाहल शब्द करते भए सो मानों अंजनाके दुःखतैं दुःखी भए पुकारैं हैं। वह अंजना अपवादरूप महादुःख का जो सागर तामें डूबी क्षुधादिक दुःख भूल गई अत्यंत भयभीत अश्रुपात नाखैं, रुदन करै, सो वसंतमाला सखी धैर्य बंधावैं, रात्री को पल्लव का सांथर विछाय दिया सो याकों निद्रा रंच भी न आई। निरंतर उष्ण अश्रुपात पड़ैं सो मानों दाहके भयतैं निद्रा भाज गई, वसंतमाला पांव दावै, खेद दूर किया, दिलासा करी, दुःखके योगकर एक रात्री वर्ष बराबर बीती। प्रभात में सांथरेको तजकर नाना संकल्प विकल्पनिके सैंकड़ानि शंका करि अति विह्वल पिता के घर की

ओर चाली। सखी छाया समान संग चाली। पिता के मन्दिर के द्वार जाय पहुँची। भीतर प्रवेश करती द्वारपाल ने रोकी, दुःख के योगतैं और ही रूप होय गया सो जानी न पड़ी। तब सखी ने सब वृतांत कह्या सो जानकर शिलाकवाट नामा द्वारपाल ने एक और मनुष्य कों द्वारे मेलि आप राजा के निकट जाय नमस्कार करि विनती करी। पुत्री के आगमन का वृत्तान्त कह्या।

तब राजा के निकट प्रसन्नकीर्ति नामा पुत्र बैठ्या हुता सो राजा ने पुत्र को आज्ञा करी—तुम सुम्मुख जाय उसका शीघ्र ही प्रवेश करावो तुम तो पहिले जावो और हमारी असवारी तैयार करावों, हम भी पीछेतैं आवैं हैं, तदि द्वारपालने हाथ जोड़कर नमस्कार कर यथार्थ विनती करी। तब राजा महेंद्र लज्जाका कारण सुनकर महा कोपवान भए। अर पुत्रकों आज्ञा करी कि पापिनीकूं नगरमें तैं काढ़ देवो, जाकी वार्ता सुनकर मेरे कान मानो वज्र कर हते गए हैं। तब एक महोत्साह नामा बड़ा सामत, राजा का अतिवल्लभ, सो कहता भया, हे नाथ! ऐसी आज्ञा करनी उचित नहीं, वसंतमालासौं सब ठीक पाड़ लेहु। सासू केतुमती अति क्रूर है अर जिनधर्मतैं परान्मुख है। लौकिकसूत्र जो नास्तिकमत ताविषै प्रवीण है तातैं विना विचार्या झूठा दोष लगाया। यह धर्मात्मा श्रावकके व्रतकी धरणहारी, कल्याण आचार विषै तत्पर पापिनी सासू ने निकासी है अर तुम भी निकासो तो कौनके शरणैं जाय, जैसैं व्याघ्रकी दृष्टितैं मृगी त्रासको प्राप्त भई संती महा गहन वनका शरण लेय, तैसैं यह भोली निष्कपट सासूतैं शंकित भई तुम्हारे शरण आई है, मानों जेठके सूर्य की किरण के संतापतैं दुःखित भई महावृक्षरूप जो तुम सो तिहारे आश्रय आई है। यह गरीबिनी, विह्वल है आत्मा जाका अपवादरूप जो आताप ताकर पीड़ित तिहारे आश्रय भी साता न पावै तो कहाँ पावै? मानों स्वर्ग तैं लक्ष्मी ही आई है। द्वारपाल ने रोकी सो अत्यंत लज्जा कों प्राप्त भई। विलखि करि माथा ढांकि द्वारै खड़ी है, आपके स्नेह कर सदा लाडली है, सो तुम दया करो, यह निर्दोष है, मंदिर मांहि प्रवेश करावो अर केतुमती की क्रूरता पृथ्वी विषै प्रसिद्ध है। ऐसे न्याय रूप वचन महोत्साह सामंत ने कहे, सो राजा कान न धरै, जैसैं कमलोंके पत्रनिविषैं जलकी बूंद न ठहरै तैसैं राजा के चित्त में यह वात न ठहरी।

राजा सामंत सो कहते भए कि यह सखी वसंतमाला सदा याके पास रहै अर याही के स्नेह के योगतैं कदाचित् सत्य न कहै तो हमको निश्चय कैसैं आवै, यातैं याके शील विषै संदेह है, सो याकों नगरतैं निकास देहु। जब यह

बात प्रसिद्ध होयगी तो हमारे निर्मल कुल विषैं कलंक आवेगा। जे बड़े कुलकी बालिका निर्मल हैं अर महा विनयवंती उत्तम चेष्टाकी धरणहारी हैं ते पीहर सासुरै सर्वत्र स्तुति करने योग्य हैं। जे पुण्याधिकारी वड़े पुरुष जन्म ही तैं निर्मल शील पालैं हैं, ब्रह्मचर्य को धारण करै हैं अर सर्व दोष का मूल जो स्त्री तिनकों अंगीकर नाहीं करैं हैं ते धन्य हैं। ब्रह्मचर्य समान और कोई व्रत नाहीं अर स्त्री के अंगीकार में यह सफल नाहीं होय है। जो कुपूत बेटा बेटी होय अर उनके अवगुण पृथ्वी विषैं प्रसिद्ध होंय तो पिताका धरतीमें गड़ जाना होय है। सब ही कुल कों लज्जा उपजै है, मेरा मन आज अति दुःखित होय रह्या है, मैं यह बात पूर्व अनेक बार सुनी हुती जो यह भरतार के अप्रिय है अर वह याहि आंखतैं नाहीं देखै है, सो ताकरि गर्मकी उत्पत्ति कैसैं भई, तातैं यह निश्चय सेती सदोष है। जो कोई याहि मेरे राज्य में राखेगा सो मेरा शत्रु है। ऐसे वचन कहकर राजा ने कोपकर जैसैं कोई जानै नाहीं या भांति याकों द्वारतैं निकाल दीनी।

सखी सहित दुःखकी भरी अंजना राजाके निज वर्ग के जहां जहां आश्रय के अर्थि गई, सो आने न दीनी, कपाट दिए। जहां बाप ही क्रोधायमान होय निराकरण करै, तहां कुटुम्ब की कैसी आशा, वे तो सब राजा के अधीन हैं। ऐसा निश्चयकर सबतैं उदास हो सखीसौं कहती भई। आंसूवों के समूहकर भीज गया है अंग जाका, हे प्रिये! यहां सर्व पाषाण चित्त हैं, यहां कैसा वास? तातैं वन में चालैं, अपमानतैं तो मरना भला। ऐसा कहकर सखी सहित वन को चाली, मानों मृगराजतैं भयभीत मृगी ही है। शीत उष्ण अर वात के खेदकरि पीड़ित वन में बैठि महा रुदन करती भई। हाय हाय! मैं मंदभागिनी दुःखदाई जो पूर्वोपार्जित कर्म ताकरि महाकष्टकों प्राप्त भई। कौनके शरण जाऊं? कौन मेरी रक्षा करै। मैं दुर्भाग्य सागरके मध्य कौन कर्मतैं पड़ी। नाथ! मेरा अशुभ कर्मका प्रेर्या कहांतैं आया? काहेको गर्भ रह्या, मेरा दोनों ही ठौर निरादर भया। माता ने भी मेरी रक्षा न करी, सो वह कहा करै। अपने धनी की आज्ञाकारिणी पतिव्रतानिका यही धर्म है। अर नाथ मेरा यह वचन कह गया हुता कि तेरे गर्भकी वृद्धितैं पहिले ही मैं आऊंगा सो हाय वह वचन क्यों भूले? अर सासू ने बिना परखे मेरा त्याग क्यों किया? जिनके शील में संदेह होय तिनके परखने के अनेक उपाय हैं अर पिताकों मैं बाल-अवस्था विषैं अति लाड़ली हुती, निरंतर गोदमें खिलावते हुते सो बिना परखे मेरा निरादर किया, इनको ऐसी बुद्धि क्यों उपजी? अर माताने मुझे गर्भमें धारी, प्रतिपाल किया, अब एक बात भी मुखतैं न निकाली कि इसके गुण दोष का निश्चय कर लेवैं।

अर भाई जो एक माताके उदरमों उत्पन्न भया हुता, सोहू मो दुःखिनी को न राख सक्या, सब ही कठोर चित्त होय गए। जहां माता पिता भ्राता ही की यह दशा, तहां काका बाबा के दूर भाई तथा प्रधान सामंत कहा करै अथवा उन सबका कहा दोष ? मेरा जो कर्मरूप वृक्ष फल्या सो अवश्य भोगना । या भांति अंजना विलाप करै सो सखी भी याके लार विलाप करै । मनतै धैर्य जाता रह्या, अत्यंत दीन मन होय ऊंचे स्वरतै रुदन करै सो मृगी भी याकी दशा देख आंसू डालवे लागी । बहुत देरतक रोनेतै लाल होय गए हैं नेत्र जाके तब सखी बसंतमाला महाविचक्षण याहि छातीसूं लगाय कहती भई–हे स्वामिनि ! बहुत रोनेतैं क्या लाभ ? जो कर्म तैंने उपार्ज्या है सो अवश्य भोगना है, सब ही जीवनिके कर्म आगैं पीछै लग रहे है सो कर्मके उदयविषै शोक कहा ? हे देवी ! जो स्वर्ग लोक के देव सैंकड़ो अप्सराओं के नेत्रनिकर निरंतर अवलोकिए है, तेहू सुकृतके अंत होते परम दुःख पावै है । मनमे चिंतए कछू और, होय जाय कछु और ।

जगतके लोक उद्यम मे प्रवर्तै है तिनकों पूर्वोपार्जित कर्मका उदय ही कारण है । जो हितकारी वस्तु आय प्राप्त भई सो अशुभकर्म के उदयतै विघटि जाय । अर जो वस्तु मनतै अगोचर है सो आय मिलै । कर्मनिकी गति विचित्र है तातैं हे देवी ! तू गर्भके खेदकरि पीडित है, वृथा क्लेश मत कर, तू अपना मन दृढ़ कर । जो तैंने पूर्व जन्म मे कर्म उपार्जे है तिनके फल टारे न टरै । अर तू तो महा बुद्धिमती है तोहि कहा सिखाऊं । जो तू न जानती होय तो मैं कहूं, ऐसा कहकर याके नेत्रनिके आंसू अपने वस्त्रतैं पोंछे । बहुरि कहती भई–हे देवी ! यह स्थानक आश्रय रहित है, तातैं उठो, आगै चालै, या पहाड के निकट कोई गुफा होय जहां दुष्ट जीवनिका प्रवेश न होय, तेरे प्रसूतिका समय आया है सो कईएक दिन यत्नसूं रहना । तब यह गर्भके भारतै जो आकाशके मार्ग चलनेमें हू असमर्थ है तो भूमिपर सखीके संग गमन करती महा कष्टकरि पाव धरती भई । कैसी है वनी ? अनेक अजगरनितैं भारी, दुष्ट जीवनिके नादकरि अत्यंत भयानक, अति सघन, नाना प्रकार के वृक्षनिकरि सूर्यकी किरणका भी संचार नाही, जहां सूईके अग्रभाग समान डाभकी अणी अति तीक्ष्ण, जहां कंकर बहुत अर माते हाथीनिके समूह अर भीलो के समूह बहुत है अर वनी का नाम मातंगमालिनी है, जहा मनकी भी गम्यता नाहीं तो तनकी कहा गम्यता ? सखी आकाशमार्गतैं जायवेको समर्थ अर यह गर्भ के भारकरि समर्थ नाहीं तातैं सखी याके प्रेम के बंधनसों बंधी शरीरकी छाया समान लार लार चालै है । अंजना वनी को अति भयानक देखकर कांपै है, दिशा भूल गई ।

तब वसंतमाला याकों अति व्याकुल जानि हाथ पकड़ि कहती भई, हे स्वामिनि ! तू डरै मत, मेरे पीछै पीछै चली आवो।

तब यह सखीके कांधे हाथ मेलि चली जाय, ज्यों ज्यों डाभ की अणी चुभैं त्यों त्यों अति खेदखिन्न होय, विलाप करती, देहकों कष्टतैं धारती, जलके नीभरने जे अति तीव्र वेग संयुक्त वहैं तिनकों अति कष्टतैं पार उतरती, अपने जे सब स्वजन अति निर्दई तिनका नाम चितार अपने अशुभ कर्मकों बारंबार निंदती, बेलों को पकड़ भयभीत हिरणी कैसे हैं नेत्र जाके, अंगनिथैं पसेव को धरती, कांटों से वस्त्र लगि जांय सो छुड़ावती, लहूतैं लाल होय गए हैं चरण जाके, शोकरूप अग्निके दाहकरि श्याम ताकों धरती, पत्र भी हालै तो त्रासकों प्राप्त होती, चलायमान है शरीर जाका, बारंबार विश्राम लेती, ताहि सखी निरंतर प्रिय वाक्य कर धैर्य बंधावै, सो धीरे धीरे अंजना पहाड़ीकी तलहटी आई, तहां आंसू भर करि बैठ गई। सखीसों कहती भई अब मुझमें एक पग धरने की शक्ति नाहीं, यहां ही रहूँगी, मरण होय तो होय। तब सखी अत्यंत प्रेमकी भरी महा प्रवीण मनोहर वचननिकरि याकों शांति उपजाय नमस्कार-करि कहती भई--हे देवी ! यह गुफा नजदीक ही है, कृपाकर इहांतैं उठकर वहां सुखसों तिष्ठो, यहां क्रूर जीव विचरैं हैं, तोकों गर्भकी रक्षा करनी है, तातैं हठ मतिकर।

ऐसा कह्या तब वह आताप की भरी सखी के वचनकरि अर सघन वनके भयकरि चलवेको उठी, तब सखी हस्तावलंबन देयकर याकों विषमभूमितैं निकासकर गुफाके द्वारपर लेय गई। विना विचारे गुफामें बैठने का भय होय सो ये दोनों बाहिर खड़ी विषम पाषाण के उलंघवे कर उपज्या है खेद जिनको तातैं बैठ गई। तहां दृष्टि धर देख्या। कैसी है दृष्टि ? श्याम श्वेत आरक्त कमल समान प्रभाकों धरै से एक पवित्र शिलापर विराजे चारणमुनि देखे। पर्यंकासन धरे अनेक ऋद्धि संयुक्त निश्चल हैं श्वासोच्छ्वास जिनके, नासिकाके अग्र भागपर धरी है सरल दृष्टि जिनने, शरीर स्तंभ समान निश्चल है, गोदपर धर्‌या जो बांमा हाथ ताके ऊपर दाहिना हाथ, समुद्र समान गंभीर, अनेक उपमा सहित विराजमान आत्मस्वरूप का जो यथार्थ स्वभाव जैसा निजशासन-विषैं गाया है तैसा ध्यान करते, समस्त परिग्रह रहित पवन जैसैं असंगी, आकाश जैसैं निर्मल, मानों पहाड़के शिखर ही हैं सो इन दोनों ने देखे। कैसे हैं वे साधु ? महापराक्रम के धारी, महाशांत ज्योतिरूप है शरीर जिनका। ये दोनों मुनि के समीप गई। सर्व दुःख विस्मरण भया। तीन प्रदक्षिणा देय हाथ

जोडि नमस्कार किया, मुनि परम बाँधव पाए, फूल गए है नेत्र जिनके, जा समय जो प्राप्ति होनी होय सो ये दोनो हाथ जोड विनती करती भई मुनिके चरणारविंदकी ओर धरे है अश्रुपातरहित स्थिर नेत्र जिनने। हे भगवान्! हे कल्याणरूप हे उत्तम चेष्टा के धरणहारे। तिहारे शरीरमे कुशल है। कैसा है तिहारा देह? सब तपव्रत आदि साधनेका मूलकारण है। हे गुणनि के सागर! ऊपरा ऊपर तपकी है वृद्धि जिनके, हे महाक्षमावान! शातभावके धारी! मन इन्द्रियोके जीतनहारे! तिहारा जो विहार है सो जीवनिके कल्याणनिमित्त है, तुम सारिखे पुरुष सकल पुरुषनिको कुशलके कारण हैं सो तिहारी कुशल कहा पूछनी परतु यह पूछन का आचार है तातै पूछी है, ऐसा कहि विनयतै नम्रीभूत भया है शरीर जिनका सो चुप हो रही अर मुनि के दर्शनतै सर्व भय रहित भई।

अथानंतर मुनि अमृततुल्य परमशाति के वचन कहते भये--हे कल्याण-रूपिणि! हे पुत्री! हमारे कर्मानुसार सब कुशल है। ये सर्वही जीव अपने कर्मोका फल भोगवै है। देखो कर्मनिकी विचित्रता, यह राजा महेद्र की पुत्री अपराध रहित कुटुम्बके लोगनिन काढी है। सो मुनि बडे ज्ञानी, बिना कहे सब वृतात के जाननहारे तिनको नमस्कार कर वसतमाला पूछती भई--हे नाथ! कौन कारणतै भरतार यासो बहुत दिन उदास रहे? बहुरि कौन कारण अनुरागी भए अर यह महासुखयोग्य वन विषै कौन कारणतै दु खको प्राप्त भई? मदभागी कौन याके गर्भ मे आया जाकरि याको जीवने का सशय भया। तदि स्वामी अमितिगति तीन ज्ञान के धारक सर्व वृत्तात यथार्थ कहते भए। यही महा पुरुषो की वृत्ति है जो पराया उपकार करै। मुनि वसतमाला सो कहै है--हे पुत्री! याके गर्भविषै उत्तम बालक आया है, सो प्रथम तो ताके भव सुनि। बहुरि जो पूर्व भव मे पापका आचरण किया जा कारणतै यह अजना ऐसे दु खको प्राप्त भई, सो सुन।

× × × × ×

[राम लक्ष्मण का वन गमन और भरत का राज्याभिषेक]

अथानतर राम लक्ष्मण क्षण एक निद्रा कर अर्धरात्रि के समय जब मनुष्य सोय रहे, लोकनिका शब्द मिट गया अर अ धकार फैल गया ता समय भगवानकू नमस्कार कर बखतर पहिर धनुप बाण लेय सीताकू बीच मे लेकर चाले घर घर दीपकनिका उद्योत होय रहा है कामीजन अनेक चेष्टा करै है।

३२वा पर्व

ये दोऊ भाई महाप्रवीण नगरके द्वारकी खिड़कीकी ओरसे निकसि दक्षिण दिशा का पंथ लिया। रात्रि के अन्त में दौड़कर सामंत लोक आय मिले। राघव के संग चलने की है अभिलाषा जिनके, इन्हें राम लक्ष्मणकूं देख महा विनय के भरे असवारी छोड़ प्यादे आए, चरणारविंदकों नमस्कारकरि निकट आय वचनालाप करते भए। बहुत सेना आई अर जानकी की बहुत प्रशंसा करते भए जो याके प्रसादतें हम राम लक्ष्मणसूं आय मिले; यह न होती तो ये धीरे धीरे न चलते अर हम कैसे पहुंचते ? ये दोऊ भाई पवन-समान शीघ्रगामी हैं अर यह सीता महासती हमारी माता है, या समान प्रशंसा योग्य पृथ्वी विषैं और नाहीं। ये दोऊ भाई नरोत्तम सीताकी चाल प्रमाण मंद मंद दो कोस चाले।

क्षेत्रनिविषैं नाना प्रकारके अन्न हरे होय रहे हैं अर सरोवरनिमें कमल फूल रहे हैं अर वृक्ष महारमणीक दीखें हैं। अनेक ग्राम नगरादि में ठौर ठौर भोजनादि सामग्री करि लोक पूजैं हैं। अर बड़े बड़े राजा बड़ी फौजसे आय मिले जैसें वर्षा कालमें गंगा जमुना के प्रवाह विषैं अनेक नदियनिके प्रवाह आय मिलैं। कैइक सामंत मार्ग के खेद करि इनका निश्चय जान आज्ञा पाय पीछे गए। अर कैइक लज्जाकर, कैइक भयकर, कैइक भक्ति कर लार प्यादे चले जाय हैं सो राम लक्ष्मण क्रीड़ा करते परियात्रा नामा अटवी विषैं पहुंचे। कैसी है अटवी ! नाहर अर हाथीनिके समूहनिकर भरी, महा भयानक वृक्षनिकर रात्रि समान अंधकार की भरी, जाके मध्य नदी है ताके तट आए, जहां भीलनिका निवास है, नाना प्रकारके मिष्ट फल हैं। आप तहां तिष्ट कर कैएक राजनिकों विदा किया अर कैएक पीछे न फिरे, राम ने बहुत कहा तो भी संग ही चाले सो सकल नदीको महा भयानक देखते भए। कैसी है नदी ? पर्वतनिसों निकसती महानील है जल जाका, प्रचंड हैं लहर जामें, महा शब्दायमान अनेक जे ग्राह मगर तिनकर भरी दोऊ ढाहां विदारती, कल्लोलनिके भयकर उड़े हैं तीरके पक्षी जहां, ऐसी नदीको देखकर सकल सामंत त्रासकर कंपायमान होय राम लक्ष्मणकूं कहते भए कि हे नाथ ! कृपाकर हमें भी पार उतारहु। हम सेवक भक्तिवंत हमसे प्रसन्न होवो। हे माता जानकी लक्ष्मणसे कहो जो हमकूं पार उतारैं या भांति आंसू डारते अनेक नरपति नाना चेष्टा के करणहारे नदी विषैं पड़ने लगे। तब राम बोले, अहो अब तुम पाछे फिरो।

यह वन महा भयानक है, हमारा तुम्हारा यहां लग ही संग हुता, पिताने भरतकूं सबका स्वामी किया है सो तुम भक्तिकर तिनकूं सेवहु। तब वे कहते भए, हे नाथ ! हमारे स्वामी तुम ही हो, महादयावान हो, हमपर प्रसन्न

होवो, हमको मत छोड़हु, तुम विना यह प्रजा निराश्रय भई, आकुलतारूप कहो कौनकी शरण जांय ? तुम समान और कौन है ? व्याघ्र सिंह अर गजेंद्र सर्पादिकका भरा भयानक जो यह वन तामें तुम्हारे संग रहेंगे। तुम बिन हमारे स्वर्ग हू सुखकारी नाहीं। तुम कहीं पाछे जावो सो चित्त फिरै नाहीं, कैसे जाहि ? यह चित्त सब इंद्रियनिका अधिपति याहीतैं कहिएहैं जो यह अद्भुत वस्तु में अनुराग करै। हमारे भोगनिकर घरकर तथा स्त्री कुटुम्ब्यादिकर कहा ? तुम नररत्न हो, तुमको छोड़ कहां जाहिं ? हे प्रभो ! तुमने बालक्रीडा विषैं हमसों कबहू वचना न करी, अब अत्यंत निठुरताकूं धारी हो। हमारा अपराध कहो। तिहोरे चरण रज कर परम वृद्धिकूं प्राप्त भए, तुम तो भृत्य–वत्सल हो। अहो माता जानकी ! अहो लक्ष्मण धीर ! हम शीश नवाय हाथ जोड़ विनती करैं, नाथकूं हम पर प्रसन्न करहु। ये वचन सवनिने कहे, तब सीता अर लक्ष्मण रामके चरणनिकी ओर निरख रहे। तब राम बोले–जाहु, यही उत्तर है। सुखसों रहियो, ऐसा कहकर दोनो धीर नदी के विषैं प्रवेश करते भए।

श्रीराम सीता का कर गह सुखसे नदीमे लेगए जैसे कमलिनीको दिग्गज ले जाय। वह असराल नदी राम लक्ष्मणके प्रभावकर नाभि–प्रमाण वहने लगी, दोऊ भाई जलविहार विषै प्रवीण क्रीडा करते चले गए। राम के हाथ गहे ऐसी शोभै मानों साक्षात लक्ष्मी ही कमलदल में तिष्ठी है राम लक्ष्मण क्षणमात्र विषै नदी पार भए वृक्षनिके आश्रय आय गए। तब लोकनिकी दृष्टितैं अगोचर भए। तव कई एक तो विलाप करते आसूं डारते घरनिकूं गए अर कई एक राम लक्ष्मण की ओर धरी है दृष्टि जिनने सो काष्ठ से होय रहे अर कई एक मूर्च्छा खाय धरतीपर पड़े अर कई एक ज्ञान को प्राप्त होय जिनदीक्षा-को उद्यम भए, परस्पर कहते भए–जो धिक्कार है या असार संसार को अर धिक्कार इन क्षणभंगुर भोगनिको ! ये काले नाग के फण समान भयानक हैं। ऐसे शूरवीरनिकी यह अवस्था तो हमारी कहा बात ? या शरीरको धिक्कार ! जो पानीके बुदबुदा समान निस्सार, जरा मरण इष्टवियोग अनिष्टसयोग इत्यादि कष्ट का भाजन है। धन्य हैं वे महापुरुष भाग्यवत उत्तम चेष्टाके धारक ! जे मरकट (बन्दर) की भौंह समान लक्ष्मी को चचल जान तजिकर दीक्षा धरते भए। या भांति अनेक राजा विरक्त होय दीक्षा को सन्मुख भए। तिनने एक पहाड़ीकी तलहटी मे सुन्दर वन देख्या, अनेक वृक्षनिकर मंडित महासघन, नानाप्रकार के पुष्पनिकर शोभित, जहां सुगंध के लोलुपी भ्रमर गुंजार करै है तहां महापवित्र स्थानक मे तिष्ठते ध्यानाध्ययनविषै तीन महातप

के धारक साधु देखे । तिनको नमस्कार कर वे राजा जिननाथ का जो चैत्यालय तहां गए । ता समय पहाड़निके शिखर विषैं अथवा रमणीक वन विषैं अथवा नदीनके तट विषैं अथवा नगर ग्रामादिक विषैं जिन मंदिर हुते तहां नमस्कार करि एक समुद्र समान गम्भीर मुनिनके गुरु सत्यकेतु आचार्य तिनके निकट गए, नमस्कार कर महाशांत रस के भरे आचार्य से वीनती करते भए—हे नाथ ! हमको संसार समुद्रतैं पार उतारहु । तब मुनि कही–तुमको भव–पार उतारनहारी भगवती दीक्षा है सो अंगीकार करहु । मुनि की यह आज्ञा पाय ये परम हर्षकूं प्राप्त भए ।

राजा विदग्धविजय मेरुकूर संग्रामलोलुप, श्रीनागदमन, धीर शत्रुदमन अर विनोद कंटक, सत्यकठोर, प्रियवर्धन इत्यादि निर्ग्रंथ होते भए, तिनका गज तुरंग रथादि सकल साज सेवक लोकनि ने जाय करि उनके पुत्रादिकनिकूं सौंप्या, तब वे बहुत चिंतावान भए । बहुरि समभकर नाना प्रकार के नियम धारते भए । *कैयक सम्यग्दर्शन कूं अंगीकार कर संतोषकूं प्राप्त भए,* कैयक निर्मल जिनेश्वरदेव का धर्म श्रवणकरि पापतैं परान्मुख भए । बहुत सामंत राम लक्ष्मणकी वार्ता सुन साधु भए, कैयक श्रावक के अणुव्रत धारते भए । बहुत रानी आर्यिका भई, बहुत श्राविका भई, कैयक सुभट राम का सर्व वृत्तांत भरत दशरथ पर जाकर कहते भए सो सुनकर दशरथ अर भरत कछुयक खेदकूं प्राप्त भए ।

अथानंतर राजा दशरथ भरतको राज्याभिषेक कर, कछुयक जो राम के वियोग कर व्याकुल भया हुता हृदय सो समता लाय, विलाप करता जो अंतःपुर ताहि प्रतिबोधि नगरतैं वनकूं गए । सर्वभूतहित स्वामी को प्रणामकरि बहुत नृपनि सहित जिनदीक्षा आदरी । एकाकी विहारी जिनकल्पी भए । परम शुक्लध्यान की है अभिलाषा जिनके तथापि पुत्र के शोक कर कबहूं कछु इक कलुषता उपज आवै सो एक दिन ये विचक्षण विचारते भए कि संसार के दुःख का मूल जगतका स्नेह है, इसे धिक्कार हो ! या करि कर्म बंधैं हैं । मैं अनन्त जन्म धरे तिनविषैं गर्भ–जन्म के अनेक माता–पिता भाई पुत्र कहां गए ? अनेक वार में देवलोकके भोग भोगे । अर अनेक वार नरक के दुःख भोगे, तिर्यंच गति विषै मेरा शरीर अनेक वार इन जीवनिमें भख्या, इनका मैं भख्या; नाना रूप ये योनियां तिन विषैं मैं बहुत दुःख भोगे । अर बहुतवार रुदनके शब्द सुने । अर बहुत बार वीणाबांसुरी आदि वादित्रों के नाद सुने, गीतसुने, नृत्य देखे, देवलोकविषै मनोहर अप्सरानिके भोग भोगे । अनेक वार मेरा शरीर नरकविषैं

कुल्हाडनिकर काटा गया। अर अनेक वार मनुष्यगतिविषै महासुगन्ध महावीर्य करणहारा षट्रस सयुक्त अन्न आहार किया। अर अनेक वार नरकविषे गला हुआ सीसा अर तांवा नारकियोंने मार मार मुझे प्याया। अर अनेक वार सुर नर गतिविषै मनके हरणहारे सुन्दर रूप देखे अर सुन्दर रूप धारे। अर अनेक वार नरक विषै महा कुरूप धारे। अर नाना प्रकार के त्रास देखे। कैयक वार राजपद देवपदविषै नाना प्रकारके सुगन्ध सूंघे तिनपर भ्रमर गुंजार करैं। अर कैयक वार नरककी महा दुर्गन्ध सूंघी। अर अनेक वार मनुष्य तथा देवगति-विषै महालीला की धरणहारी, वस्त्राभरण मंडित, मन की चोरनहारी जे नारी तिनसो आलिंगन किया। अर बहुत वार नरकविषै कूटशाल्मलि वृक्ष तिनके तीक्ष्ण कंटक अर प्रज्वलिती लोह की पुतलीनि से स्पर्श किया? या ससार विष कर्मनिके सयोगतैं मैं कहा कहा न सूंघा, कहा कहा न सुना, कहा कहा न भखा। अर पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय विषै ऐसा देह नाही जो मैं न धरा। तीनलोकविषै ऐसा जीव नाही जासू मेरे अनेक नाते न भए, ये पुत्र मेरे कई वार पिता भए, माता भए, शत्रु भए। ऐसा स्थानक नाहीं, जहा मैं न उपजा, न मूआ।

ये देह भोगादिक अनित्य, या जगतविषै कोई शरण नाही। यह चतुर्गति-रूप ससार दुखका निवास है, मैं सदा अकेला हूँ। ये पट्द्रव्य परस्पर सब ही भिन्न हैं, यह काय अशुचि, मैं पवित्र, ये मिथ्यात्वादि अव्रतादि कर्म आस्रव के कारण ह, सम्यक्त व्रत सयमादि सवर के कारण हैं। तपकर निर्जरा होय है। यह लोक नानरूप मेरे स्वरूप्तै भिन्न, या जगत विषै आत्मज्ञान दुर्लभ है अर वस्तु का जो स्वभाव सोई धर्म तथा जीव धर्म सो मैं महाभाग्यतै पाया। धन्य ये मुनि जिनके उपदेशतै मोक्षमार्ग पाया सो अब पुत्रनिकी कहा चिंता? ऐसा विचार कर दशरथ मुनि निर्मोह दशाकूं प्राप्त भए। जिन देशो मे पहिले हाथी चढे, चमर ढुरते, छत्र फिरते हुते अर महारण सग्राम विषै उद्धत वैरि निकू जीते हेतु तिन देशनिविषै निर्ग्रन्थ दशा धरे, वाईस परीषह जीतते, शांति-भाव सयुक्त विहार करते भए।

अर कौशल्या तथा सुमित्रा पति के वैरागी भए अर पुत्रनिके विदेश गए महा शोकवती भई, निरतर अश्रुपात डारै, तिनके दुखकू देख भरत राज्य विभूति को विष समान मानता भया। अर केकई तिनकू दुखी देख, उपजी है करुणा जाके, पुत्रको कहती भई कि हे पुत्र! तू राज्य पाया, बडे बडे राजा सेवा करै है परन्तु राम लक्ष्मण बिना यह राज्य शोभै नाही सो वे दोऊ भाई

महाविनयवान उन बिना कहा राज्य अर कहा सुख अर कहा देश की शोभा अर कहा तेरी धर्मज्ञता ? वे दोऊ कुमार अर वह सीता राजपुत्री सदा सुख के भोगनहारे पाषाणादिककर पूरित जे मार्ग ताविषैं वाहन विना कैसैं आवेंगे ? अर तिन गुण-समुद्रनिकी ये दोनों माता निरन्तर रुदन करै हैं सो मरणकूं प्राप्त होंयगीं, तातैं तुम शीघ्रगामी तुरंग पर चढ़ शिताबी जावो, उनको ले आवो, तिन सहित महासुखसों चिरकाल राज करियो अर मैं भी तेरे पीछे ही उनके पास आऊं हूं। यह माता की आज्ञा सुन बहुत प्रसन्न होय ताकी प्रशंसा कर अति आतुर भरत हजार अश्वसहित राम के निकट चला। अर जे रामके समीप वापिस आए हुते तिनकूं संग ले चला आप तेज तुरंग पर चढ़ा, उतावली चालसे वन विषैं आया। वह नदी असराल वहती हुती सो तामें वृक्षनिके लठे गेर, वेड़े बांध क्षणमात्र में सेना सहित पार उतरे, मार्ग विषैं नर नारिनसों पूछते जाय जो तुम राम लक्ष्मण कहीं देखे ? वे कहै हैं, यहांते निकट ही हैं। सो भरत एकाग्रचित्त चले गए। सघन वनमें एक सरोवर के तट पर दोऊ भाई सीता सहित बैठे देखे, समीप हैं धनुष वाण जिनके। सीताके साथ ते दोऊ भाई घने दिवसविषैं आए। अर भरत छह दिनमें आया। रामकूं दूरते देख भरत तुरंगतैं उतर पाय पियादा जाय राम के पांयनि पर मूर्च्छित होय गया तब राम सचेत किया। भरत हाथ जोड़ सिर नवाय रामसूं वीनती करता भया।

हे नाथ ! राज्य देयवेकर मेरी कहा विडम्बना करी। तुम सर्व न्याय-मार्गके जाननहारे, महा प्रवीण मेरे या राज्यकरि कहा प्रयोजन ? तुम विना जीवेकर कहा प्रयोजन ? तुम महा उत्तम चेष्टाके धरणहारे मेरे प्राणनिके आधार हो। उठो, अपने नगर चलैं। हे प्रभो ! मो पर कृपा करहु, राज्य तुम करहु, राज्य योग्य तुम ही हो, मोहि सुखकी अवस्था देहु। मैं तिहारे सिर पर छत्र फेरता खड़ा रहूंगा अर शत्रुघ्न चमर ढोलेगा अर लक्ष्मण मंत्रीपद धारेगा। मेरी माता पश्चातापरूप अग्निकर जरै है अर तिहारी माता अर लक्ष्मण की माता महाशोक करै है, यह बात भरत करै हैं ताही समय शीघ्र रथपर चढ़ी अनेक सामंतनिसहित महाशोककी भरी केकई आई अर राम लक्ष्मणकूं उरसूं लगाय बहुत रुदन करती भई। राम ने धैर्य बंधाया।

तब केकई कहती भई—हे पुत्र ! उठो, अयोध्या चलो, राज्य करहु, तुम विन मेरे सकल पुर वन के समान है। अर तुम महा बुद्धिमान हो, भरतकूं सिखाय लेहु। बहुरि हम स्त्रीजन नष्ट बुद्धि हैं, मेरा अपराध क्षमा करहु। तब राम कहते भए—हे मात ! तुम वातनि विषैं प्रवीण हो, तुम कहा न

जानो हो कि क्षत्रियन का नियम है जो वचन न चूकैं; जो कार्य विचार्या ताहि और भांति न करैं। हमारे तात ने जो वचन कह्या सो हमकूं अर तुमकूं निवाहना, या बात विषैं भारत की अकीर्ति न होयगी। बहुरि भरतसूं कह्या कि हे भाई! तू चिंता मत करै, तू अनाचारतैं शकै है सो पिता की आज्ञा अर हमारी आज्ञा पालवेतैं अनाचार नाहीं। ऐसा कहकर वनविषै सब राजनिके समीप भरत का श्रीराम ने राज्याभिषेक किया कर केकईकूं प्रणाम कर बहुत स्तुति कर वारंवार संभापण कर भरतकूं उरसूं लगाय बहुत दिलासा करी, नीठितैं विदा किया। केकई अर भरत राम लक्ष्मण सीता के समीपतैं पाछे नगरकूं चाले, भरत राम की आज्ञा प्रमाण प्रजा का पिता समान हुआ। राज्यविषै सर्व प्रजाकूं सुख, कोई अनाचार नाही; ऐसा निःकंटक राज्य तौहू भरत का क्षणमात्र राग नाही। तीनों काल श्री अरनाथ की वंदना करै है अर मुनिन के मुखतैं धर्म श्रवण करैं; द्युति भट्टारक नामा जे मुनि, अनेक मुनि करै है सेवा जिनकी, तिनके निकट भरत ने यह नियम लिया कि राम के दर्शन मात्रतैं ही मुनिव्रत धारूंगा। तब मुनि कहते भए कि—हे भव्य! कमल सारिसे है नेत्र जिनके, ऐसे राम जौ लग न आवैं तौ लग तुम गृहस्थ के व्रत धारहु। जे महात्मा निर्ग्रन्थ है तिनका आचरण अति विषम है सो पहिले श्रावक के व्रत पालने तासूं यति का धर्म सुखसूं सधै। जब वृद्ध अवस्था आवेगी तब तप करेंगे, यह वार्ता कहते हुवे अनेक जड़बुद्धि मरणकूं प्राप्त भए। महा अमोलक रत्न समान यति का धर्म, जाकी महिमा कहने विषैं न आवै ताहि जे धारै है तिनकी उपमा कौन की देहि। यति के धर्मतैं उतरता श्रवक का धर्म है जे प्रमाद रहित करै है ते धन्य है।

यह अणुव्रत हू प्रबोध का दाता है। जैसै रत्नद्वीप विषैं कोऊ मनुष्य गया अर वह जो रत्न लेय सोई देशांतर विषै दुर्लभ है तैसै जिनधर्म नियमरूप रत्ननिका द्वीप है, ता विषै जो नियम लेय सोई महाफल का दाता है। जो अहिंसारूप रत्नकूं अंगीकारकर जिनवरकूं भक्तिकर अरचैं सो सुर नरके सुख भोग मोक्षकूं प्राप्त होय। अर जो सत्यव्रतका धारण मिथ्यात्व का परिहारकर भावरूप पुष्पनिकी माला कर जिनेश्वरकूं पूजै है, ताकी कीर्ति पृथ्वी विषै विस्तरै है अर आज्ञा कोई लोप न सकै। अर जो परधन का त्यागी जिनेंद्रकूं उरविषैं धारै वारवार जिनेंद्रकूं नमस्कार करै, वह नव निधि चौदह रत्न का स्वामी होय अक्षयनिधि पावै। अर जो जिनराज का मार्ग अंगीकार कर परनारी का त्याग करै सो सबके नत्रनिकूं आनंदकारी मोक्ष-लक्ष्मी का वर होय। अर जो परिग्रह का प्रमाणकर संतोष धर जिनपतिका ध्यान करै सो

लोकपूजित अनंत महिमाकूं पावै। अर आहार दान के पुण्य कर महासुखी होय, ताकी सब सेवा करैं। अर अभयदान कर निर्भय पद पावै, सर्व उपद्रवतैं रहित होय। अर ज्ञानदान कर केवलज्ञानी होय सर्वज्ञपद पावै। अर औषधि-दान के प्रभाव कर रोगरहित निर्भयपद पावै। अर जो रात्रिकूं आहार का त्याग करै सो एक वर्ष विषैं छह महीना उपवास का फल पावै, यद्यपि गृहस्थपद के आरंभ विषैं प्रवर्तै है तो हू शुभ गति के सुख पावै।

जो त्रिकाल जिनदेव की वंदना करै ताके भाव निर्मल होंय, सर्व पापका नाश करै। अर जो निर्मल भाव रूप बहुपनिकर जिननाथकूं पूजै सो लोकविषैं पूजनीक होय। अर जो भोगी पुरुष कमलादि जल के पुष्प तथा केतकी मालती आदि पृथ्वी के सुगंध पुष्पनिकर भगवानकूं अरचै सो पुष्पक विमानकूं पाय यथेष्ट क्रीड़ा करै। अर जो जिनराज पर अगर चंदनादि धूप खेवै सो सुगंध शरीर का धारक होय। अर जो गृहस्थी जिनमंदिर विषैं विवेकसहित दीपोद्योत करै सो देवलोक विषैं प्रभाव सयुक्त शरीर पावै। अर जो जिनभवन विषैं छत्र चमर झालरी पताका दर्पणादि मंगलद्रव्य चढ़ावै अर जिनमंदिरकूं शोभित करै सो आश्चर्यकारी विभूति पावै। अर जो जल-चंदनादितैं जिनपूजा करै सो देवनिका स्वामी होय, महानिर्मल सुगंधमय शरीर जे देवांगना तिनका वल्लभ होय। अर जो नीरकर जिनेंद्र का अभिषेक करै सो देवनिकर मनुष्यनितैं सेवनीक चक्रवर्ती होय, जाका राज्यभिषेक देव विद्याधर करैं। अर जो दुग्धकरि अरहंत का अभिषेक करै सो क्षीरसागर के जलसमान उज्जवल विमान विषैं परम कांति धारक देव होय बहुरि मनुष्य होय मोक्ष पावै। अर जो दधिकर सर्वज्ञ वीतरागका अभिषेक करै सो दधि समान उज्जवल यशकूं पायकर भवोदधिकूं तरै। अर जो घृतकर जिननाथ का अभिषेक करै सो स्वर्ग विमान में महा बलवान देव होय परंपराय अनंत वीर्य कूं धरै। अर जो ईख-रसकर जिननाथ का अभिषेक करै सो अमृत का आहारी सुरेश्वर होय नरेश्वर पद पाय मुनीश्वर होय अविनश्वर पद पावै। अभिषेक के प्रभावकर अनेक भव्य जीव देव अर इन्द्रनिकरि अभिषेक पद पावते भए, तिनकी कथा पुराणनि में प्रसिद्ध है। जो भक्ति कर जिनमंदिर विषैं मयूरपिच्छादिककर बुहारी देय सो पापरूप रजतैं रहित होय परम विभूति अर आरोग्यता पावै।

अर जो गीत नृत्य वादित्रादिकर जिनमंदिर विषैं उत्सव करै सो स्वर्ग विषैं परम उत्साहकूं पावै अर जो जिनेश्वर के चैत्यालय करावै सो ताके पुण्य की महिमा कौन कह सकै, सुर मंदिर के सुख भोग परंपराय अविनाशी धाम

पावै । अर जो जिनेंद्र की प्रतिमा विधि पूर्वक करावै सो सुर नर के सुख भोग परम पद पावै । व्रत विधान तप दान इत्यादि शुभ चेष्टनिकरि प्राणी जे पुण्य उपार्जे हैं सो समस्त कार्य जिनबिंब कराने के तुल्य नाहीं । जो जिनबिंब करावै सो परंपराय पुरुषाकार सिद्ध पद पावै । अर जो भव्य जिनमंदिर के शिखर चढ़ावै सो इंद्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादिक सुख भोग लोक के शिखर पहुँचै । अर जो जीर्ण जिनमंदिरनिकी मरम्मत करावै सो कर्मरूप अजीर्णकूं हर निर्भय निरोग पद पावै । अर जो नवीन चैत्यालय कराय जिनबिंब पधराय प्रतिष्ठा करै सो तीन लोक विषै प्रतिष्ठा पावै । अर जो सिद्धक्षेत्रादि तीर्थनिकी यात्रा करै सो मनुष्य जन्म सफल करै । अर जो जिनप्रतिमा के दर्शन का चितवन करै ताहि एक उपवास का फल होय, अर दर्शनको उद्यम का अभिलाषी होय सो बेलाका फल पावै । अर जो चैत्यालय जायवे का आरंभ करै, ताहि तेला का फल होय । अर गमन किए चौला का फल होय । अर कछुएक आगे गए पंच उपवासका फल होय, आधी दूर गए पक्षोपवास का फल होय अर चैत्यालय के दर्शन तें मासोपमास का फल होय । अर भाव भक्ति कर महास्तुति किए अनंत फलकी प्राप्ति होय । जिनेंद्रकी भक्ति समान और उत्तम नाहीं । अर जो जिनसूत्र लिखवाय ताका व्याख्यान करैं करावैं, पढ़ैं पढ़ावैं, सुनैं सुनावैं, शास्त्रनिकी तथा पंडितनिकी भक्ति करैं, वे सर्वांग के पाठी होय केवल पद पावैं । जो चतुर्विध संघ की सेवा करैं सो चतुर्गति के दुःख हर पंचमगति पावै । मुनि कहै हैं—हे भरत ! जिनेन्द्र की भक्ति अर कर्म क्षय होय भए अक्षयपद पावै । ये वचन मुनिके सुन राजा भरत प्रणामकर श्रावक का व्रत अंगीकार किया । भरत बहुश्रुत अतिधर्मज्ञ महाविनयवान श्रद्धावान चतुर्विध संघकूं भक्ति कर अर दुःखित जीवनिकूं दयाभाव कर दान देता भया । सम्यग्दर्शन रत्न कूं उर विषै धारता अर महासुन्दर श्रावक के व्रत विषैं तत्पर न्यायसहित राज्य करता भया ।

भरत गुणनिका समुद्र ताका प्रताप अर अनुराग समस्त पृथ्वी विषैं विस्तरता भया । ताके देवांगना समान राणी तिन विषैं असक्त न भया, जल मे कमल की न्याईं अलिप्त रहा । जाके चित्त में निरंतर यह चिंता वरते कि कब यति के व्रत धरूं, निर्ग्रन्थ हुआ पृथिवीविषै विचरूं । धन्य हैं वे धीर पुरुष जे सर्व परिग्रह का त्याग कर तप के बल कर समस्त कर्मनिक भस्मकर सारभूत जो निर्वाण का सुख सो पावैं हैं । मैं पापी संसार विषैं मग्न प्रत्यक्ष देखूं हूँ जो यह समस्त संसार का चरित्र क्षणभंगुर है । जो प्रभात देखिये सो मध्याह्नविषैं नाहीं । मैं मूढ़ होय रहा हूं । जे रंक विषया-

भिलाषी संसार में राचे हैं तो खोटी मृत्यु मरैं हैं, सर्प व्याघ्र गज जल अग्नि शस्त्र विद्युत्पात शूलारोपण असाध्य रोग इत्यादि कुरीतितैं शरीर तजेंगे। यह प्राणी अनेक सहस्रों दुःख का भोगनहारा संसारविषैं भ्रमण करै है। बड़ा आश्चर्य है कि यह अल्प आयु में प्रमादी होय रहा है। जैसैं कोई मदोन्मत्त क्षीरसमुद्र के तट सूता तरंगों के समूह से न डरै तैसें मैं मोहकर उत्पन्न भय-भ्रमण से नाहीं डरूं हूं, निर्भय होय रहा हूं। हाय हाय ! मैं हिंसा आरम्भादि अनेक जे पाप तिनकर लिप्त राज्य कर कौनसे घोर नरक में जाऊंगा ? कैसा है नरक, बाण खड्ग चक्र के आकार तीक्ष्ण पत्र हैं जिनके ऐसे शाल्मलीवृक्ष जहां हैं अथवा अनेक प्रकार तिर्यञ्चगति ता विषैं जाऊंगा। देखो जिनशास्त्र सारिखा महा ज्ञानरूप शास्त्र ताहूकों पाय करि मेरा मन पापयुक्त होय रहा है। निस्पृह होकर यति का धर्म नाहीं धारै है सो न जानिए कौन गति जाना है। ऐसी कर्मनिकी नाशनहारी जो धर्मरूप चिंता ताकूं निरंतर प्राप्त हुवा जो राजा भरत सो जैनपुराणादि ग्रन्थनिके श्रवण विषैं आसक्त है, सदैव साधुनकी कथाविषैं अनुरागी रात्रि दिन धर्म में उद्यमी होता भया।

इति श्रीरविषेणाचार्य विचरित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं दशरथ का वैराग्य, राम का विदेश गमन अर भरत का राज्य वर्णन करने वाला बत्तीसवां पर्व पूर्ण भया ।।३२।।

हरिवंश-पुराण

रचनाकाल :—संवत् १८२९ चैत्र सुदी पूर्णिमा

रचना स्थान :—जयपुर (राजस्थान)

अथ ग्रन्थ की उत्पत्ति

अथानन्तर—मैं हरिवंश नाम जो पुराण महा मनोहर उसे प्रकट करता हूँ, कैसा है यह पुराण संसार विषे कल्पवृक्ष समान उत्कृष्ट है। कैसा है कल्पवृक्ष औंडी है जड़ जिसकी और कैसा है यह पुराण अति अगाध है। जड़ जिसकी महादृढ़ है। जिसकी जड़ जिनशासन है। और कल्पवृक्ष और पुराण दोनों पृथ्वी विषे प्रसिद्ध हैं और कल्पवृक्ष तो बहुशाखा कहिये अनेक शाखा उन कर शोभित है और यह पुराण बहुशाखा कहिये अनेक कथा उन कर शोभित है। और कल्पवृक्ष विस्तीर्ण फलका दाता है और यह पुराण महा-पवित्र पुण्य फल का दाता है और आप पवित्र है और कल्पवृक्ष भी पवित्र है। यह हरिवंश पुराण श्रीनेमिनाथके चरित कर महा निर्मल है ।।५१।। जैसे द्युमणि कहिये सूर्य उसकी ज्योति कर प्रकाशे पदार्थ तिनको दीपक तथा मणि तथा खद्योत कहिये (पटबीजना) तथा बिजुली यह लघु वस्तु भी अपनी शक्ति प्रमाण यथायोग्य प्रकाश करे हैं ।।५२।। तैसे बड़े पुरुष केवली श्रुतकेवली उनकर प्रकाशित जो यह पुराण उसके प्रकाशि विषे अपनी शक्ति प्रमाण हम सारिखे अल्प बुद्धि भी प्रवर्तें हैं, जैसे सूर्य के प्रकाशे पदार्थों को कहा दीपादिक न प्रकाशें तैसे केवली श्रुतकेवलीके भाषे पुराण को कहा हम सारिखेन प्रकाशैं अपनी शक्ति अनुसार निरूपण करें ।।५३।। द्रव्य प्रछन्न १ क्षेत्रप्रछन्न २ कालप्रछन्न ३ भावप्रछन्न ४। द्रव्यप्रछन्न कहिये कालाणु ।।१।। और क्षेत्र-प्रछन्न कहिये, आलोकाकाश २ और कालप्रछन्न कहिये अनागत काल ३ और भाव प्रछन्न कहिये, अर्थ पर्यायरूप षट्गुणी हानिवृद्धि ४ ऐसे जे अगम्य पदार्थ आचार्यरूप जो सूर्य उन्होंने किया है प्रकाश जिनका उनको सकुमारता कर युक्त जो यह मन सो स्थूल पदार्थों को जैसे लोक बाह्यदृष्टि करने से देखें तैसे देखे हैं। द्रव्य क्षेत्रादिक के भेदों से पांच प्रकार के भेद हैं जिसका ऐसा यह आगम पुराण पुरुषों का भाषा होने से प्रमाण है ।।५५।। इस ग्रंथ के मूल कर्ता आप श्री तीर्थंकर देव और उत्तर ग्रन्थ कर्ता गौतम नामा गणधरदेव और उत्तरोत्तर ग्रंथकर्ता अनेक आचार्य वे सब ही सर्वज्ञदेव के अनुसार कथन करण हारे हमको प्रमाण हैं ।।५७।। उन केवली और पांच चतुर्दश पूर्वके धारी श्रुत केवली और ग्यारह अङ्ग दश पूर्वके पाठी ग्यारह और एकादश अङ्ग के धारक पांच और एक आचारांगके धारक चार और यह पांच प्रकार के मुनि पञ्चम काल के आदि विषे होते भए तिनमें श्री वर्द्धमान के पीछे तीन केवली भए। इन्द्रभूत कहिये गौतम और सुधर्माचार्य और जम्बू स्वामी अंतिम केवली भए। यह तीन तो केवली भए और विष्णु १, नन्दिमित्र २,

अपराजित ३, गोवर्द्धन ४, भद्रबाहु ५, ये पाच चतुर्दश पूर्वके धारक श्रुत-केवली भए। और विशाखाचार्य १, घोष्टलक्ष २, त्रिय ३, जय ४, नाग ५, सिद्धार्थी ६, घृतिषेण ७, विजय ८, बुद्धिल ९, गंगदेव १०, धर्मसेन ११, ये ग्यारह अंग और दश पूर्वके पाठी भए ॥६३॥ और नक्षत्र १ यश-पाल २, पाण्डु ३, ध्रुवसेन ४, और कम्पाचार्य्य ५ ये पाँच मुनि ग्यारह अंग के पाठी भए ॥६४॥ और सुभद्र १, यशोभद्र २, यशोबाहु ३, लोहा-चार्य ४, ये चार मुनि एक आचारांग के धारक भये ॥६५॥ ये पूर्वाचार्य और भी जो आचार्य उनकर विस्तार यह एक देश आगम उसका एक देश व्याख्यान करिये है ॥६६॥ यह हरिवंश पुराण अपूर्व कहिये आश्चर्यकारी अर्थ थकी तो बहुत है शब्द थकी अल्प है इससे शास्त्र के विस्तार के भय कर अल्परूप सारवस्तु का संग्रह करिए है ॥६७॥ मन वचन कायकी शुद्धता को धारे जे भव्य जीव सदा जैन सूत्र का अभ्यास करे उनको वक्तापने कर और श्रोतापने कर यह पुराण का अर्थ कल्याण का कर्ता होय है। बाह्य और आभ्यन्तर के भेद कर जो तप की विधि है सो दो प्रकार की है उस विषे स्वाध्याय नामा परम तप है क्योकि जो यह स्वाध्याय नामा तप है सो अज्ञा-नता को निवारे है ॥६९॥ इससे परम पुरुषार्थ का करण हारा यह पुराण का अर्थ इस देश काल के जानन हारे पण्डित उन कर व्याख्यान करणे योग्य है। और जो मत्सर भाव रहित श्रद्धावान पुरुष है उन कर सुनने योग्य है मत्सर कहिये द्वेषक व्याख्यान करणे योग्य जो भाव सो सत्पुरुषो को त्याज्य है ॥७०॥

. आगे इस पुराण विषे आठ बडे अधिकार है सो अनुक्रम से कहेंगे इन विषे प्रथम ही त्रैलोक्यका कथन ॥ १ ॥ और राजाओ के वंश की उत्पत्ति ॥ २ ॥ और हरिवंश का निरूपण ॥ ३ ॥ और वसुदेव का चरित्र ॥४॥ और नेमिनाथका चरित्र ॥ ५ ॥ और यादवो का द्वारिका विषे निवास ॥६॥ और नारायण प्रतिनारायण के युद्ध का वर्णन ॥ ७ ॥ और नेमिनाथ के निर्वाण का निरूपण ॥ ८ ॥ यह आठ महा अधिकार पूर्वाचार्यो ने सूत्रो के अनुसार प्ररूपे सो यह अवांतर अधिकारो कर शोभित है ॥७३॥ संग्रह कर विभाग कर वस्तु के विस्तार कर इस जिनशासन विषे उपदेश होय है इस-लिये अधिकारो के विभाग कहिए है ॥७४॥ प्रथम ही वर्द्धमान जिनेश्वर का धर्म तीर्थ प्रवर्तन। फिर गणधरादिक गणो की संख्या। फिर राजगृह विषे आगमन। और गौतम स्वामी से राजा श्रेणिक का प्रश्न। और क्षेत्र कहिए त्रैलोक्य। और काल कहिए षट्काल तिनका निरूपण। फिर कुलकरोकी

उत्पत्ति और ऋषभजी की उत्पत्ति और क्षत्रियादिक के वंश का वर्णन। फिर हरिवंश की उत्पत्ति। और हरिवंश विषे मुनिसुव्रतनाथ की उत्पत्ति ॥७७॥ फिर दक्षप्रजापतिका चरित्र। फिर राजा वसु का वृतांत। फिर धं पवर्ष्टि का दीक्षा। और समुद्रविजय का राज। और वसुदेव का सौभाग्य वर्णन और उपाय कर वसुदेव का घर से विदेश को निकसना ॥६६॥ और वसुदेव के राणी सीमा और विजयसेना का लाभ फिर वनगज का वश करणा और विद्याधर की पुत्री स्यामा का संयोग ॥८०॥ फिर वसुदेव को अंगारक विद्याधर का ले उड़ना और चम्पापुरी विषे डारना और गंधर्वसेना का लाभ विष्णु कुमार मुनि का चरित्र फिर चारुदत्त सेठी की कथा और उनको मुनि का दर्शन और वसुदेव के नीलयशाराणी का लाभ और सोमश्री का लाभ ॥८२॥ और देवकी की उत्पत्ति का कथन, और राजा सौदास का कथन। और वसुदेव के कपिला राजकन्या का लाभ और पद्मावती का लाभ और राणी चारुहासिनी और रत्नवती की प्राप्ति और राजा सोमदत्त की पुत्री वेगवती का संगम और मदनवेगा का लाभ बालचन्द्रका अवलोकन तथा प्रियंगुसुन्दरी का लाभ, और गंधमती का समागम, प्रभावती की प्राप्ति और रोहिणी का स्वयंवर, उसके स्वयंवर विषे संग्राम और संग्राम विषे वसुदेव की जीत, और समुद्रविजयादिक बड़े भाइयों से मिलाप ॥८६॥ और बलभद्र की उत्पत्ति कंस का व्याख्यान और जरासिंधु की आज्ञा से राजा सिंहरथ का बंधन ॥८७॥ और कंस को जरासिंध की पुत्री जीवंजशाका लाभ और राज्य की प्राप्ति उग्रसेन पिता का बंधन फिर वसुदेव से देवकी का विवाह ॥८८॥ फिर कंस का बड़ा भाई जो अतिमुक्त उसके आदेश कर कंस की आकुलता का होना जो देवकी के पुत्र कर मेरा मरण है फिर वसुदेव सो प्रार्थना करना जो देवकी की प्रसूति हमारे घर होय ॥८९॥ सो वसुदेव प्रमाण करी फिर वसुदेव का अतिमुक्त मुनि से प्रश्न, और देवकी अष्ट पुत्रों के पूर्वभव का श्रवन और पाप का नाश करण हारा श्री नेमिनाथ के चरित्र का श्रवण ॥९०॥ फिर श्रीकृष्ण की उत्पत्ति और गोकुल विषे बाल लीला और बलदेव के उपदेश से सभा शास्त्रों का ग्रहण ॥९१॥ फिर वसुदेव के धनुष रत्न का आरोपण और यमुना विषे नागकुमार का जीतना फिर हाथी को जीतना और चाणूरमल्ल का निपात, और कंस का विध्वंस ॥९२॥ और उग्रसेन को राज और हरि का सत्यभामासों पाणिग्रहण और तासे अधिक प्रीति ॥९३॥ और जीवंजशा का जरासंध पैं जाना और विलाप करना जरासंध का यादवों पर रोष होना और बड़ी सेना भेजना रण विषे काल यवन का पराभव अपराजित का हरि के हाथ कर रण विषैं मरण। और यादवों को परम हर्ष का उप-

जना और किसी का भय नही ।।९५।। फिर शिवदेवी के नेमिनाथ की उत्पत्ति जब गर्भ मे आये तब षोडश स्वप्न का देखना और पति से स्वप्न का फल पूछना, पति कही तुम्हारे श्रीनेमिनाथ पुत्र होवेंगे ।।९६।। फिर भगवान का जन्म और सुमेरु विषे जन्माभिषेक फिर बाल क्रीडा और जिनराज का प्रताप और जरासंध का यादवो पर आक्रमण, और यादवो का समुद्र की ओर गमन ।।९७।। और मार्ग मे देवताओ ने जो माया दिखाई उसकर जरासन्ध पीछे फिरना फिर श्री कृष्ण का समुद्र के तीर दाभ की सेज पर तिष्ठ तेला करना ।।९८।। और इन्द्र के वचन से गौतम नामा देवकर समुद्र का सङ्को चना और कुबेर कर के द्वारिकापुरी का क्षणमात्र मे रचना फिर रुक्मणि का विवाह और सत्य भामा के देदीप्यमान भानुकुमार का जन्म और रुक्मणी के प्रद्युम्न का जन्म और पूर्वला वैरी जो धूमकेतु उस कर प्रद्युम्न का हरण ।।१००।। विजयार्द्ध विषे प्रद्युम्न की स्थिति काल सवर विद्याधर के मदिर मे और कृष्ण और रुक्मणी को प्रद्युम्न का खेद का निवारण प्रद्युम्न को षोडश लाभ की प्राप्ति और प्रज्ञप्ती और विद्या की प्राप्ति ।।१।। और प्रद्युम्न का काल सवर से सग्राम, और नारद के आग्रह कर माता पिता के निकट आगम और सबूकुमार की उत्पत्ति और प्रद्युम्न की बालक्रीडा और पिता का पिता जो वसुदेव उसन प्रद्युम्न से प्रश्न किया ।। २ ।। और प्रद्युम्न ने अपने परिभ्रमण का सकल व्याख्यान किया । फिर यादवो के सकल कुमारो का वर्णन फिर यादवो की वार्ता के सुनन से जरासन्ध का कोप और यादवो के निकट दूत पठावना उसके आगमन से यादवो की सभा विषे क्षोभ और दोनो सेनाओ का निकसना । और विजयाद्ध विषे वसुदेव का आगमन, विद्याधरो का क्षोभ वसुदेव का पराक्रम ।।४।। और अक्षोहिणी का प्रमाण और रथी अतिरथी अर्द्धरथी जे राजा महासथ तिनका कथन ।५। और जरासंध ने चक्रव्यूह रची, उसके भेदिवे अर्थ कृष्ण के कटक विषे गरुड व्यूह की रचना और कृष्ण के गरुडवाहिनी विद्या की प्राप्ति और बलिदेव को सिंहवाहनी विद्या की प्राप्ति और नमिनाथ के द्विमात भाई रथनेमि और कृष्ण के भाई अनावृष्टि और अर्जुन इन चक्रव्यूह भेद्या और कृष्ण की सेना विषे मुख्य पाडव । और जरासन्ध की सेना विष मुख्य धृतराष्ट्र के पुत्र जो कौरव उनमे परस्पर महायुद्ध फिर कृष्ण जरासन्ध का महायुद्ध ।।८।। उस समय कृष्ण के हाथो मे चक्र का आवना और जरासन्ध का वध, वसुदेव की विजय सो वसुदेव को विजयार्द्ध विषे विद्याधारी प्रगट भई और कृष्ण का कोटि शिला का उठावना और वसुदव का विजयार्द्ध से आगमन और बलदेव वसुदेव की दिग्विजय और देवो पुनीत रत्न की प्राप्ति ।।१०।। और दोनो

भाईयों को राज्याभिषेक और द्रौपदी का हरण फिर घातकी खंड में कृष्ण सहित पांडव जाय द्रौपदी ल्याये ॥११॥ फिर नेमिनाथ के शरीर के बल का वर्णन व नेमिनाथ के विवाह का हर्ष ॥१२॥ फिर जीवों को वन्ध से छुडावना और नेमिनाथ की दीक्षा, और केवलज्ञानका उपजना, देवों का आगमन समवसरण की विभूति का वर्णन, राजमती को प्राप्ति तप की। और यति श्रावक के धर्म का उपदेश और भगवान का तीर्थ विहार और देवकी के षट् पुत्रों का संयम ॥१४॥ फिर भगवान् का गिरनार गिरि विषे आगमन और देवकी के प्रश्न का उत्तर और रुक्मणी सत्यभामा आदि आठों पटराणियों के भवांतर का कथन ॥१५॥ फिर राजकुमार का जन्म और उसकर दीक्षा ग्रहण और वसुदेव टार नव भाइयों का वैराग्य और त्रिषष्ठि शलाका के पुरुषों की उत्पत्ति का वर्णन और जिनराजा के अन्तराल का कथन और वलभद्र का प्रश्न। प्रद्युम्न की दीक्षा और रुक्मणी आदि कृष्ण की स्त्रियों का और पुत्रों का संगम और द्वीपायन मुनि के क्रोध से द्वारावती का नाश ॥१८॥ और वलभद्र नारायण का द्वारका से निकसना और कुटम्ब का भस्म होना और दोनों भाइयों का शोक सहित कौशांबी नगरी के वन विषे प्रवेश ॥१९॥ और वलभद्र का जल के अर्थ जाना और कृष्ण का अकेला रहना और विना जाने जरद कुमार के हाथ से छूटा जो बाण उसकर दैवयोग से हरि का परभव गमन करना ॥२०॥ उसकर जरदकुमार को शोक उपजना और बलभद्र के अति दुस्तर दुःख का उपजना फिर सिद्धार्थ देव के उपदेश से वलभद्र को वैराग्य उपजना तप धरना। और पांचवें स्वर्ग में जाना और पांडवों को वैराग्य होना और गिरनार विषे नेमिनाथ का मुक्ति होना ॥२२॥ और पांचों पांडव महापुरुषों को उपसर्ग का जीतना, और जरदकुमार को दीक्षा लेना। और जरदकुमार की सन्तान से हरिवंश का रहना और उनके वंश के दीपक जे राजा जितशत्रु उनको केवल ज्ञान की प्राप्ति और जो राजा श्रेणिक हरिवंश शिरोमणि उनका राजगृह विषे राज ॥२४॥ और वर्द्धमान भगवान का दीपमालिका के दिन निर्वाण गमन उससे देवों का यह दिन उत्सव रूप मानना। तव दीप्यमान दीपमालिका प्रसिद्ध भई और गणधरों का निर्वाण गमन यह हरिवंश पुराण का विभाग संक्षेप कर कहा है।

अथानन्तर—भव्य जीव प्रसिद्धि के अर्थ विस्तार सहित व्याख्यान सुनें।२६। एक ही पुरुष का चरित्र सुना हुआ पाप का नाश करे और जो सर्व तीर्थेश्वर चक्रेश्वर हलधर उनका चरित्र भव्य जीव जे सुने उनका क्या पूछना, वह तो जन्म जन्म के पाप निवारे हैं जैसे महामेघ की बूंद ही महा ताप का विच्छेद

करे तो समस्त लोक विषे व्याप रहे जे मेघ उनकी जो माला के समूह उनकी जो सहस्रधारा झरे उनकर आताप क्यो न दूर होय सर्वथा दूर होय ॥२७॥ जो विवेकी जन हैं सो जिनमे वक्रमार्ग ऐसे लौकिक पुराण आतिरूप उनको तज कर जैन पुराण की पदवी महासरल कल्याण की करणहारी हितकारी उसे गहो, मोह ही है बहुल्यता जिसमे ऐसी दिग्मूढता कहिये दिशा भूलपना उसे तजकर भव्य जीव शुद्ध मार्ग लेवो। जिन कहिये भगवान् तेई भये भास्कर कहिये सूर्य तिन कर प्रगट किया जो शुद्ध मार्ग महा विस्तीर्ण उसके होते सन्ते शुद्ध है दृष्टि जिसकी ऐसा सम्यक् दृष्टि सो खाडे विषे काहेको परै।

भावार्थ——सूर्य के प्रकाश विना अन्ध पुरुष सकीर्ण मार्ग विषे खाडे मे पडे और सूर्य के उदय कर प्रगट भया मार्ग विस्तार्ण उस विषे दिव्य नेत्रो का धारक काहेको खाडे मे पडे ॥२८॥

इति श्री अरिष्टनेमिपुराण संग्रहे हरिवश जिनसेना चार्यस्य कृतौ सग्रहविभागवर्णन नाम प्रथम सर्ग ॥१॥

× × × × × ×

आठवां अधिकार ।

श्री नेमिनाथ का निर्वाण गमन

अथानन्तर—सर्व देवन के देव तीर्थ के कर्त्ता धर्मोपदेश कर भव्यन को कृतार्थ कर उत्तर दिशातै सोरठ की ओर गमन किया ॥ १ ॥ जब जिन रवि उत्तरायणते दक्षिणागमन आये तब या तरफ पूर्वते उद्योत भयो ॥ २ ॥ अरहत पद की विभूति कर मडित महेश्वर जब दक्षिण को विहार किया तब वे दक्षिण के सर्व देश स्वर्ग की शोभा को धारते भये ॥ ३ ॥ भगवान भूतेश्वर निर्वाण कल्याणक आया है निकट जिनके सुर असुर नरक कर अर्चित गिरनार आय विराजे ॥ ४ ॥ पूर्ववत् समवसरणकी रचना तहा भई देव दानव मानव तथा तिरयच सब ही प्रभु की दिव्य ध्वनि सुनते भये ॥ ५ ॥ श्री भगवान सम्यग्दर्शन चारित्र रूप जो महा पवित्र जिनेश्वर धर्म ताका व्याख्यान करते भये सो धर्म स्वर्ग मोक्ष के सुख का साधन है अर साधुन को प्रिय है ॥ ६ ॥ जैसा केवल ज्ञान के उदय विषै पहले धर्म का उपदेस दिया हुता तैसा ही विस्तार सहित निर्वाण कल्याणक का एक मास

रहा तब लगा दिया ।। ७ ।। जैसे अग्नि का गुण उष्ण अर ऊर्ध जलन अर जल का गुण शीत अर पवन का गुण शीघ्र गमन और तिरछा गमन अर सूर्य का गुण प्रकाशपना अर आकाश का गुण अमूर्तत्व अर पृथ्वी का गुण अनेक वस्तु का धारण अर सहनशीलपना तैसे कृतार्थ जे जिनेन्द्र तिनका गुण धर्मोपदेश है ।। ६ ।। जैसे ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय अंतराय यह चार घातिया कर्म क्षय किये हुते तैसे योग का निरोध कर नाम गोत्र आयु अर वेदनीय इन चार अघातियानकाहू अन्त कर अनेक मुनिवरों सहित जिनवर सिद्ध लोक को सिधारे ।। १० ।। तब इन्द्र को आदि देय चतुर्निकायनके देव निर्वाण कल्याणक की पूजा करते भये ।। ११ ।। जब भगवान मुक्त होय तब देहबंध रूप स्कंध परमाणु होय जाय अनादि कालकी यह रीति है जैसे विजुरी विलाय तैसे जिनेश्वर का देह विलाय गया अर मायामयी शरीर रच कर इन्द्रादिक दाह क्रिया करते भये ।। १२ ।। अग्निकुमार भवनवासी देव तिनके इन्द्र के मुकुट ते प्रगट भई अग्नि ताकर जिनेन्द्र की देह का दाह भया ।। १३ ।। गंध पुष्पादि मनोहर द्रव्यन कर प्रभू की पूजा कर देव अपने अपने स्थान गये । इन्द्र वज्रकर गिरनार गिर विर्षे सिद्ध सिला उकीर गया । वरदत्तादि मुनि को वंदना कर इन्द्रादिक अर नरेंद्रादिक अपने अपने स्थान गये ।। १५ ।। अर समुद्रविजयादि नव भाई अर देवकी के छै पुत्र अर प्रद्युम्न शंबु श्रीकृष्ण के पुत्र अर अनिरुद्ध प्रद्युम्न का पुत्र यह गिरनार गिरते जगत के शिखर गये सो भव्य जीवन कर वंदनीक है गिरनार बड़ा तीर्थ है जहां अनेक भव्य जीव यात्रा को आवे हैं ।। १७ ।।

अथानन्तर—पांडव महाधीर प्रभु का सिद्ध लोक गमन सुन कर शत्रुञ्जय गिर विर्षे कायोत्सर्ग धर तिष्ठे ।। १८ ।। तहां दुर्योधन के वंश का यवरोधन पापी आय कर बैर के जोग ते महा दुस्सह उपसर्ग करता भया ।। १६ ।। लोहे के मुकुट अति प्रज्वलित इनके सिर पर धरे अर लोहे के कड़े अर कटि सूत्रादि लोहे के आभरण अग्नि मई इनको पहराये ।। २० ।। तिन कर दाहका उपसर्ग अति रौद्र होता भया परन्तु वे महावीर मुनि धीर कर्मके विपाक के जानन हारे कर्म के क्षय करने को समर्थ दाह का उपसर्ग हिम हिम समान शीतल मानते भये ।। २१ ।। तिनमें युधिष्ठर भीम अर्जुन यह तीनों साधु क्षपक श्रेणी विर्षे आरूढ़ होय शुक्ल ध्यान कर अष्टम भूमि जो निर्वाण ताको पधारे अन्त कृत केवली अविनाशी भये ।। २२ ।। अर नकुल सहदेव ने उपशम श्रेणी मांडी हुती सो ग्यारहवां गुणठाणा से फिर गिर चौथे गुणठाणे आय देह तज सर्वार्थसिद्धि पधारे । तहांते चय मनुष्य होय जगत् के

मुकुट मणि होहिंगे ।। २३ ।। वडे भाइनके आताप देख इनका चित्त कुछ यक अथिर भया अर अन्य हू भव्य जीव कैइक तद्‌भव मोक्षगामी शुद्ध रत्नत्रय के धारक मोक्ष प्राप्त भये अर कईयक स्वर्गवासी देव भये सो भवधर अभय पद पावेंगे ।। २४ ।। अर नारद भी आयु पूर्ण कर परभव पधारे। भवान्तर में भवरहित होहिंगे ।। २५ ।।

अथानन्तर—बलदेव स्वामी तुंगीगिर शिखर पर नाना प्रकार के दुर्द्धर तप किये एक उपवास दोय उपवास तीन उपवास, पक्ष उपवास छः मासोपवास कर शरीर बहुत सोख्या अर कषाय सोखे अर धैर्य पोख्या ।। २७ ।। नगर ग्रामादि विषे तो गमन निवारा ही हुता आहार के अर्थ कातार चर्या धारी हुती सो वन विषे विहार करते लोकोने देखे, मानों साक्षात् चद्रमा ही है ।। २८ ।। उनकी वार्ता पुर ग्रामादि विषें प्रसिद्ध भई सो दुर्जन भूपति बलदेव के समाचार सुन कर शंका मान नाना प्रकार के आयुध धर उपसर्ग करने को आये तब सिद्धार्थ देव उनको ऐसी माया दिखाई वे जहां देखें तहां दीखें ।। ३० ।। मुनि के चरणनके समीप सिंहनको देख दुष्ट राजा मुनिकी सामर्थ्य जान प्रणाम कर शांत रूप होय गये ।। ३१ ।। तबसे बलदेव को लोग नरसिंह मानते भये दुष्टन को नरसिंह रूप भासे वे महा मुनि सौ वर्ष तप कर चार प्रकार आराधना आराध पांचमां ब्रह्म नामा स्वर्ग तहां पदमोत्तर विमान विषे ब्रह्मेंद्र भये ।। ३३ ।। वह विमान रतनमयी देदीप्यमान महा-मनोहर देव देवियो के समूह कर मंडित सुन्दर हैं मन्दिर अर उपवन जा विषें ।। ३४ ।। ऐसे रमणीक विमान विषें महा कोमल उत्पादक सज्या ता विषे हलधर मुनिवर का जीव ब्रह्मेंद्र भया । जैसे समुद्र विषे महा मणि उपजे तैसे स्वामी स्वर्ग विषे उपजे ।। ३५ ।। आहार कहिये कर्म वर्गणाका आकर्षण अर वैक्रियक शरीर अर पाच इन्द्री अर श्वासोश्वास अर भाषा अर मन इन षट पर्याप्ति तत्काल पूरे कर वस्त्राभरण मंडित सेज पर विराजे नव यौवन महा सुन्दर देवन के राजा वह स्वर्ग सपदा देख अर देवागनान के गीत सुन अर सब देवन को नम्रीभूत देख मनमे विचारी यह सब लोग मेरा मुख विलोके हैं मो विषे अनुरागी हैं अर या लोक के सकलही चन्द्र सूर्य हूते अधिक ज्योतिवन्त है ।। ३८ ।। यह कौन मनोहर देश है यहा के सब लोक हर्षित हैं अर मैं कौन हूं जो यहा का अधिपति भया हूँ अर मैं कौन धर्म उपार्ज्या जो ऐसा उत्तम भव पाया है ।। ३९ ।। तब वहा के जो मुख्य देव हैं तिन विनती करी जो यह पांचवां ब्रह्म नामा स्वर्ग है। अर आप ब्रह्मेंद्र होय यहा रावनके स्वामी भये हो महा तप कर यहां आय उपजे हो तब आप अवधि

कर सब वृत्तान्त जाना ।।४१।। पूर्व भवका सब चरित्र प्रत्यक्ष जाना अर देव इनका अभिषेक करावते भये अर इन्द्रपदकी विभूति दृष्टिगोचर करी ।।४२।। अर वासुदेवसे अधिक है प्रेम जिनका सो जाय कर भाईसे मिले परस्पर अवलोकन कर दोऊके हर्ष उपज्या वासुदेव कही आपां दोऊ मनुष्य भव पाय वीतराग का धर्म आराध केवल प्रगट कर मोक्ष पावेंगे। अर द्वारिकाके दाह कर अर यदुवंशके क्षय कर लोकापवाद भया सो तुम ऐसा करहु जो भरतक्षेत्र विषें मेरी मूर्त्ति शंख चक्र गदा पद्मादि कर शोभित लोग पूजें यह वचन वासुदेवके उरमें धार वलदेव याही भांति करते भये देवनका किया कहा न होय ।।४६।। ठौर ठौर पुर ग्रामादि विषें वासुदेवके मन्दिर कराय तिनकी सेवाकी विधि वताय वलदेव स्वर्ग विषें जाय जिनेश्वरकी सेवा करते भये ।।४७।। अनेक देव अर देवी तिन कर मंडित स्वर्गके अधिपति सुख भोगते भये। यह कथा गौतम स्वामीने राजा श्रेणिकसे कही फिर कहे हैं—हे श्रेणिक ! यह स्नेही जगतके जीवनको जगत विषें भ्रमण करावे है स्नेहके योग कर जहां मित्र होय तहां जाय कर स्नेहकी अधिकतासे आपको सुख प्राप्त भये हैं ते न भोगवे अर दुखका उद्यमी होय तातैं यह संसारका स्नेह ही मोक्षके सुखका विघ्न करनहारा है ।।४६।। श्री नेमिनाथ जिनेंद्रका तीर्थ महा मोहका विच्छेद करन हारा ता विषें वरदत्त नामा मुनि केवली भये हरिवंश विषें जरत्कुमार राजा राजकी धुराके धोरी भये ।।५०।।

इति श्री अरिष्टनेमि पुराण संग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ भगवन्निर्वाणवर्णनो नाम पंचषष्टितमः सर्गः ।।६५।।

अथानन्तर—राजा जरत्कुमार राज्य करे ताके राज्यमें प्रजा आनन्दको प्राप्त होती भई राजा महा प्रतापी जिनधर्मी ताके राजको लोग अति चाहें ।।१।। सो जरत्कुमारने राजा कलिंगकी पुत्री परनीताके राजवंशकी ध्वजा समान वसुध्वज नामा पुत्र भया ।।२।। ताहि राजका भार सौंप जरत्कुमार मुनि भये सत पुरुषनके कुलकी यही रीति है पुत्र को राज देय आप चारित्र धारे ।।३।। फिर वसुध्वजके सुवसु नामा पुत्र भया सो चन्द्रमा समान प्रजाको प्रिय राजा वसु सारिखा प्रतापी होता भया ।।४।। अर वसुके भीम वर्मा भया कलिंग देशका पालक अर ताके वंशमें अनेक राजा भये ।।५।। फिर ताही वंशमें हरिवंशका आभूषण राजा कपिष्ट भया अर ताके अजातशत्रु भया ताके शत्रुसेन भया। अर ताके जितार नामा पुत्र भया ।।६।। ताके जितशत्रु भया सो हे श्रेणिक ! ताहि तू कहा न जाने है जो राजा सिद्धार्थ महावीर स्वामीके पिताकी छोटी वहन परना महा प्रतापवान शत्रु मंडलका जीतन हारा जगत

विषैं प्रसिद्ध भया। श्री भगवान महावीरका फूफा सो प्रभुका जन्म भया तब कुण्डलपुर आया। सो राजा सिद्धार्थने बहुत सन्मान किया ॥८॥ राजा जितशत्रु महा जिनधर्मी इन्द्र समान पराक्रमी ताके यशोदा नाम रानी ताके अशोकवती नामा पुत्री सो यश अर दया कर महा पवित्रताका अनेक राजकन्या सहित श्रीमहावीर से विवाह मंगल वांछता भया यह हर्ष देखने के मनोरथ रूप विषे आरूढ था सो भगवान वीतराग कहा विवाह करे जे स्वात्मानुभूति रूप सिद्धिके करन हारे तिनके स्त्रीका कहा प्रयोजन ? जब तीर्थेश्वर तप कल्याणकको प्राप्त भये तब वे राजकन्या आर्यका होय गईं अर भगवान स्वयंभू जब केवल कल्याणक विषै जगतके तारवे अर्थ विहार किया तब राजा जितशत्रु राज तज मुनि राज भया महातप विषे प्रवर्ता ॥१०॥ सो तपके प्रभावकर जितशत्रु के केवल ज्ञान प्रगट भया मनुष्य भवका यही फल है जो केवल पाय मुक्ति जाय ॥११॥ हे श्रेणिक यह कथा हरिवंशकी कथा तोहि संक्षेपसे कही यह कथा लोक विषे प्रसिद्ध है अर चौबीस तीर्थेश्वर अर बारह चक्रेश्वर अर नव बलदेव नव वासुदेव नव प्रति वासुदेव यह त्रिषष्टि शलाकाके महा पुरुष तिनका चारित्र तोहि कहा सो यह पुराण पद्धति तोहि कल्याणके अर्थ होहु ॥१३॥ यह परमेश्वरी कथा गौतम स्वामीके मुख अनेक राजाओं सहित राजा श्रेणिक सुनकर नगरमे गया बारंबार नमस्कार करता भक्ति रूप है बुद्धि जाकी सो चित्त विषे धर्मंहीको धारता भया। अर चतुर्निकायके देव अर विद्याधर प्रभुको प्रणाम कर अपने २ स्थानक गये धर्मकथाके अनुरागी धर्महीको सार जानते भये ॥१४॥ निर्वाणकी है इच्छा जिनके अर जितशत्रु केवली जगत पूज्य आर्य क्षेत्र विषे विहार कर अघातिया कर्म हू क्षपाय अक्षय धामको प्राप्त भये अनंत सुखका है अभाव जहां जाके अर्थ यती यतन करे है सो पद पाया ॥१५॥ अर वीरजिनेन्द्र हूं भव्य जीवनके समूहको संबोध कर पावापुरीके मनोहर नामा उद्यानते कार्तिक वदी अमावस प्रभात समय स्वाति नक्षत्र विषे योगनका निरोध कर अघातिया कर्म हूँ खपाये जैसे घातिया कर्मनका घात किया था तैसे अघातियान हु का घात कर बन्ध तैं रहित जो अपवर्ग स्थानक सिद्धक्षेत्र तहां सिधारे निरन्तर है अनन्त सुखका संबध जहा ॥१७॥ वे जिनेश्वर शंकर सुगत सदा शिव परम विष्णु शुद्ध बुद्ध महेश्वर पंच कल्याणकके नायक चतुर्निकायके देवन के देव निर्वाण प्राप्त भये तब इन्द्रादिक देवोंने निर्वाण कल्याणक किया प्रभुके माया मई शरीर की पूजा कर दाह क्रिया करी ॥ १८ ॥ प्रभु परम धाम पधारे ता दिन चतुर्थ काल के वर्ष तीन और मास साढा आठ बाकी हुते। दीपोत्सव के दिन जिनवर जगत के शिखर पधारे तिस दिन देवन दीपन के समूह कर वह पुरी प्रकाश रूप करी आकाश और धरती विषे

दीपन की माला प्रज्वलित भई ॥ १९ ॥ इंद्रादिक सब देव और श्रेणिकादि सकल भूप श्री महावीर स्वामी का निर्वाण कल्याणक देख प्रभु से ज्ञान की प्राप्ति की प्रार्थना कर अपने २ स्थान गये ॥ २० ॥ उस दिन से इस भरत-क्षेत्र विषे दीप मालिका प्रसिद्ध भई प्रति वर्ष भव्य जीव निर्वाण की पूजा करें अर लोक दीपोत्सव करें ॥ २१ ॥ अर भगवान को मुक्ति गये पीछे बासठ वर्ष में केवली भये गौतम सुधर्म और जंबू स्वामी सो यह तीनों चतुर्थ कालके उपजे पंचम काल में पंचम गति जो निर्वाण तहां पधारे और इन पीछे सौ वर्ष में पांच श्रुत केवली भये ॥ २२ ॥ और इन पीछे वर्ष एकसौ तीरासी में ग्यारह अंग अर दस पूर्व के पाठी मुनि दस भये और तिन पीछे बरस दो सौ बीस में पांच मुनि ग्यारह अग के पाठी भये और तिन पीछे वर्ष एकसौ अठारह में चार मुनि एक आचारांग के पाठी भये तिनके नाम सुभद्र जयभद्र यशोबाहु लोहाचार्य यहां तक अंग रहे ॥ २३ ॥ फिर इन पीछे अंगन के पाठी तो न भये परन्तु महा विद्यावान अतनके धारक भये तिनमें कई एकनके नाम कहे हैं—महा तपकी है वृद्धि जिनके ऐसे नयंधर ऋषि, श्रुति, ऋषि, गुप्ति, शिवगुप्त, अर्हद्बलि, मंदराचार्य, मित्रवीर, बलमित्र, सिंहबल, वीरवित ॥ २५ ॥ पद्मसेन, गुणपद्म, गुणागुणी, जितदण्ड, नन्दीषेण, दीपसेन, तप ही है धन जिनके ऐसे श्री धरसेन, धर्मसेन, सिंहसेन, सुनन्दिसेन, सूरसेन, अभयसेन ॥ २७ ॥ सुसिधसेन, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन, शांतिसेन, समस्त सिद्धान्त के वेत्ता पट भाषानमें गुणवान पटखंड के अखंड नाथ ही हैं जिनके शब्द अर्थ अगोचर नाही ॥ २८ ॥ फिर जयसेन नामा सद्गुरु होते भये कर्म प्रकृति नामा श्रुति ताके पारगामी इन्द्रीन के जेता प्रसिद्ध वैयाकरणी महा पण्डित प्रभाववान समस्त शास्त्र समुद्र के परगामी ॥ २६ ॥ तिनके शिष्य अमित तेज नामा सद्गुरु पवित्र पुन्नाटगण के अग्रणी जिन शासन की है वात्सल्यता जिनके महा तपस्वी सौ वर्ष ऊपर है अवस्था जिनकी शास्त्रदान के बड़े दाता पण्डितों में मुख्य जिनके गुण पृथिवी में प्रसिद्ध तिनका बडा भाई, धर्म का सहोदर महा शांत संपूर्ण बुद्धि धर्ममूर्ति जिनकी तपोमई कीर्ति जगत में विस्तार रही ऐसे कीर्तिसेन तिनका मुख्य शिष्य श्रीनेमिनाथ का परम भक्त जिनसेन ताने अपनी शक्ति के अनुसार अल्प बुद्धि से प्राचीनग्रन्थ के अनुक्रम हरिवंश की पद्धति कही सो यामें प्रमाद के दोष से शब्द में तथा अर्थमें कहीं भूल होय तो पुराण के पाठी पण्डित सुधार लीजो एक केवली भगवान ही कथन में न चूकें और समस्त चूकें ताको अचरज नाहीं । कहां यह प्रशंसा योग्य हरिवंश पुराण रूप पर्वत और कहां मेरी अल्प से अल्प बुद्धि की शक्ति ॥ ३४ ॥ जो काहू ठौर आखडे तो कहा अचरज है । या पुराण विषें

जिनेन्द्र के वंश के स्तवन कर पुण्य की उत्पत्ति है यही वांछा कर मैंने वर्णन किया और काव्य बन्ध से प्रबन्ध कर कीर्ति की कामना राख कथन न किया ।। ३५ ।। काव्य रचना के गर्व कर तथा अन्य पण्डितों से ईर्षा कर मैंने यह आरम्भ न किया । केवल जिनराज की भक्ति ही कर यह कथन किया । चौवीस तीर्थंकर और द्वादश चक्रधर और नव हलधर नवहरि और नव प्रतिहरि इनका वर्णन किया और अन्य अनेक राजान के चरित्र कहे । भूमिगोचरी और विद्याधर सबनके वंश का वर्णन या विषै है ।। ३७ ।। जो धर्म अर्थ काम मोक्ष के साधन हारे पुरुषार्थ के धारक धीर पुरुष कीर्ति के पुंज तिनकी स्तुति कर मैं पुण्य उपार्ज्या गुण संचय किया ताका यही फल हूजियो जो या मनुष्य लोक के भव्य जीव जिन शासन विषै श्रद्धा करें अर अशुभ कर्म को हरें ।। ३८ ।। यह नेमि जिनेश्वर का चरित्र सकल जीवादि पदार्थ का प्रकाशक है यामे षट द्रव्य सप्त तत्त्व नव पदार्थ पंचास्तिकाय की प्ररूपणा है ।। ३९ ।। जो महा पण्डित है सो याकी सभाविषै व्याख्यान अपने अर पराये हितार्थ करियो अर सभा विषैं आवैं जे भव्य जीव ते कानरूप हस्तांजली कर हरिवंश कथा रूप अमृतका पान करियो जिनेन्द्र नाम ग्रहणकर नव ग्रहकी पीडा दूर होय है । यह समस्त पुराण आद्योपान्त वाचे अथवा सुने तो पापका नाश होय इसलिये एकाग्र चित्त कर पण्डित जन याका व्याख्यान अपने अर पराये कृतार्थ के अर्थ करहु व्याख्यान निज परका तारक है ।। ४२ ।। यह पुराण मंगल के अर्थियो को महा मंगल का कारण है अर जो धन के अर्थी है तिनकों धनकी प्राप्ति का कारण है । अर निमित्त ज्ञानियों को निमित्त ज्ञान का कारण है अर महा उपसर्ग विषैं शरण है शन्तिका कर्त्ता है अर जैन का बडा शकुन शास्त्र है शुभ सूचक है ज्ञानार्थीन को ज्ञान, ध्यानार्थीन को ध्यान, योगार्थीन को योग, भोगार्थियो को भोग, राज्यार्थीन को राज्य, पुत्रार्थीन को पुत्र, विजयार्थीन को विजय सर्व वस्तु का यह दाता सर्वज्ञ वीतराग का पुराण है । जो चौबीसो तीर्थेश्वर का महा भक्त चौबीसो शासन देवता चक्रेश्वरी पद्मावती अम्बिका ज्वालामालिनी आदि सम्यग्दृष्टिनी सो सब इस पुराण के आश्रित हैं कैसे है यह शासन देवता सदा जिनधर्म अर जिनधर्मीन के समीप ही है ।। ४४ ।। अर गिरनार गिरि विषैं श्रीनेमिनाथ का मन्दिर ताकी उपासक सिंहवाहनी चक्र की धरनहारी जाके आगे क्षुद्र देवता न टिकें ऐसी अम्बिका कल्याण के अर्थ जिन शासन की सेवक हैं तहां परचक्र का विघ्न कैसे होय ।। ४५ ।। नवग्रह अर असुर नाग भूत पिशाच राक्षस यह लोगों को हित की प्रवृत्ति विषैं विघ्न करे है । ताते बुध जन जिन शासन के देवतान के जे गुण तिन कर क्षुद्र देवन को शान्त करे है ।। ४६ ।। जे भक्ति कर यह

हरिवंश पुराण पढ़ें तिनके बिना खेद मनवाञ्छित काम की सिद्धि होय अर धर्म अर्थ मोक्ष की प्राप्ति होय ।।४७।। तातें जे निष्कपट आर्य पुरुष हैं ते पूजा सहित या पुराण को पृथिवी विषे विस्तारहु। कहा कर यांकूं विस्तारहु मात्सर्य कहिये पराई उच्चता का न सहना ऐसा अदेखसका भाव ताहि धैर्य के बल कर प्रबलता रूप जो वृद्धि ताके प्रभाव से निवार कर अर जेते मायाचार के आचरण हैं तिन सबन को तज कर याका रहस्य विचारहु ।।४८।। अथवा भव्य जीवन से यह प्रार्थना है कौन अर्थ, वे स्वतः स्वभाव ही याहि पढ़ेंगे बांचेंगे विस्तारेंगे, जैसे पर्वत मेरुको तारा को सिर पर धारे अर पृथिवी विषै विस्तारे ।।४६।। यह श्रेष्ठ पुराण प्राचीन पुराण के गम्भीर शब्द तेई भये जल तिन कर पूर्ण सो मुनि मण्डली रूप नदी दोय नयन रूप ढावेन की धरन हारी तिन कर पूर्ण चारों दिश समुद्रान्त विस्तरेगा ।।५०।। वे जिनेश्वर देव तत्त्व के द्रष्टा देवन के समूह पर सेवने योग्य जयवन्त होहु प्रजा को अति शांति के देनहारे शान्त है मार्ग जिनका अर निर्मल हैं निद्रारहित केवल नेत्र जिनके ।।५१।। अर जिनधर्म की परम्पराय जयवन्त होहु जो अनादि काल से काहू कर जीति न जाय। अर प्रजा विषै कुशल होहु। कबहु दुर्भिक्ष मति होहु मरी मति होहु पापी मति होहु पापी राजा मति होहु। अर सुख के अर्थ प्रति वर्ष भली वर्षा होहु अर अति वृष्टि अनावृष्टि मति होहु पृथिवी अन्न जल तृण कर सदा शोभित रहो। प्राणीनको काहू प्रकार की पीडा मति होहु ।।५२।। विक्रमादित्य को सात सौ पांच वर्ष व्यतीत भये तब यह ग्रन्थ भया। ता समय उत्तर दिशा का राजा इन्द्रायुध कृष्णराजका पुत्र था। अर दक्षिण दिशा का राजा श्रीवल्लभ हुता अर पूर्व दिशा का राजा अवन्ति हुता अर पश्चिम का राजा वत्सराज हुता। यह चारों दिशा के चारों राजा महा सूरवीर जीत के स्वरूप पृथिवी मण्डल के रक्षक हुते ।।५३।। कल्याण कर बढी है विस्तीर्ण लक्ष्मी जहां ऐसा श्री वर्धमानपुर तहां श्रीपार्श्वनाथ के चैत्यालय विषैं राजा रत्न के राज विषै यह ग्रन्थ आरम्भ अर पूर्ण भया फिर शान्तिनाथ के मन्दिर विषै ग्रन्थ समाप्त किया पूजा भई अति उच्छव भया। जीती है अर संघ की शोभा जाने ऐसा श्रेष्ठ पुन्नाट नामा संघ ताकी परिपाटी विषै उत्पन्न भये श्रीजिनसेन नामा आचार्य तिन सम्यक्ज्ञान के लाभ के अर्थ रचा यह हरिवंशचरित्र लक्ष्मी का पर्वत सो या पृथिवी विषैं बहुत काल अति निश्चल तिष्ठो सब दिशि विषै सब जीवन का हरा है शोक जानें ।।५४।।

इति श्रीअरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य गुरु पर्व कमल वर्णनो नाम षट्षष्टितमः सर्ग ।।६६।।

परमात्म प्रकाश भाषा टीका

।। ॐ नमः: सिद्धेभ्यः ।।

अथ "परमात्मा प्रकास" ग्रंथ "श्री योगिन्द्राचार्य" कृत, ता परि संस्कृत टीका 'श्री ब्रह्मदेव' कृत ताकी भाषा वचनिका रूप लिखिए है ।

दोहा

चिदानंद चिद्रूप जो, जिन परमातम देव ।
सिद्ध रूप सुचि सुद्ध जो, नमो ताहि करि सेव ।।१।।
परमातम निज वस्तु जो, गुण अनंत मय सुद्ध ।
ताहि प्रकासन कै निमित्त, वंदू देव प्रवुद्ध ।। २ ।।

श्लोक— चिदानंदैकरूपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्मप्रकाशाय, नित्य सिद्धात्मने नमः ।।१।।

अर्थः—

श्री जिनेश्वर देव शुद्ध परमात्मा ज्ञान आनन्द रूप चिदानंद चिद्रूप तिनिक ताइ मेरा सदाकाल नमस्कार होहू । कैसे अर्थि नमस्कार होहू । परमात्मा का स्वरूप ताके प्रकासवे अर्थि । कैसे हवे भगवान सुद्ध परमात्मा स्वरूप के प्रकासक है । निज अर पर सवके स्वरूप कूं प्रकासक है । वहुरि कैसे है सिद्धात्मने कहीये कृत कृत्य है, आत्मा जिनका । नमस्कार योग्य परमात्मा ही है । तातैं परमात्मा कूं नमस्कार करि परमात्म प्रकास नामा ग्रंथ का व्याख्यान करू हू ।।१।।

श्री योगिंद्र देवकृत परमात्म प्रकास नाम दोहक छंद ग्रंथ ता वीचैं प्रक्षेपक हीये उक्तं च तिनि विना व्याख्यान के अर्थि अधिकारनिको परि-पाटी कहीये है । प्रथमही पंच परमेष्टी के नमस्कार की मुख्यता करिजे है ।। २ ।।

जे जाया ज्माणग्गिए—इत्यादि सात दोहा जानने । बहुरि विज्ञापना की मुख्यता करि भावैं पणविं वि इत्यदि दोहातीन ।।३।।

वहुरि वहिरात्मा अंतरात्मा परमात्मा इनिके भेद करि तीन प्रकार आत्मा के कथन की मुस्यता करि पुण पुण पण विवि इत्यादि दोहा पाच ।। ५ ।।

अथानंतर मुक्ति कूं प्राप्त भये जे प्रगट स्वरूप परमातमा ताके कथन की मुख्यता करि तिहू इणा वंदिउ इत्यादि दोहा दस ।।१०।।

अथानंतर देह विर्षे तिष्टता सक्तिरूप परमात्मा ताके कथन की मुख्यता करि जेहउ निम्मल इत्यादि चोवीस दोहा ।।२४।।

जनि में पांच उक्त च है ।।५।।

अथानंतर जीव का निज देह प्रमाण कथन ता विर्षे स्व मत परमत के विचार की मुख्यता करि मणंति जिउ सत्व गउ इत्यादि दोहा छह ।।६।।

वहूरि द्रव्य गुण पर्याय का स्वरूप ताके कथन की मुख्यता करि आप जणिम उ इत्यादि दोहा तीन ।।३।।

वहूरि कर्म विचार की मुख्यता करि जीवहू कम्म अणार जीय इत्यादि दोहा आठ ।।८।।

वहूरि सामान्य भेद भावना ताके कथन की मुख्यता करि अप्पा-अप्पुजि इत्यादि दोहा तीन ।।३।।

वहूरि कर्म विचार की मुख्यता करि जीवहू कम्म अठाइ जिपरि अप्पे अप्पु इत्यादि दोहा एक ।।१।।

वहूरि मिथ्या भाव के कथन की मुख्यता करि पज्झ इरतउ इत्यादि दोहा आठ ।।८।।

वहूरि सम्यग दृष्टी की भावना की मुख्यता करि काल है, विणु इत्यादि दोहा आठ ।।८।।

वहूरि सामान्य भेदभाव की मुख्यता करि अप्पा संयम इत्यादि दोहा इकतीस ।।३१।।

इति श्री योगिंद्र देव विरचित परमात्मा प्रकास ग्रंथ ता विर्षे एक सो तेईस ।।१२३।।

अंतिम भागः—

अथानन्तर ग्रंथ कै अंतिमगल कै अर्थि आसीर्वाद रूप नमस्कार है ।।

।। मालिनी छन्द ।।

परम पय गयाणं भास उ दिव्वकाउ ।
मणि सि मुणि वराणं मुख दो दिव्व जोउ ।।
विसय सुहरयाणं दुल्ल होजो हुलोए ।
जयउ शिव सरूवो के वलोको विवोहो ।।४३।।

अर्थ —जइउ कहिए सवोत्कर्ष ताकरि वृद्धि कू प्राप्त होउ कैसा है वह परमतत्व दिव्य काउ कहिए दिव्य है ग्यान ग्रानन्द रूप शरीर जाकै अथवा अरहत पद की अपेक्षा दिव्य काय कहिए परम औदारिक शरीर, कू धारे है। बहुरि कैसा है हजारी सूर्यनितै अधिक है, तेज जाका सकल प्रकासी है। जे परम पद कू प्रापत भए है, केवली तिनिकूं सौ साक्षात् दिव्य काय भासै है पुरषाकार भासि रह्या है। अरजे महा मुनि है तिनिके मन विषै द्वितीय सुकल ध्यानरूपी वीतराग निर्विकल्प समाधियोग रूप भास्या है। कैसा वह तत्व मोक्ष दो कहिए मोक्ष का देनहारा है अर केवल ग्यान है स्वभाव जाका ऐसा अपूर्व ग्यान योति सदा कल्याण रूप शिव स्वरूप अनते परमात्म भावना ताकरि उत्पन्न जो परमानद अतिंद्री सुख तातै विमुख जे पच इंद्रीनि के विषय तिनि सू जे आसक्त है तिनिकूं सदा दुर्लभ है।। या लोक विषैजीव जाकू न पावै ऐसा वह परम तत्व सो जयवत होऊ।। या भाति या परमात्मा प्रकासनामा ग्रंथ विषै प्रथम ही जे जाया, भणिए इत्यादिक एक सौ तेईस दोहा १२३ अर प्रक्षेपक तीन ३ तिनि सहित पहला अधिकार कह्या। बहुरि एक सौ चौदा ११४ दोहा अर प्रत्येक ५ पाच तिनि सहित दूसरा महा अधिकार कह्या।

अर पर जाण तु वि परम मुणि, पर ससग्ग चयति। इत्यादिक एक सौ सात १०७ दोहा नि मै तीसरा महा अधिकार कह्या प्रक्षेपक अर अंति की दोय काव्य तिनि सहित तीन सै पैंतालीस ३४५ दोहानि मै परमात्मा प्रकास का व्याख्यान ब्रह्म देवकृत टीका सहित सपूर्ण भया।। छ।।

या ग्रंथ विषै प्रचुरताकरि पदनि की राषि करनी।। अर वचन भी भिन्न भिन्न कहिए जुदे जुदे धरे मुख सू समझिवे कै अर्थि कठिन सस्कृत न धर्या तातै इहा लिंग वचन क्रिया कारक संधि समास विसेष्य विशेषण दूषण

न लेने जो पंडित जन विशेषग्य है ते ग्रैसा जांनहुं ।। जो इह ग्रंथवाल बुद्धिनिकै समभिवे कूं सुगम कीया है या परमात्मा प्रकाश की टीका का व्याख्यान जांनि करि भव्य जीवनिकूं ऐसा विचार करनां ।। जो मैं सहज सुद्ध ज्ञानानंद स्वभावि नीविकल्प हूं उदासीन हूं । निजानंद निरंजन सुद्धातम सम्यक् दर्शन सम्यक ज्ञान सम्यक चारित्र रूप निश्चय रत्नत्रय मई निर्विकल्प समाधि करि उपज्या वीतराग सहजानन्दरूप ग्रानंदानुभूति मात्रा जो सु संवेदन ज्ञान ताकरि गम्य हूं ग्रौर उपायनि करि गम्य नांही ।। निर्विकल्प निजानंद ज्ञान ही करि प्राप्ति है, मेरी भरितावस्य कहिए पूर्ण हूं राग द्वेष मोह क्रोध मान माया लोभ पांच इंद्रीनिके विषय व्यापार मनकाय द्रव्य कर्म भावकर्म नो कर्म क्षाति पूजा लाभ देखे सुनें ग्रनुभए जेभोग तिनि की वांछा रूप निदान बंधभया। मिथ्या शल्य म्रियादि विभाव परिणाम रहित सून्यौ हूं कहिए सब प्रपंचनि तैं रहित हूं ।। तीनलोक तीनकाल विषैं मन वचन काय करि कृत कारित ग्रनुमोदना करि शुद्ध निश्चय नय की मैं ग्रातमाराम ऐसा हूं तथा सर्व ही जीव ऐसे हैं इह निरंतर भावनां करनी ।।छ।।

यह परमात्म प्रकास ग्रंथ का व्याख्यान प्रभाकर भट्ट के संवोधने ग्रर्थि श्री योगिंद्र देव नैं किया ता परि श्री ब्रह्मदेव नैं संस्कृत टीका करी । श्री योगिंद्राचार्य नैं प्रभाकर भट्ट संवोधिवेकैं ग्रर्थि दोहा तीन सैं तीयालीश कीए ।। ता परि श्री ब्रह्मदेव नै संस्कृत टीका हजार पांच च्यारि ५००४ कीएता परि दौलति राम ने भाषा वचनिका का श्लोक ग्रडसठि सैं निवै ६८६० संख्या प्रमाण कीए ।। श्री योगिंद्राचार्य कृत मूल दोहा ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका का दौलतिराम कृत भाषा वचनिका पूर्ण भई ।। छ।। इति श्री योगिंद्राचार्य विरंचित परमात्मा प्रकास की भाषा वचनिका संपूर्ण ।।छ।।

दोहाः—

कटि कूवडि कर वेगडी, नीचा मुख ग्रर नैंण ।
इस संकट पुस्तक लिखूं, नीका राखो सैंण ।।

× × × × ×

आदिपुराण

रचनाकाल —संवत् १८२४ चैत्र सुदी पूर्णिमा

रचना स्थान :—जयपुर (राजस्थान)

अथ तीसवां पर्व ।

अथानंतर पृथ्वी का प्रभु पश्चिम दिशा के जीतिवेकूं उद्यमी भया, नैऋत्य कोण के मार्ग अपनी सेना के साधन करि पृथ्वी कूं वशि करता चाल्या ।।१।। आगे आगे घोड़े जाय हैं तिनि कै पीछे रथ चले अर मध्यविर्षे हाथनिकी घटा चाली अर पयादे सर्वत्र चाले ।।२।। या भांति चतुरंगबल देवनि के अर विद्याधरनिके कटक सहित षडंग पृथ्वी विषै विस्तरया ।।३।। चालता कटक का क्षोभ ता थकी समुद्र चलायमान भया सो मानूं सेवक जे सुभट तिनिकूं स्वामी कै पीछै चालना पहुँचावनेंकूं संग होना प्रगट दिखावै है ।।४।। कटक के लोकनि बलात्कारतैं भोगे वृक्षनि के फल सो फल तोड़वै वृक्ष नय गए अर नदीनिका जल सुसि गया कीच होय गया अर बड़े बड़े पहाड़ थल होय गए ।।५।। याके कार्य की सिद्धि सब सफल होती भई अतिरसकी भरी सुखकी करणहारी सेवक जननिकरि वांछिवे योग्य महा उत्साह सहित अत्यंत फलती भई याकी मंत्र शक्ति उत्साहशक्ति प्रभुत्वशक्ति ।।६।।

अर सेना, पृथ्वीके जीतिवेकी है इच्छा जाकै सो देदीप्यमान होती भई कैसी है शक्ति अर सेना–काहूतैं भेदी न जाय, दृढ़ है प्रबन्ध जिनिका अर शत्रुनि के क्षयका कारण ।।७।। याके योद्धा बाणनिसहित जीतिके भावकूं प्राप्त भए, कैसे हैं बाण अर योद्धा बाण तौ फल कहिए भाला तिनिकरि संयुक्त हैं अर योद्धा मनवांछित फलकरि युक्त हैं अर बाणहू तीक्ष्ण हैं अर योद्धाहू तीक्ष्ण हैं अर बाण तौ पक्ष कहिए पांख तिनिकरि सहित हैं अर योद्धा पक्ष कहिए सहायी तिनिकरि संयुक्त हे अर बाणहू दूरगामी अर योद्धाहू दूरगामी ।।८।। अर याके विपक्षी कहिए शत्रु ते सत्यपनैं विपक्ष कहिए पक्षरहित सहायरहित होते भए, सेना के लोकनि तिनिकूं दूरि काढि दीए, ते सब सामग्रीसूं रहित होय गए ।।६।। एक बड़ा अचिरज है याके विरोधी याके कोपकूं होतसंतै भी कुपति कहिए कुमाणस होय गए सब सामग्रीरहित भए, अर दूजा अर्थ-व्यंग्यरूप-कुपतिनाम पृथ्वीपतिका है । अर याके विरोधी पहाड़निकूं उलंघि दूरि भागे अर दूजा अर्थ भूभृत् नाम राजानिका है अर याके विरोधी असे होय गए जो अन्न न मिलैं वनफल खाय आजीविका पूर्ण करते भए अर दूजा व्यंग्य अर्थ-फलसंपदा भोगवते भए ।।१०।। याकैं संधि कहिए मिलाप अर विग्रह कहिए युद्ध ताकी चर्चा शास्त्रविषैं होती भई समस्त शत्रुकी पक्षका निराकरण करणहारा ताकैं कौनसूं संधि ? अर कौनसूं युद्ध ? याकैं सब सेवक है कोऊ समान होय तौ

सधि विग्रह सभवैं ।।११।। या भाति इह अजेतव्यपक्ष कहिए नाहीं रह्या कोऊ प्रबल शत्रु जीतिबे योग्य जाकैं याकैं ढिग सब दीन हैं तथापि इह दिग्विजयकू उद्यमी भया सो मानू अपना पालिबेका भरत क्षेत्र ताकी दिग्विजयके मिसकरि प्रदक्षिणा देता भया ।।१२।।

याकी सेनाके लोकनि समुद्रके तीरकी भूमि सब वशीभूत करी कैसी है तीरकी भूमि सुपारीके वृक्षनिकरि करी है छाया जहा अर नालेरनिके बनकरि मडित है ।।१३।। याकी सेना के लोक सरोवरनिके तीर वृक्षनिकी छाया तहा विश्राम करणहारे तरुण नारेलनिका पया जो रस ताहि पीवते भए ।।१४।। अर याकी सेना के लोक ताल बनविपैं सुनते भए सूखे पाननिबे शब्द पवन के हलायवेकरि पडैं है ताडपत्र तिनिके पडिवेकी महा कठोर ध्वनि होय रही है ।। १५ ।। अर दूइ नृपनिका पति ताबूलनिकी बेलिसहित देखता भया खैर के वृक्ष सो परस्पर मिलिरहे हैं मानू लोकनिकू ऐसी दिखावैं हैं जो पाननिका अर हमारा एक कार्य है जहा पान तहा काथ ।।१६।। नृपनिका इन्द्र ताबूलनिकी वलिसू लगिरहे खैर के वृक्ष तिनिकू देखता सता इनि वृक्षनिकरि वेढी ताबूलकी बेलि तिनिकू अवलोकिकरी हर्षित भया, मानू ए स्त्री–पुरुष के युगलभावकू आचरे है ।।१७।। अर वनविषैं विहग जे पक्षी तिनिकू देखता सता हर्षित भैया मानू ए पखी मुनिसारिखे सोहै है मुनिहुकी यहु रीति है जहाँ सूर्य अस्त होयवेका समय निकट आवै तहाही निवास करैं रात्रीकू गमन न करै अर पछीहू निशा-विषैं गमन न करै अर पखी निरतर शब्द करै है सो मानू स्वाध्यायही करै है ।।१८।।

अर कटहल के वृक्ष माही मृदु अर बाहरि जिनिकी त्वचा काटेनिकरि युक्त तिनिके मिष्टरस अमृतसमान सनाके लोक यथेष्ट भखते भए ।।१९।। नारेलनिका रस पीवना अर कटहलका भोजन अर मिरचनिकी तरकारी, अहो वनका निवासहु सुखकारी है ।।२०।। अर तीक्ष्णरसकी भरी मिरच तिनिका आस्वादकरि पखी शब्द करैं हे अर परै हैं आखिनिसू अश्रुपात जिनिके तिनिकू भूपेंद्र देखता भया ।।२१।। अर तरुण मर्कट महातीक्ष्ण मिरचनिकी मजरी ताहि भखिकरि सशकित भए सिर हलावै है तिनिकू पृथ्वीका पति निरखता भया ।।२२।। ता समैं कटकवे जन लोकके उपकारी जे वनके वृक्ष तिनिकू फलनिकरी नम्रीभूत देखि कल्पवृक्षनिके अस्तित्वविषैं नि सदेह भए मनमैं विचारी –ए वृक्षही फलदाता है तौ कल्पवृक्ष तौ फलदाता होयही होय ।।२३।। लतारूप स्त्री ताकरि मन्डित अर फूलरूप प्रसूतिकरि सयुक्त ऐसे वनके वृक्ष मानू

पृथ्वीपतिके करदेवा किसाणही हैं, ते वृक्ष लोकनिकूं फलनिकरि पोषते भए ।।२४।। नालेरनिका रस सोई भया ग्रासव ताकरि मदोन्मत्त कछुइक घूमैं हैं नेत्र जिनिके ग्रैसी सिंहलदेशकी स्त्री पृथ्वीपतिका यश श्रुतिगंभीर स्वरसूं गावती भई, वह यश सुननहारेनिके श्रवणनिकूं ग्रतिसुन्दर ।।२५।।

ग्रर त्रिकूटाचल मलयाचल तिनिके तटविषैं ग्रर पांड्यकवाटक नामा पर्वत ताविषैं याका यश किन्नरीदेवी ग्रतिगम्भीर स्वरसूं गावती भई ।।२६।। ग्रर मलयाचलके निकट वननिविषैं ग्रर सह्याचलके वनविषैं याका यश पृथ्वीके जीतिवेकरि उपज्या सो भीलनिकी स्त्री गावती भई ।।२७।। ग्रर चंदन का उद्यान ताहि स्पर्शिकरि मन्द सुगन्ध पवन बाजती भई, मलयाचलके कुन्जनितैं हरे हैं नीझरणनिके जलकण जानैं ।।२८।। दक्षिणदिशाकी पवन चौगिरद विस्तरती नृपका खेद हरती मानूं पाहुणगतिकरि सेनाके लोकनिका सत्कारही करै है ।।२९।। ग्रर केरल देशकी स्त्री लौंग इलायची ग्रादि सुगन्ध वस्तुनिकी बास तिनिकरी सुगन्ध हैं मुखके श्वास जिनिके ग्रर जिनिके स्तन सघन चन्दनके द्रवकरि चरचे पांडु होय रहे हैं ।।३०।। ग्रर लीलासहित मन्द है गमन जिनिका मानूं नितंबनिके भारकरि मन्द चालै हैं ग्रर कामके पुष्पबाण तिनिकी कलीके खिलिवेकेसे विभ्रमकूं धरे सुन्दर है मुलकनि जिनिकी ।।३१।। ग्रर कोयलके ग्रालाप समान मधुर हैं वचन जिनिके ते वचन ग्रतिप्रकट नांहीं भीणे स्वरकूं धरे हैं ग्रर ग्रतिकोमल जो बाहुलता ग्रतिसुभग हिंडोरे समान तिनिकूं हलावती मनोज्ञ है चेष्टा जिनिकी ।।३२।। ग्रर महासुन्दर नृत्य करती नृत्यसमय स्खलित होय है पगनिकी रचना जिनिकी ग्रर बाहुलताकरि मोतीनिके ग्राभूषण पहरे जीते हैं भंवरनिके गुन्जार जिनि ग्रैसे मन्द मनोहर गान करती ।।३३।।

तमालवनकी कुंजगलीनिमैं यथेष्ट विचरती नवयौवनकूं धरे केरलदेशकी स्त्री याका मन प्रसन्न करती भई ।।३४।। सो राजेंद्र दक्षिणदिशाकूं वशिकरि चोल देश केरलदेशके राजा तिनि सबनिकूं जीतिके साधनतैं वशिकरि प्रणाम करावता भया, सब राजा ग्राय पांय परे ।।३५।। कलिंगदेशके उपजे गज मलयाचलपर्वतसमान ऊंचे मानूं ग्रपने उच्च शरीरकरि गिरिनिकी उच्चताकूं उलंघै हैं ।।३६।। दिग्विजयविषैं सेनाके गज सब दिशानिमैं विश्राम करते दिग्गजपणां ग्रंगीकार करते भए, लोकनि जानी–एही दिग्गज हैं ग्रर ग्रौर दिग्गज कहिए हैं सो उपमाकै ग्रर्थि कहिवेमात्र हैं ।।३७।।

बहुरि भरतक्षेत्रका भूपाल पश्चिमदेशकूं प्राप्त होय सह्याचलके समीप पश्चिमदिशिके समुद्रके तटके राजा तिनिकूं जीतता भया ।।३८।। जीतिका

साधन याका कटक पश्चिमदिशाके समुद्रके तीर निवास करता भया ।।३९।। उपसिंधु कहिए खारडी समुद्र सो अपने दोऊ तटनिविषै राजानिके राजाका कटक देखि भयथकी क्षोभकूं प्राप्त होय मानूं आकुल व्याकुल भया ।।४०।। सेनाके क्षोभतै समुद्र या तट की उर प्राप्त होय अर या तट की उर निवास करती सेनाके क्षोभतै वा तटकी उर प्राप्त होय है ।।४१।। हरितमणि तिनिकी प्रभाके विस्तारकरि समुद्रका जल ऐसा सोहता भया मानूं चिरकालतै सिवाल नीचै हुता सो ऊपरि आय गया है ।।४२।। अर कहूंइक पद्मरागमणिनिकी किरणनि करि समुद्रका जल ऐसा सोहता भया मानूं कटकके क्षोभतै समुद्रका हृदय विदारया गया है तातै उछलै है रुधिरकी छटा ।।४३।। सह्याचल पर्वतके तटकूं समुद्रका जल स्पर्श है सो मानूं याको गोदमैं लोटता संता अपना दुख निवेदन करै है अर वह याकूं धारता संता मानूं भाईका भाव प्रगट करै है ।।४४।। न सह्या परै ऐसा बलका संघट्ट ताकरि सो सह्याचल भग्न भए जे वृक्ष तिनिकरी मानूं हाथ ऊंचेकरि पुकारही करै है ।।४५।। सह्याचल कटक करि बिदारया चलायमान है प्राणी जहा सो गुफाके छिद्रनिकरि आकुल शब्द करता मानूं मृत्युदशाकूं प्राप्त होय है कैसा है पर्वत—सिंहादि प्राणी ते ही है प्राण जाके । भावार्थ—जो मृत्यु दशाकूं प्राप्त होय है ताके प्राण चलायमान होय है अर याके प्राणी चलायमान हैं ।।४६।। चलायमान है वृक्ष जाके अर चलायमान हैं प्राणी जहा अर शिथिल होय गई है कटिनी जाकी सो पर्वत या भांति चलाचल होता थका कहिवेमात्रही अचलनाम धरावता भया लोकन जानी—कहिवेका अचल है ।।४७।।

प्राणीनिके समूहनै कीया है वनका भाग अर तुरंगनिके खुरघट्टनकरि तथा कटकके लोकनिके पायनिकरि चूरी संती सह्याचलकी भूमि क्षणमात्रमैं स्थलके भावकूं प्राप्त भई ।।४८।। चक्रवर्तीके विजय गज पश्चिमके समुद्रके तटपर्यंत अर मध्यमाचलगिरीपर्यंत अर तुंगवर पर्वतपर्यंत भ्रमते भए कैसा है तुंगवर ऊंचे पाषाणनिकरि संयुक्त है ।।४९।। बहुरि कृष्णगिरीकूं उलंघि अर सुमंदरगिरीकूं उलंघि बहुरि मुकुंदगिरिकूं उलंघि राजेंद्रके गजराज भूमिमैं भ्रमते भए ।।५०।। तहा पश्चिमदिशिके समीपके हाथी छोटी है ग्रीवा कहिए नारी जिनिकी अर लांबे हैं दांत जिनिके अर सुंदर है नेत्र जिनिके अर मृदु है त्वचा जिनिकी सचिक्कण श्याम महापुष्ट ।।५१।। बडा है शरीरका ऊपला भाग जिनिका उत्तुंग है अंग जिनिका अर रक्त है जीभ होठ तालवे जिनिके महामानके धरणहार अर दीर्घ है पूंछ जिनिकी अर कमलसमान सुगंध झरै है मद जिनिके ।।५२।। अपने वनविषै संतुष्ट अर महाशूरवीर दृढ है चरण जिनिके

अर सुंदर है शरीर जिनिका ग्रैसे पश्चिमके हस्ती वननिके स्वामी अति आदरसूं भेट ल्याए तिनिकूं आप राखता भया ।।५३।।

सो पृथ्वीका राजा अनेक नदी उलंघता भया, कैसी हैं नदी-वन ही हैं रोमावली जिनिकै अर ऊंचे तट तेई हैं नितंब जिनिके, केई नदी पूर्वगामिनी केई नदी पश्चिमगामिनी मानूं सह्याचलकी पुत्रीही हैं, तिनिकूं उलंघता भया ।।५४।। विचरैं हैं भीषण ग्राह जिनिमैं ग्रैसी भीमानामा नदी अर भीमरथी जलचरके समूह तिनिकरि उठ्या है भंवर जिनिमैं ग्रैसी दारुवेणा अर दारुणा महानदी तिनिकूं उलंघता भया ।।५५।। अर नीरानामा नदी नीरके तीर जे वृक्ष तिनिके शाखाके अग्रभागकरि आच्छादित है जल जाका अर मूलानामा नदी ढाहेनिकूं उपाडै ग्रैसा है प्रवाह जाका सो अपने प्रवाहकरि मूलतैं उखारै हैं तटके वृक्ष जानैं ।।५६।। अर वाणा नामा नदी, सो कैसी है—निरंतर वहै है जल जामैं अर केतवा नामा नदी सदा जलकरि भरी बहुरि करीरीनामा नदी सो कैसी है—करी जे हाथी तिनिके दांतनिकरि विदारे हैं तट जाके इत्यादि महानदी तिनिकूं नृपनिका इंद्र उलंघता भया ।।५७।। बहुरि प्रहरा नामा नदी विषम जे ग्राह तिनिकरि दूषित मानूं वह नदी असती कहिए दुराचारिणी नारीही है, दुराचारिणी स्त्री विषम ग्राह जे नीचजन तिनिकरि दूषित है बहुरि मुररा नामा नदी कुरर जातिके पंछी तिनिकरि सेव्य सो नदी कीच रहित मानूं महासतीही है महासतीहू पंक कहिए कलंक ताकरि रहित है ।।५८।।

अर पारा नामा नदी जाके जलके तीर शब्द करैं हैं कुरंचि कलहंस सारस। अर मदनानामा नदी कैसी है मदना—समानस्थल अर नीचेस्थल तिनिविषैं जलकरि समान है अर अखंड हैं गति जाकी ।।५९।। अर वेणुकानामा नदी मानूं इह नदी सह्याचलरूप गजकी मदधारा ही है। अर गोदावरी अखंड है प्रवाह जाका अति विस्तारकूं धरै है ।।६०।। अर करीरवनकरि मंडित है तीरकी भूमि जाकी ग्रैसी तापी नामा नदी आतापके संतापतैं कछुइक उष्णजलकूं धरतीसंती वहै है ।।६१।। अर रम्या नामा नदी ताके तीरके वृक्ष तिनिकी छाया सूते हैं मृगनिके वालक, अर लांगल खातिकानामा नदी कैसी है मानूं पश्चिम दिशाकी खाई ही हैं ।।६२।। इत्यादि अनेक नदी तिनिकूं सेनापति सेनासहित उलंघता भया जहां जहां सेनापति गया तहां तहां वनके माते हाथी ग्रहता भया ।।६३।। चक्रवर्तिका कटक सहयाचलकूं उलंघि विंध्याचल जाय प्राप्त भया, कैसा है सहयाचल पसारी हैं नदीरूप जीभ जानैं सो मानूं समुद्रकूं पीवेकूं उद्यमि भया है ।।६४।।

अब कटक विध्याचल आया सो विध्याचलकूं भूपनिका भूप आपसमान देखता भया—वह गिरिनिका पति उत्तुंग अर वह आपहू उत्तुंग अर आप तो बडे वंशकूं धरे अर वह बडे बांसनिकूं धरे, आप दीर्घताकूं धरे अर वहहू दीर्घताकूं धरे, आपहू औरनिकरि अलंध्य अर गिरिहू औरनिकरि अलंध्य तातैं गिरींद्रकूं आप तुल्य देखि प्रसन्न भया ।।६५।। कैसा है गिरी—अपने ऊंचे शिखरनिकरि सोहै है उछलिकरि दूरि जाय परैं हैं निझरने जिनितैं अर ध्वजासहित विमाननिके समूहकरि मानूं विश्रामकै अर्थि याका आश्रय ले हैं ।।६६।। जो विंध्याचल अपनी पूर्व अर पश्चिमकी अणी तिनिकरि समुद्रकूं अवगाहिकरि तिष्ठ्या है मानूं दावानलके भयतैं समुद्रसूं मित्रता कीया चाहै है ।।६७।।

अर निरन्तर झरैं है नींझरने जाके तलहटीके वृक्षनिके सीचिवेकै अर्थि सो मानूं इह गिरि ऐसा भाव कहै है—बडे नृपनिकूं इह योग्य है जो अपने चरणनि लागे तिनिकूं पालन करे ।।६८।। अर तटविषै तिष्ठते ऊंचे पाषाण तिनिसूं स्खलित होय उछलै है जल जाका ऐसी नदीरूप नारी तिनिकूं मानूं शब्दसहित नीझरने तिनिकरि हसैसी है ।।६९।। अर दावानल नीचले विस्तीर्ण वन तिनिकूं जलकी सरदीकरि दाहिवेकूं असमर्थ तातैं भृगुपात कहिए गिरितैं गिरिवेकै अर्थि शिखरकूं चढै है भावार्थ—तलै सरदी जलकी घनी है अर शिखरपरि जल ठहरै नाही तातैं शिखरपरि दावानल लागै है सो मानूं झंपापात वेलेकूं चढ्या है ।।७०।। प्रज्वलित दावानल ताकरि संयुक्त जे गिरिके शिखर तिनिकूं वनचर जे भील ते ज्येष्ठ आषाढके दिनानिमैं सुवर्णसारिखे लखैं हैं ।।७१।।

जाके वन मातंग जे हाथी अथवा भीलादिक चांडाल तिनिकरि संयुक्त है अर भुजंग कहिए सर्प अथवा विषके भरे दुष्ट जीव तिनिका है सचार जहाँ अर विजाति कहिए पक्षी अथवा नीच जाति तेई भए कंटक तिनिकरि पूर्ण है तातैं कहूंइक अतिकष्टकूं धरै है ।।७२।। अर माते हाथी तिनिका है योग जहाँ अर समुद्र लवणकी है बाहुल्यता जहाँ अर विपत्र कहिए पंखोनिकी पोख जहाँ बहुत पडी हैं अर पत्र तथा कूंपल तिनिकरि बहुल सोहै हैं ।।७३।। अर कहूंइक फटि गए हैं बांस जिनिके उदरतैं गिरे जहाँ तहाँ विखरि रहे हैं मुक्ताफल तिनिकरि मानूं वनलक्ष्मी प्रगट जो दांतनिकी किरण ताकरि वनविषै हसैही है ।।७४।। अर इह विध्याचल गुफानिके मुख तिनिकरि झरैं हैं नीझरने तिनिके शब्दकरि मानूं गाजैही है, अपनी महिमाकरि करी है कुलाचलनिसूं स्पर्द्धा जानै ।।७५।।

अर इह पहाड नीचे ऊंचे स्थानक तिनिकरि अर नानाप्रकारको गेरु आदि धातु तिनिकरि अर नानाप्रकारके मृगनिके रूप तिनिकरि मानूं चित्रपटके आकारकूं धरे है ।।७६।। अर जाके वनविषैं रात्रिसमैं औषधि प्रज्वलित होय हैं सो मानूं देवनि ए दीपक प्रज्वलित कीए हैं अन्धकारके हरणहारे ।।७७।। अर कहूंइक मृगेंद्रनि विदारे हैं गजेंद्रनिके कुम्भस्थल तिनितैं उछलै हैं मोती तिनिकरि जाका समीपस्थल बिखरे पुष्पनिकी शोभाकूं धरै है ।।७८।। सो नृपनिका नृप दूरिहीतैं महागिरिकूं देखि परम आनन्दकूं प्राप्त भया मानूं वह गिरि राजराजेंद्रकूं पवनकरि हालते तट के वृक्ष तिनिकरि बुलावै है ।।७६।। सो चक्रेश्वर विंध्याचलके किरात कहिए भील अर करी कहिए हाथी तिनिकूं समूहसहित दूरतैं देखता भया, कैसे हैं किरात अर कैसा हैं करी—कालीघटा-समान काले अर भील तौ बांस के धनुष धरैं अर हाथी धनुषके आकार वंश कहिए पीठ ताहि धरैं ।।८०।। ता पर्वतके तटविषैं नदीरूप स्त्री चंचल जे मच्छी तेई हैं नेत्र जिनिकै अर पंछीनिके शब्द तेई हैं अव्यक्त सुन्दर शब्द जिनिकै ऐसी नदीरूप नारी तिनिकूं नरपति निरखता भया ।।८१।।

अर विंध्याचलके मध्य नर्मदा नदीकूं देखता भया सो नर्मदा नदीनिमैं बडी मानूं विंध्याचलकी समुद्रपर्यंत कीर्ति विस्तरी है काहूपै निवारी न जाय ।।८२।। तरंगरूप हैं जलका वेग जाका ऐसी नर्मदा मानूं पृथ्वीकी लांबी चोटीही है अर विंध्याचलपर्वतकी पताकाही है समस्त पर्वतनिकूं जीतै ताकी प्रशंसा प्रगट करणहारी ।।८३।। सो नदी कटकके क्षोभतैं उठी है पंछीनिकी पंक्ति जाविषैं सो मानूं पृथ्वीका पति अपने स्थल आया तातैं तोरणही बांधे हैं, पंछीनिके उडिवेतैं क्षणेक ऐसी भासी ।।८४।। अर इह सांविली नर्मदा हैं जो राजानिकी रानीनिकूं नर्म कहिए क्रीडा ताकी देनहारी ताके मध्य मच्छी केलि करै हैं ।।८५।। ता नर्मदाकूं उतरिकरि राजेश्वरका कटक विंध्याचलकै पैलै तट जाय पहौंच्या घरकी देहलीकी बुद्धिकरि विंध्याचलकूं उलंघ्या अर नर्मदाके पार भए, कैसी हैं नर्मदा—कटकके क्षोभतैं उडी है पंछीनिकी पंक्ति जाविषैं ।।८६।।

अर विंध्याचल नर्मदाकै दक्षिणदिशिभी देख्या अर उत्तरदिशिभी देख्या मानूं विंध्याचलनै दोऊदिशाविषैं अपना रूप दोयप्रकार कीया है दोऊही दिशानिमैं जाका छेह नांही ।।८७।। चक्रीका कटक नर्मदाकी चौगिरद विंध्याचलकूं वेढिकरि निवास करता भया मानूं इह कटक दूजा विंध्याचलही है ।।८८।। वह कटक अर विंध्याचल परस्पर भेद न धारते भए, कटकमैं तौ गज अर गिरीमैं गंडोपल कहिए ऊंचे स्थानक अर कटकमैं अश्व अर पर्वतमैं अश्व-

चक्र कहिए किंनर देव, अश्वहू चपल अर किंनरहू चपल ।।८६।। कटकनै भखे समस्त फल अर पल्लव अर तरु सो विंध्याचल दल फल पुष्प वेलि पत्र तिनिकरि रहित होयगया सो मानूं, विंध्याचल वंध्याचल होय गया। वंध्या नाम निफलका है ।।९०।। वांसनिके चावल वासनिके मोती निकरि मिश्रित तिनिकरि कटकके लोग जिनेंद्रकी अर्चा करते अपनी इच्छाकरि सुखसू तिष्ठते महामनोज्ञहै विंध्याचल की स्थली ।।९१।। तहा पृथ्वीपतिनै निवास किया तब वनके राजा राजाधिराजकू देखते भए अर वनकी नानाप्रकारकी वस्तु प्रशसायोग्य रोगकी निवारणहारी महाऔषध भेट करते भए ।।९२।। हाथीनिके दांत अर गजमोती अर वासनिके मोती भीलनिके अधिपति भेट करते भए सो उचितही है पृथ्वीपतिका सत्कार करना ।।९३।।

नर्मदाकूं उतरि विंध्याचलकू उलघि चक्रवर्तीका कटक पश्चिमदिशाके जीतिवेकू प्रयाण करता भया ।।९४।। पहली कछुइक उत्तरदिशाकी तरफ कटक जायकरि पश्चिमदिशाकूं चक्रसहित प्राप्त भया, याका प्रताप तौ पहिलीही सब उर व्यापि रह्या है ।।९५।। कटकके अश्व तिनिके खुरनितैं उठी पृथ्वीकी रज सो सूर्यके तेजकूं रोकती भई केवल वैरीनिकाही तेज न रोक्या जाके तेज आगैं सूर्यहूका तेज रुकिगया ।।९६।। लाट देशके राजा ललाटकरि स्पर्शा है पृथ्वीतल जिनि अतिसुन्दर भाषा बोलते प्रभुकी आज्ञाके वशि होय लाभाटिक पदकूं प्राप्त भए। जो स्वामीका अभिप्राय जानैं अर आज्ञाप्रमाण कार्य करिवेकूं समर्थ ताहि लालाटिक कहिए ।।९७।। कैयक वनके अधिपति सोरठदेशके गज अर पंचनदीके वननिके गज भेंटकरि पृथ्वीनाथका दर्शन करते भए, चक्रकरि सब चलायमान होय गए ।।९८।। चक्रके देखिवेतैं डरे, देश तजि पृथ्वीनाथकै समीप आए तिनि जानी इह सब पृथ्वी चक्रेश्वरकी है जाहि जो स्थल देय सो पावैं कैयक राजा क्रूरग्रह समान महाक्रूर हुते सो चक्रीकै वशि भए ।।९९।।

भरतक्षेत्रका पति सब दिशानिके देशपति माते हाथी समान मदोन्मत्त तिनिकूं अपने बलतैं दबाय सूधे करता भया कैसे है राजा अर कैसे हैं गजराज—राजा तो बडे वंशके उपजे अर गज बडे पीठिकूं धरें, वंशनाम पीठहूका है, अर हाथी मदोन्मत्त राजाहू मदोन्मत्त सो सब राजा राजेंद्रके प्रतापतै निर्मद होय गए ।।१००।। सोरठदेशके राजा अर उष्ट्रदेशके राजा ल्याए है अनेक प्रकार भेटनिके समूह तिनिकूं पृथ्वीनाथ संतुष्ट करता तिनिपरि कृपा करता गिरिनार-गिरिकी थली आया ।।१०१।। सोरठदेशविषै गिरिनारगिरि सुमेरुसारिखा पर्वत तहा भरतक्षेत्रका पति आय पहुँच्या, असवारीतैं उतरि गिरिनारिकी प्रदक्षिणा

देय होनहार बावीसमैं तीर्थंकर तिनिका ध्यान करता गिरिकी वंदना करी ॥१०२॥ रोमी कपड़े अर रेशमी कपड़े अर चीन पाटंबर इत्यादि अनेक प्रकार-के वस्त्र भेंटकरि भूपति भूपेंद्रका दर्शन करते भए ॥३॥ कैयकनिकूं सन्मान दान-करि कैइकनिकूं स्नेहवचनकरि कैयकनिकूं कृपाकी दृष्टिकरि अतिहर्षित करता भया ॥४॥ अर नानाप्रकारके गज अर ऐराकी घोडे अर नानाप्रकारके रत्न तिनिकरि पश्चिमदिशाके राजा सोरठमैं आया नृपतिका नाथ ताहि पूजते भए ॥५॥ महातेजस्वी शरीर जिनिका अतिसुन्दर बुद्धिमान तरुण वय पराक्रमगुण-करि मंडित तुरुक्कदेशके उपजे तुरंगम तिनिकरि कैइकराजा राजेश्वरकूं पूजते भए ॥६॥ अर कैयक राजा कांबोजदेश के घोडेअर वाल्हीकदेशके घोडे तथा तैतिलदेशके अर अट्टदेशके सिंधुदेशके वनायुदेशके गांधारदेशके बाणदेशके इत्यादि अनेक देशनिके तुरंगम तिनिकरि भूपेंद्रकूं आराधते भए ॥१०७॥ महाकुलीन ऐराकी जातिके घोडे नानादेशके विचरणहारे पूर्ण हैं अंग जिनिके तिनिकरि भूप भूपेंद्रकूं सेवते भए ॥१०८॥ प्रयाण प्रयाण प्रति याके केवल रत्ननिहीका लाभ न भया यशका अत्यन्त लाभ भया जे राजा दुःसाध्य हुते ते अपने बलतैं सब वशि कीए ॥६॥ जल और थलके पंथ तिनिकूं सब ग्रौरतैं रोकि अपनी जीतिके साधनकरि गए सिंधुके सब राजानिकूं सेनापति जीतता भया ॥११०॥

नानाप्रकारके देश अर वन नदी पर्वत तिनिकूं उलंघि सेनापति पश्चिमके राजानिकूं पृथ्वीपतिकी आज्ञा सुनावता भया ॥१११॥ जो काहू ठौर कछु अपराध न होय, हिंसादिक पाप अर अनीति कोऊ करि न सकै, चोरी जोरी न होय, या भांति आज्ञा सुनाय जैसैं पूर्वके भूपाल वशि कीये हुते तैसैं पश्चिमके अनुक्रमतैं वशि कीए, हर्या है तिनिका मानधन, या भांति सबनिकूं वशिकरि राजेंद्र पश्चिमके समुद्र आया ॥१२॥ सो समुद्र तरंगनिरूप कर तिनिकूं विस्तारता दूरहीतैं मानूं नरेंद्रका सत्कार करता भया तरंगनिमैं नानाप्रकारके रत्न विस्तरे सो मानूं समुद्र अर्घपाद्यही करै है ॥१३॥ जवाहरिनिकरि प्रशंसायोग्य जे वडे जवाहरी तिनिकरि या समुद्रके रत्न अल्पमूल्य गिनिये हैं अर या चक्रेश्वरके रत्न बहुमूल्य गिनिये हैं ॥१४॥ अर इह नामकरि लवणसमुद्र सो लघु भया तातैं तासमैं नृपनि ऐसा माना जो इह चक्रही रत्नाकर है अनेक रत्ननिकी राशि है, या भांति सब राजनि वहुत प्रशंसा करी ॥१५॥

या पश्चिमदिशाविषैं सूर्य आवै है तब सूर्यहूका तेज मंद होय जाय है सो याहू दिशिमैं नृपेंद्रका तेज अति देदीप्यमान होता भया, पश्चिमके सब राजा जीते ॥१६॥ इह चक्रेश्वर शत्रुनिकूं तीव्र उद्वेग उपजावता सूर्यसमान दिपता

भया चक्ररत्नकूं धारता सकलप्रजाके दुख टारता गुणरुप समुद्रकूं पूर्ण करता भया, सब शत्रु कंपायमान करे ।।१७।। समुद्रके तीर चाल्या, पश्चिमके तीर पहुंच्या जो द्वार होय सिंधुनदी समुद्रमें प्रवेश कीया है ऐसा सिंधुद्वार ताके समीप कटकके डेरे कराए, कैसा है कटक—अपने चित्तसमान निराकुल है चक्रेश्वर महालक्ष्मीवान जा समान अन्य कोऊ विभूतिवंत नांही ।।१८।। सिंधुके तटके वन तहां सेनाके डेरे भए फौजके हाथी तिनिके चरिबेकरि पेडमात्र रहिगये ।।१९।। तहां मंत्रसहित चक्ररत्नकी पूजा करी समस्त रीतिका वेत्ता पुरोहित, पंचपरमेष्ठीकी विधिपूर्वक पूजा करी ।।२०।। पवित्र गंधोदकसूं मिश्रित आसिकासहित अक्षत देयकरि पवित्र आशीर्वाद देय पुरोहित चक्रीकूं आनन्द उपजावता भया ।।२१।। तासमैं धरे हैं देवोपनीत शस्त्र जानैं पहली रातिप्रमाण रथविषैं आरूढ होय लवणोदधिकूं गायके खोज समान अल्प जानि पृथ्वीका पति लवणोदधिकूं अवगाहता भया ।।२२।। उत्कृष्ट है दीप्ति जाकी ऐसा प्रभासनामा देव ताहि जीत्या पृथ्वीका पति अपनी प्रभाके समूहकरि सूर्यकी प्रभाकूं तिरस्कार करै है ।।२३।। जो वीरलक्ष्मी सोई भई मच्छी ताके वशि करिवेकूं जालसमान मोतीनिका जाल अर संतान जातिके कल्पवृक्षनिकी माला अर सुवर्णका जाल ए सब प्रभासदेव भेट करी सो चक्रधर ग्रही ।।२४।। या भांति पुण्यके उदयतैं पृथ्वीपति बडे देवनिकूं जीतता भया तातैं बुद्धिमान पुण्यरूप धनका निरंतर उपार्जन करहु, सो पुण्यधन महाप्रबल है ।।२५।।

चक्रवर्तीनिमैं आदि प्रथमचक्री अतुल है लक्ष्मी जाकै अर नाचते उछलते उत्तुंग तुरंग तिनिके खुरनिकरि चूर्ण कीए हैं विषमस्थल जानैं, तुरंगनिके खुरनिकरि उठी रेणु ताकरि समुद्रकूं श्यामता उपजावता संता प्रभासदेवकूं जीतिकरि ताथकी सारभूत वस्तु लीन्ही ।।२६।। लक्ष्मीके हीदिबेकी लतासमान सतानजातिके कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी माला उरविषै धारी अर मोतिनिका अर सुवर्णका जालजुगल ताकरि संयुक्त जैसैं कोऊ वीद वींदनी परणि भीतरतैं बाहर निकस तैसैं लक्ष्मीका ईश लक्ष्मीकूं परणकरि समुद्रतै निर्भय निकसता नूतन वरकी शोभाकूं धरता अत्यन्त सोहता भया ।।१२७।। समुद्रपर्यन्त पूर्वके राजा अर समस्त दक्षिणके राजा वैजयंतद्वारपर्यन्त तिनिकूं जीतिकरि पश्चिमका समुद्र है सीमा जाकी ऐसी पश्चिमदिशा तहाके दिक्पालनितुल्य भूपाल तिनितै प्रणाम करावता समस्त देवनिकूं कंपायमान करता समस्तदिशाके चक्रकूं अरिचक्ररहित करता भया । या भांति जीते है सकलभूप जानै ऐसा नृपनिका प्रभु पृथ्वीकूं वशि करता भया ।।१२८।। इह कथा गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं—हे राजन् ! पुण्यके प्रभावतैं इह जीव भूमंडलकी जीतनहारी चक्रवर्तीकी लक्ष्मी

ताहि पावै है अर इन्द्रपदकी दिव्यलक्ष्मी पावे है अर पुण्यथकीही तीर्थङ्करकी विभूति पावै है अर पुण्य ही थकी परंपराय मोक्षकी अविनाशी लक्ष्मी पावै है। या भांति पुण्यके प्रभावतैं ए स्यार्क विभूतिनिका भव्यजीव भाजन होय है तातैं ऐसा जानि जे सुबुद्धि हैं ते पवित्र जिनेंद्रके आगमतैं पुण्यकूं उपार्जो ॥१२६॥

इति श्री भगवज्जिनसेनाचार्यविरचित त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराणसंग्रहे पश्चिमार्गोवद्वारविजयवर्णन नाम तीसवां पर्व पूर्ण भया ॥३०॥

× × × × ×